जनवरी-मार्च, 2016 [संयुक्तांक]

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

प्रधान संपादक
अनूप कुमार वार्ष्णेय

संपादक
डा. एम. सी. पांडेय

महत्वपूर्ण निर्णय

हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 (1956 का 30) – धारा 6 [सपठित हिंदू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2005 की धारा 6] – सहदायिकी संपत्ति में हित का न्यागमन – तारीख 9 सितंबर, 2005 को जीवित सहदायिकी की जीवित पुत्रियों को संशोधन के अधिकार लागू होंगे किंतु विभाजन सहित व्ययन या अन्यसंक्रामण जो तारीख 24 सितंबर, 2004 के पूर्व लागू विधि के अनुसार हुए हैं, पर संशोधित अधिनियम का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

प्रकाश और अन्य बनाम **फूलवती और अन्य** 111

संसद् के अधिनियम

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम, 2005 का अद्यतन हिन्दी में प्राधिकृत पाठ (20) – (41)

पृष्ठ संख्या 1 – 187 **[2016] 1 उम. नि. प.**

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका – जनवरी-मार्च, **2016** [संयुक्तांक] [पृष्ठ संख्या **1 – 187**]

संपादक-मंडल

डा. जी. नारायण राजू,
सचिव, विधायी विभाग

डा. एन. आर. बट्टू, संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. बी. एन. मणि,
सेवानिवृत्त अपर विधि सलाहकार,
विधि मंत्रालय

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल, विधि विभाग, डी आई आर डी, गुरु गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय

डा. ऋषिपाल सिंह,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी, राजभाषा खंड

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री जुगल किशोर,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

डा. अनुराग दीप,
एसोसिएट प्रोफेसर,
भारतीय विधि संस्थान भवन

श्री अनूप कुमार वार्ष्णेय,
प्रधान संपादक

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
संपादक

श्री विनोद कुमार आर्य,
संपादक

श्री कमला कान्त,
संपादक

सहायक संपादक : सर्वश्री अविनाश शुक्ला, असलम खान, पुण्डरीक शर्मा और जगमाल सिंह

उप-संपादक : सर्वश्री महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 57

वार्षिक : ₹ 225

© 2016 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग), भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा.................................. द्वारा मुद्रित ।

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 16288/68

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ पाठकों की सुविधा के लिए शृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । तीनों निर्णय पत्रिकाओं की वार्षिक कीमत केवल ₹ 495/- है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 225/- है, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रय के लिए उपलब्ध विधि पाठ्य पुस्तकों की सूची

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	कीमत (₹)
1.	भारत का विधिक इतिहास	श्री सुरेन्द्र मधुकर	410	30.00
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि	डा. एन. पी. परांजपे	371	40.00
3.	वाणिज्य विधि	डा. आर. एल. भट्ट	630	108.00
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धान्त (तृतीय संस्करण)	श्री शर्मन लाल अग्रवाल	357	40.00
5.	अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. सी. खरे	273	115.00
6.	मानव अधिकार	डा. शिवदत्त शर्मा	340	120.00
7.	दण्ड प्रक्रिया संहिता	न्या. महावीर सिंह	840	200.00

पुस्तकों की सूची जिन पर छूट देने की स्वीकृति प्राप्त की गई है ।

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	मूल दर (₹)	संशोधित दर (₹)
1.	संविदा विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रामगोपाल चतुर्वेदी	552	275.00	137.00
2.	श्रम विधि (तृतीय संस्करण)	श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा	658	452.00	226.00
3.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान (तृतीय संस्करण)	डा. सी. के. पारिख अनुवादक डा. एन. के. पटौरिया	969	293.00	146.00
4.	आधुनिक पारिवारिक विधि	श्री राम शरण माथुर	767	429.00	214.00
5.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय)	संकलन संपादन – ब्रह्मदेव चौबे	209	225.00	112.00
6.	हिन्दू विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रवीन्द्र नाथ	617	425.00	212.00
7.	भारतीय दंड संहिता	डा. रवीन्द्र नाथ	696	741.00	370.00
8.	भारतीय भागीदारी अधिनियम (द्वितीय संस्करण)	श्री माधव प्रसाद वशिष्ठ	272	165.00	82.00
9.	प्रशासनिक विधि (तृतीय संस्करण)	डा. कैलाश चन्द्र जोशी	635	200.00	100.00
10.	विधिक उपचार (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. के. कपूर	414	311.00	155.00
11.	विधि शास्त्र	डा. शिवदत्त शर्मा	501	580.00	377.00

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

जनवरी-मार्च, 2016

निर्णय-सूची

पृष्ठ संख्या

उत्तर प्रदेश राज्य **बनाम** सतवीर और अन्य	23
ननजप्पा **बनाम** कर्नाटक राज्य	38
प्रकाश और अन्य **बनाम** फूलवती और अन्य	111
प्रेम नाथ बाली **बनाम** रजिस्ट्रार, दिल्ली उच्च न्यायालय और एक अन्य	177
भरत सिंह **बनाम** ऋषि पाल और अन्य (देखिए – पृष्ठ संख्या 1)	
मकसूद **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य	105
महाराष्ट्र राज्य **बनाम** हेमंत कावडु चौरीवाल आदि	168
येल्लापु उमा महेश्वरी और एक अन्य **बनाम** बुधा जगदीशवरराव और अन्य	91
राकेश महिन्द्रा **बनाम** अनीता बेरी और अन्य	63
राज कुमार **बनाम** महाबीर और अन्य (देखिए – पृष्ठ संख्या 1)	
राज सिंह **बनाम** हरियाणा राज्य आदि	1
राम लखन सिंह (डा.) **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य **मार्फत** मुख्य सचिव	156
लाल बाबू प्रियदर्शी **बनाम** अमरीतपाल सिंह	142
सत्य पाल सिंह **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य और अन्य	78

संसद् के अधिनियम

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम, 2005 का अद्यतन हिन्दी में प्राधिकृत पाठ

(20) – (41)

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)

– धारा 2(यक), धारा 372 और धारा 378(3) – पीड़ित का अपील फाइल करने का अधिकार – विधिक वारिस और अन्य सहित पीड़ित को धारा 378 की उपधारा (3) के अधीन यथापेक्षित उच्च न्यायालय की इजाजत अभिप्राप्त करने के पश्चात् ही अभियुक्त को दोषमुक्त करने वाले या कम अपराध से दोषसिद्धि करने वाले या अपर्याप्त प्रतिकर अधिरोपित करने वाले आदेश के विरुद्ध अपील फाइल करने का कानूनी अधिकार है ।

सत्य पाल सिंह बनाम **मध्य प्रदेश राज्य और अन्य** 78

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45)

– धारा 100 – मृत्यु कारित किए जाने की सीमा तक प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का विस्तार – शिकायत – हथियारों से लैस न होना – संकट की आशंका का युक्तियुक्त न पाया जाना – अपीलार्थियों द्वारा गोली चलाई गई जिससे मृतक की मृत्यु हुई और ऐसा उन्होंने उस संकट या क्षति को रोकने के लिए नहीं किया जिसकी उन्हें संभावना या आशंका थी, ऐसी स्थिति में अपीलार्थियों का कृत्य धारा 100 के अधीन नहीं आएगा ।

राज सिंह बनाम **हरियाणा राज्य आदि** 1

– धारा 300, अपवाद 2 – प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का लाभ लेते हुए हत्या के अपराध को हत्या की कोटि में न आने वाला मानव वध साबित करना – घटना शिकायतकर्ता के घर में घटित हुई और अपीलार्थियों द्वारा ही हमला किया गया था, ऐसी स्थिति में इस बात की कोई गुंजाइश नहीं है कि अपीलार्थी धारा 300 के अपवाद 2 का लाभ लेने का दावा कर सके ।

राज सिंह बनाम **हरियाणा राज्य आदि** 1

पृष्ठ संख्या

– धारा 300, अपवाद 2 – प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का प्रयोग – किसी व्यक्ति या संपत्ति की प्राइवेट प्रतिरक्षा का अधिकार अपराधी को उपलब्ध था या नहीं, अभियुक्त द्वारा कारित किए गए अपराध की प्रकृति को विनिश्चय करते समय तय किया जाना चाहिए और साथ ही यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर विनिश्चित किया जाना चाहिए ।

राज सिंह बनाम **हरियाणा राज्य आदि** 1

– धारा 325 और 304 भाग-II – घोर उपहति – दोनों पक्षकारों द्वारा घेर (खाली भूमि) के स्वामित्व और कब्जे के अपने-अपने अधिकार के प्राख्यान में आपसी लड़ाई के अनुक्रम में घोर उपहति कारित की गई जिसके परिणामस्वरूप एक व्यक्ति की मृत्यु हुई अतः मामले के तथ्यों और परिस्थितियों, चिकित्सा साक्ष्य और अभिलेख की अन्य सामग्री से यह प्रतीत होता है कि अभियुक्तों की धारा 325 के अधीन दोषसिद्धि और दंडादेश न्यायोचित और तर्कसंगत है ।

मकसूद बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** 105

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (1988 का 49)

– धारा 19(3), (4) – लोक सेवक के विरुद्ध अभियोजन चलाने के लिए पूर्व मंजूरी – अभियुक्त के विरुद्ध विरचित आरोप साबित नहीं होने और विचारण चलाने के लिए मंजूरी आदेश को अविधिमान्य ठहराते हुए विचारण न्यायालय के विशेष न्यायाधीश द्वारा उसे दोषमुक्त किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा दोषमुक्ति को उलटा जाना – विचारण न्यायालय द्वारा मंजूरी का आदेश अविधिमान्य पाए जाने पर अभियुक्त को गुणागुण के आधार पर दोषमुक्त करने के बजाय उसे उन्मोचित किया जाना चाहिए था क्योंकि विधिमान्य मंजूरी के अभाव

पृष्ठ संख्या

में कार्यवाहियां अस्तित्वहीन हो जाती हैं ।

ननजप्पा बनाम **कर्नाटक राज्य** 38

– धारा 19(3), (4) [सपठित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 465] – लोक सेवक के विरुद्ध अभियोजन चलाने के लिए पूर्व मंजूरी – अभियुक्त के विरुद्ध विरचित आरोप साबित नहीं होने और विचारण चलाने के लिए मंजूरी आदेश को अविधिमान्य ठहराते हुए विचारण न्यायालय के विशेष न्यायाधीश द्वारा उसे दोषमुक्त किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा दोषमुक्ति को उलटा जाना – उच्च न्यायालय द्वारा मंजूरी की आवश्यकता या इसकी अविधिमान्यता के प्रभाव के संबंध में विधिक स्थिति का ठीक प्रकार से विवेचन नहीं करने के कारण अभियुक्त की दोषसिद्धि के आदेश को कायम रखना उचित नहीं होगा ।

ननजप्पा बनाम **कर्नाटक राज्य** 38

रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 (1908 का 16)

– धारा 17 और 49 – दस्तावेजों का अनिवार्य रजिस्ट्रीकरण और साक्ष्य में ग्राह्यता – स्थावर संपत्ति के विभाजन के संबंध में पूर्व कौटुम्बिक व्यवस्थापन – करार और ज्ञापन-विलेख का निष्पादन – दस्तावेजों के परिवर्णनों से संपत्ति में अधिकार और अंशों का त्यजन दर्शित होना – दस्तावेजों का रजिस्ट्रीकरण न कराया जाना – दस्तावेज का दिया गया नाम निश्चायक पहलू नहीं होता है अपितु संव्यवहार की प्रकृति और सार का अवधारण दस्तावेजों के निबंधनों के प्रतिनिर्देश करके किया जाना चाहिए और किसी दस्तावेज की ग्राह्यता संपूर्ण रूप से उस दस्तावेज में अंतर्विष्ट परिवर्णनों पर निर्भर करती है ।

येल्लापु उमा महेश्वरी और एक अन्य बनाम **बुधा जगदीशवरराव और अन्य** 91

पृष्ठ संख्या

– धारा 17 और 49 – दस्तावेजों का अनिवार्य रजिस्ट्रीकरण और साक्ष्य में ग्राह्यता – स्थावर संपत्ति के विभाजन के संबंध में पूर्व कौटुम्बिक व्यवस्थापन – करार और ज्ञापन-विलेख का निष्पादन – विभाजन के लिए वाद फाइल किया जाना – दस्तावेजों की साक्ष्य में ग्राह्यता – जहां दस्तावेजों को संपूर्ण रूप से पढ़ने से यह स्पष्ट होता हो कि स्थावर संपत्ति की बाबत अधिकार का त्यजन ऐसे दस्तावेज के द्वारा किया गया है जो अनिवार्य रूप से रजिस्ट्रीकरणीय है, वहां दस्तावेज अरजिस्ट्रीकृत होने के कारण पक्षकारों के बीच हुए विभाजन के तथ्य को साबित करने के प्रयोजन के लिए साक्ष्य में ग्राह्य नहीं हैं ।

येल्लापु उमा महेश्वरी और एक अन्य बनाम **बुधा जगदीशवरराव और अन्य** 91

व्यापार चिह्न अधिनियम, 1999 (1999 का 47)

– धारा 9 – अपीलार्थी द्वारा अगरबत्ती, धूप आदि के लिए 'रामायण' शब्द का व्यापार चिह्न के रूप में रजिस्ट्रीकरण के लिए आवेदन – प्रत्यर्थी का 'बादशाह रामायण' शब्द के लिए व्यापार चिह्न का आवेदन लंबित होना – प्रत्यर्थी द्वारा अपीलार्थी के आवेदन का विरोध – सहायक रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकरण किया जाना – अपील बोर्ड द्वारा आदेश अपास्त किया जाना – अपीलार्थी द्वारा प्रत्यर्थी के कलात्मक चिह्न का समय के हिसाब से उसके चिह्न से पहले से उपयोग में होने की बात स्वीकार किया जाना – दोनों चिह्नों की कलात्मक कृति का डिजाइन, रंग, स्कीम तद्रूप होने से सामान्य क्रेता युक्तियुक्त रूप से इस गलत निष्कर्ष पर पहुंचेगा कि एक ब्रांड के अंतर्गत आने वाली वस्तु दूसरे ब्रांड के अंतर्गत आने वाली वस्तु है, इसलिए अपील बोर्ड द्वारा अपीलार्थी के पक्ष में किए गए रजिस्ट्रीकरण आदेश को अपास्त करके ठीक किया गया है ।

लाल बाबू प्रियदर्शी बनाम **अमरीतपाल सिंह** 142

पृष्ठ संख्या

– धारा 9 – 'रामायण' शब्द का व्यापार चिह्न के रूप में रजिस्ट्रीकरण – पवित्र और धार्मिक ग्रंथों के अनन्य नाम का उपयोग किसी वस्तु के लिए व्यापार चिह्न के रूप में रजिस्ट्रीकृत करना अधिनियम के अधीन अनुज्ञेय नहीं है ।

लाल बाबू प्रियदर्शी बनाम **अमरीतपाल सिंह** 142

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 14, 15 और 21 – महिला का अधिकार – लिंग विभेद – संविधान के अधीन महिलाओं को समानता तथा गरिमा का अधिकार दिए जाने के बावजूद महिलाओं विशेषकर मुस्लिम महिला के साथ विवाह-विच्छेद और दूसरे विवाह के संबंध में उन्हें अधिकारों से वंचित किया जाता है, ऐसा विभेद महिलाओं के आधारभूत संवैधानिक अधिकारों का अतिक्रमण करता है ।

प्रकाश और अन्य बनाम **फूलवती और अन्य** 111

– अनुच्छेद 32 – याची-भारतीय वन सेवा के पदधारी पर प्रत्यर्थी-राज्य द्वारा भ्रष्टाचार का आरोप लगाया जाना – प्रक्रिया अनुसार सतर्कता जांच न किया जाना – विशेष न्यायाधीश तथा उच्च न्यायालय द्वारा मामले को मिथ्या पाया जाना और कार्यवाहियों को अकृत और शून्य घोषित किया जाना – याची द्वारा उसे पहुंची वित्तीय हानि, मानसिक कष्ट और समाज में हुई प्रतिष्ठा की हानि के लिए प्रतिकर देने के लिए राज्य को निदेश देने हेतु रिट याचिका – सामान्यतः, यह न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए किसी प्रकार के प्रतिकर का अवधारण या प्रदान करने से विरक्त रहता है, अपितु पक्षकारों को उन विवाद्यकों का न्यायनिर्णयन करने के लिए सक्षम न्यायालयों में समावेदन करने की सलाह देता है, किंतु इस मामले के विशिष्ट तथ्यों

पृष्ठ संख्या

और परिस्थितियों, याची के विरुद्ध लगाए गए भ्रष्टाचार का कोई आरोप साबित न होने, लगभग 10 वर्षों तक मुकदमेबाजी झेलने और उसे हुई वित्तीय हानि तथा उसकी आयु और उसके द्वारा उठाए गए कष्टों को देखते हुए उसे एकमुश्त दस लाख रुपए का प्रतिकर देने के लिए राज्य को निदेश दिया जाना उचित है ।

राम लखन सिंह (डा.) बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** मार्फत **मुख्य सचिव** 156

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1)

– धारा 3 [सपठित भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 302 और 34] – एक मात्र साक्षी – घटना के संबंध में एकमात्र साक्षी के साक्ष्य, घटना घटित होने की रीति, अपराध में अन्य लोगों के सम्मिलित होने जैसी परिस्थिति के कारण युक्तियुक्त संदेह से परे यह साबित नहीं होता कि अभियुक्तों द्वारा अपराध किया गया, अतः एकमात्र साक्षी के संदेहास्पद साक्ष्य के आधार पर अभियुक्तों को दोषसिद्ध नहीं ठहराया जा सकता ।

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम **सतवीर और अन्य** 23

– धारा 32 – मृत्युकालिक कथन – अभियुक्त-पति द्वारा अभिकथित रूप से अपनी पत्नी की हत्या किया जाना – पुलिस प्राधिकारियों द्वारा भेजे गए ज्ञापन द्वारा नायब तहसीलदार द्वारा मृतका का मृत्युकालिक कथन अभिलिखित किया जाना – दोषसिद्धि – उच्च न्यायालय द्वारा दोषमुक्त किया जाना – नायब तहसीलदार को ज्ञापन सौंपने वाले पुलिस पदधारी को न्यायालय में पेश न किए जाने, मृत्युकालिक कथन एक दिन पश्चात् पुलिस थाने में पहुंचने और विलंब के लिए कोई स्पष्टीकरण न दिए जाने से मृत्युकालिक कथन को विश्वसनीय नहीं माना जा सकता है और इसके आधार पर की गई अभियुक्तों की दोषसिद्धि

पृष्ठ संख्या

को उच्च न्यायालय द्वारा ठीक ही अपास्त किया गया है ।

महाराष्ट्र राज्य बनाम **हेमंत कावडु चौरीवाल आदि** 168

– धारा 65 – द्वितीयिक साक्ष्य – पूर्ववर्ती शर्त – प्राथमिक साक्ष्य के स्थान पर द्वितीयिक साक्ष्य प्रस्तुत करने वाले पक्षकार को यह सिद्ध करना आवश्यक है कि मूल दस्तावेज खो गए हैं या नष्ट हो गए हैं या उस पक्षकार द्वारा जानबूझकर विधारित किए जा रहे हैं जिसके संबंध में दस्तावेज प्रयुक्त किया जाना ईप्सित है और मूल दस्तावेज सर्वोत्तम प्रयास के बावजूद प्रस्तुत नहीं किए जा सकते हैं ।

राकेश महिन्द्रा बनाम **अनीता बेरी और अन्य** 63

– धारा 65 – द्वितीयिक साक्ष्य – स्थावर संपत्ति पर हक संबंधी विवाद की बाबत वाद फाइल किया जाना – प्रतिवादी के पास अपने हक संबंधी मूल दस्तावेज न होने पर द्वितीयिक साक्ष्य प्रस्तुत करने की ईप्सा किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा द्वितीयिक साक्ष्य ग्रहण किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा अपास्त किया जाना – मामले के संपूर्ण तथ्यों और द्वितीयिक साक्ष्य के ग्रहण करने के प्रयोजन के लिए अपीलार्थी-प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् यह प्रतीत होता है कि द्वितीयिक साक्ष्य देने के प्रयोजन के लिए सभी प्रयास किए गए हैं और कुछ दस्तावेजों में हस्ताक्षर पढ़े जाने योग्य और दृष्टिगोचर नहीं हैं, द्वितीयिक साक्ष्य को नामंजूर करने का आधार नहीं हो सकता है ।

राकेश महिन्द्रा बनाम **अनीता बेरी और अन्य** 63

– धारा 65 – द्वितीयिक साक्ष्य का ग्रहण किया जाना – द्वितीयिक साक्ष्य ग्रहण कर लेने से ही यह सबूत की कोटि में नहीं आता है और दस्तावेज की असलियत, सत्यता और अस्तित्व को विचारण के दौरान सिद्ध किया

पृष्ठ संख्या

जाना होगा और विचारण न्यायालय उन द्वितीयिक साक्ष्यों का अवलंब लेने से पूर्व कारण अभिलिखित करेगा ।

राकेश महिन्द्रा बनाम **अनीता बेरी और अन्य** 63

सेवा विधि [सपठित केन्द्रीय सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियम, 1965 का नियम 14]

– विभागीय कार्यवाहियां – अपीलार्थी-अपचारी कर्मचारी को 9 वर्ष से अधिक अवधि तक निलंबनाधीन रखा जाना – अनिवार्य सेवानिवृत्ति का दंड – निलंबन की अवधि को अपवर्जित करके पेंशन नियत किया जाना – निलंबन की अवधि असम्यक् रूप से लंबी होने, प्रत्यर्थियों की ओर से विभागीय जांच पूर्ण करने में हुए असम्यक् विलंब को स्पष्ट करने के लिए कोई औचित्यपूर्ण कारण न दिए जाने तथा मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की समग्रता को ध्यान में रखते हुए प्रत्यर्थियों को अपीलार्थी की पेंशन नियत करने में उक्त निलंबन की अवधि को गणना में लेने का आदेश दिया जाना न्यायोचित होगा ।

प्रेम नाथ बाली बनाम **रजिस्ट्रार, दिल्ली उच्च न्यायालय और एक अन्य** 177

हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 (1956 का 30)

– धारा 6 [सपठित हिंदू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2005 की धारा 6] – सहदायिकी संपत्ति में हित का न्यागमन – तारीख 9 सितंबर, 2005 को जीवित सहदायिकी की जीवित पुत्रियों को संशोधन के अधिकार लागू होंगे किंतु विभाजन सहित व्ययन या अन्यसंक्रामण जो तारीख 24 सितंबर, 2004 के पूर्व लागू विधि के अनुसार हुए हैं, पर संशोधित अधिनियम का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

प्रकाश और अन्य बनाम **फूलवती और अन्य** 111

तुलनात्मक सारणी

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

[2016] 1 उम. नि. प.

जनवरी-मार्च, 2016

क्र. सं.	निर्णय का नाम व तारीख	उम. नि. प.	ए. आई. आर. (एस. सी.)	एस. सी. सी.
1	2	3	4	5
1.	राज सिंह **बनाम** हरियाणा राज्य आदि (23.4.2015)	[2016] 1 1	2015 -	(2015) 6 268
2.	उत्तर प्रदेश राज्य **बनाम** सतवीर और अन्य (1.7.2015)	23	2406	9 44
3.	ननजप्पा **बनाम** कर्नाटक राज्य (24.7.2015)	38	3060	- -
4.	राकेश महिन्द्रा **बनाम** अनीता बेरी और अन्य (6.10.2015)	63	-	- -
5.	सत्यपाल सिंह **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य और अन्य (6.10.2015)	78	-	- -
6.	येल्लापु उमा महेश्वरी और एक अन्य **बनाम** बुधा जगदीशवरराव और अन्य (8.10.2015)	91	-	- -

1	2	3		4		5		
7.	मकसूद **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य (9.10.2015)	[2016] 1	105	2015	-	(2015)	-	-
8.	प्रकाश और अन्य **बनाम** फूलवती और अन्य (16.10.2015)		111	2016	769	(2016)	2	36
9.	लाल बाबू प्रियदर्शी **बनाम** अमरीतपाल सिंह (27.10.2015)		142		461		-	-
10.	राम लखन सिंह (डा.) **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य **मार्फत** मुख्य सचिव (17.11.2015)		156		-		-	-
11.	महाराष्ट्र राज्य **बनाम** हेमंत कावडु चौरीवाल आदि (16.12.2015)		168		287		-	-
12.	प्रेम नाथ बाली **बनाम** रजिस्ट्रार, दिल्ली उच्च न्यायालय और एक अन्य (16.12.2015)		177		101		-	-

[2016] 1 उम. नि. प. 1

राज सिंह

बनाम

हरियाणा राज्य आदि

और

राज कुमार

बनाम

महाबीर और अन्य

तथा

भरत सिंह

बनाम

ऋषि पाल और अन्य

23 अप्रैल, 2015

न्यायमूर्ति टी. एस. ठाकुर, न्यायमूर्ति आर. भानुमति और न्यायमूर्ति अमिताव राय

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 100 – मृत्यु कारित किए जाने की सीमा तक प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का विस्तार – शिकायत – हथियारों से लैस न होना – संकट की आशंका का युक्तियुक्त न पाया जाना – अपीलार्थियों द्वारा गोली चलाई गई जिससे मृतक की मृत्यु हुई और ऐसा उन्होंने उस संकट या क्षति को रोकने के लिए नहीं किया जिसकी उन्हें संभावना या आशंका थी, ऐसी स्थिति में अपीलार्थियों का कृत्य धारा 100 के अधीन नहीं आएगा ।

दंड संहिता, 1860 – धारा 300, अपवाद 2 – प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का प्रयोग – किसी व्यक्ति या संपत्ति की प्राइवेट प्रतिरक्षा का अधिकार अपराधी को उपलब्ध था या नहीं, अभियुक्त द्वारा कारित किए गए अपराध की प्रकृति को विनिश्चय करते समय तय किया जाना चाहिए

और साथ ही यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर विनिश्चित किया जाना चाहिए ।

दंड संहिता, 1860 – धारा 300, अपवाद 2 – प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का लाभ लेते हुए हत्या के अपराध को हत्या की कोटि में न आने वाला मानव वध साबित करना – घटना शिकायतकर्ता के घर में घटित हुई और अपीलार्थियों द्वारा ही हमला किया गया था, ऐसी स्थिति में इस बात की कोई गुंजाइश नहीं है कि अपीलार्थी धारा 300 के अपवाद 2 का लाभ लेने का दावा कर सके ।

इस मामले में शिकायतकर्ता भरत सिंह के दो भाई हैं गिरधारी लाल और देवेन्द्र सिंह । अपीलार्थी राज सिंह के भाई ऋषि पाल की शिकायतकर्ता के भाई गिरधारी लाल के साथ कहा-सुनी हो गई जिसके परिणामस्वरूप राज सिंह और उसके साथियों ने गिरधारी लाल की हत्या कर दी । अपीलार्थी राज सिंह का विचारण अभियुक्त राजपाल तथा ऋषि पाल के साथ किया गया और अपर सेशन न्यायाधीश द्वारा राज सिंह को दंड संहिता की धारा 304 भाग-I के अधीन दोषी पाया और अभियुक्त राजपाल तथा ऋषि पाल को दोषमुक्त कर दिया गया । शिकायतकर्ता भरत सिंह ने राजपाल और ऋषि पाल की दोषमुक्ति को चुनौती देते हुए उच्च न्यायालय में पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया और अभियुक्त राज सिंह ने भी अपनी दोषसिद्धि को चुनौती देते हुए उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने अपने एक ही निर्णय द्वारा पुनरीक्षण आवेदन भागतः मंजूर किया और अपीलार्थी राज की दोषसिद्धि को धारा 304 भाग-I से धारा 302 में परिवर्तित कर दिया किंतु आजीवन कारावास के दंड में कोई परिवर्तन नहीं किया । उसी दिन उसी पुलिस थाने में अपीलार्थियों द्वारा एक प्रतिमामला शिकायतकर्ता पक्ष के विरुद्ध दर्ज कराया गया था । विचारण न्यायालय ने शिकायतकर्ता पक्ष के सदस्यों को दंड संहिता की धारा 148 के साथ पठित धारा 148, 323, 325 और 452 के अधीन दोषी पाया । विचारण न्यायालय के इस आदेश से व्यथित होकर शिकायतकर्ता पक्ष ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने शिकायतकर्ता पक्ष के सभी लोगों अर्थात् महावीर सिंह, भरत सिंह, गजराज, अनिल और सतीश को सभी आरोपों से दोषमुक्त कर दिया । अपीलार्थी राज सिंह ने उच्च न्यायालय द्वारा की गई उसकी दोषसिद्धि के निर्णय को चुनौती देते हुए उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । दूसरी ओर अपीलार्थी पक्ष ने शिकायकर्ता पक्ष की दोषमुक्ति के संबंध में दिए गए उच्च न्यायालय के निर्णय को चुनौती देते हुए उच्चतम न्यायालय

के समक्ष अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय ने उच्च न्यायालय के निर्णय को मान्य ठहराते हुए राज सिंह के साथ-साथ राजकुमार और भरत सिंह द्वारा फाइल की गई अपीलें भी खारिज कर दीं । अपीलें खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – भरत सिंह और उसके भाइयों के पास कोई भी आयुध या घातक हथियार नहीं थे । अभियुक्त-अपीलार्थियों को उनके पक्ष में प्रतिरक्षा के लिए यदि कोई अधिकार प्राप्त है तो वह यह है कि अपीलार्थियों को शिकायतकर्ता पक्ष ने क्षतियां पहुंचाईं हैं, किंतु वे क्षतियां अपीलार्थियों की स्थिति से असम्यक् रूप से असमानुपाती हैं क्योंकि शिकायतकर्ता पक्ष किसी भी घातक हथियार से लैस नहीं थे । इस प्रकार, अपीलार्थियों द्वारा गोली चलाई गई जिससे गिरधारी की मृत्यु हुई और उनका यह कृत्य तनिक भी उस क्षति को रोकने के लिए नहीं किया गया था जिसकी अपीलार्थियों को संभावना थी या जिसकी युक्तियुक्त रूप से आशंका हो सकती थी । किसी भी समय पर, अपीलार्थियों को युक्तियुक्त रूप से मृत्यु कारित किए जाने या गंभीर क्षति पहुंचाए जाने की कोई भी आशंका नहीं थी, किंतु फिर भी अभियुक्त-अपीलार्थियों ने आक्रामक रूप से कृत्य किया और मृतक पर गोली चलाई । उच्च न्यायालय ने भी अनिल कुमार (अभि. सा. 5) के साक्ष्य का अवलंब लेते हुए यह निष्कर्ष अभिलिखित किया है कि शिकायतकर्ता पक्ष के किसी भी हथियार से लैस न होने के बावजूद, अपीलार्थी ने 4 से 5 फुट की दूरी से गिरधारी पर गोली चलाई थी । अपीलार्थी ने बहुत निकट से उपेक्षापूर्ण रीति में गिरधारी पर गोली चलाई जिससे यह उपदर्शित होता है कि अभियुक्त-अपीलार्थी पक्ष ने ही शिकायतकर्ता पक्ष पर हमला किया था । विधि के अधीन किसी भी व्यक्ति को आत्मरक्षा का अधिकार ऐसी स्थिति में प्रदत्त नहीं किया गया है जब वह व्यक्ति स्वयं ही हमलावर हो । वर्तमान मामले में, शिकायतकर्ता पक्ष घातक हथियारों से लैस नहीं थे ; किंतु अपीलार्थी के पास पिस्तौल थी । जब अपीलार्थी और उसके साथियों ने अग्न्यायुध से अनेक गोलियां चलाते हुए हमला किया, तब ऐसी स्थिति में उच्च न्यायालय ने यह ठीक ही अभिनिर्धारित किया है कि अभियुक्तों द्वारा किया गया आत्मरक्षा का अभिवाक् चलने योग्य नहीं है । न्यायालय को ऐसा कोई कारण दिखाई नहीं देता है जिसके आधार पर दंड संहिता की धारा 302 के अधीन की गई अपीलार्थी की दोषसिद्धि और उसे अधिरोपित आजीवन कारावास के दंडादेश में हस्तक्षेप किया जा सके । (पैरा 22)

जहां तक ऋषि पाल और राजपाल की दोषमुक्ति का संबंध है,

विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय ने इन अपीलार्थियों को दोषमुक्त करने के लिए समवर्ती निष्कर्ष अभिलिखित किए हैं । अपील न्यायालय केवल ऐसी स्थिति में दोषमुक्ति के आदेश में हस्तक्षेप करता है जब निचला न्यायालय महत्वपूर्ण परिस्थितियों और साबित तथ्यों को अनदेखा करता है और दांडिक न्यायशास्त्र के सिद्धांतों का गलत अवलंब लेता है या उन्हें छिपाने का प्रयास करता है । वर्तमान मामले में, यह नहीं कहा जा सकता है कि ऋषि पाल और राजपाल की दोषमुक्ति के लिए निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष अयुक्तियुक्त हैं जिससे कि उनमें भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करते हुए हस्तक्षेप किया जाना आवश्यक हो । (पैरा 23)

जहां तक 2013 की अपील सं. 6347 का संबंध है, घटनास्थल राज सिंह या उसके भाई का मकान नहीं था जो कि इस तथ्य से भी स्पष्ट हो जाता है कि अपराध से संबंधित तात्विक वस्तुएं तत्काल बरामद नहीं की गई थीं अपितु 3-4 दिन के अंतराल के बाद ही उन्हें बरामद किया गया था और इस विलंब के संबंध में पुलिस उप-निरीक्षक कुलदीप सिंह (अभि. सा. 8) और सहायक पुलिस उप-निरीक्षक द्वारा कोई भी विश्वसनीय स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है । अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य का परिशीलन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि भरत सिंह और अन्य व्यक्तियों द्वारा किसी भी अग्न्यायुध का प्रयोग नहीं किया गया था और न ही ऐसा कोई भी अग्न्यायुध उनके पास से बरामद किया गया है । जहां तक ऋषि पाल और राजपाल को पहुंची क्षतियों का संबंध है, राजपाल को विदीर्ण क्षतियां पहुंची हैं और उसकी करभास्थित की पांचवीं अस्थि में अस्थिभंग पाया गया है और ऋषि पाल की प्रपदास्थि की पांचवीं अस्थि में अस्थिभंग पाया गया है । चिकित्सकों ने यह राय दी है कि उक्त क्षतियां जमीन पर गिरने से कारित हो सकती हैं । महाबीर और अन्य व्यक्तियों ने न तो हमला किया था और न ही उन्होंने उक्त क्षतियां कारित करने के लिए कोई पूर्वचिन्तन किया था । तथ्यों और परिस्थितियों तथा कारित की गई क्षतियों की प्रकृति पर विचार करने पर उच्च न्यायालय ने यह ठीक ही अभिनिर्धारित किया है कि शिकायतकर्ता पक्ष (महाबीर और अन्य) ने प्राइवेट प्रतिरक्षा के लिए कृत्य किया था और उन्हें आरोपों से ठीक ही दोषमुक्त किया है । क्षतियों की प्रकृति और अभिलेख पर प्रस्तुत अन्य सामग्री पर विचार करने पर, न्यालयलय के मतानुसार शिकायतकर्ता पक्ष ने प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का अतिक्रमण नहीं किया है और उन्होंने उतनी ही क्षति पहुंचाई है जितनी

प्राइवेट प्रतिरक्षा के प्रयोजन के लिए आवश्यक थी । उच्च न्यायालय ने साक्ष्य का मूल्यांकन करने पर महाबीर और अन्य व्यक्तियों को ठीक ही दोषमुक्त किया है और इस न्यायालय को उच्च न्यायालय के आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई कारण दिखाई नहीं देता है । (पैरा 25)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2008]	(2008) 16 एस. सी. सी. 657 : **भंवर सिंह और अन्य** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ;	19
[2007]	(2007) 15 एस. सी. सी. 241 : **धर्म और अन्य** बनाम **हरियाणा राज्य** ।	18

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2015 की दांडिक अपील सं. 701 से 704.

2008 की दांडिक अपील सं. 440 और दांडिक पुनरीक्षण आवेदन सं. 2758 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 30 जनवरी, 2013 को पारित एक ही निर्णय के विरुद्ध अपीलें ।

पक्षकारों की ओर से — सर्वश्री बी. के. सतीजा (अपर महाधिवक्ता), एस. गुरु कृष्ण कुमार (ज्येष्ठ अधिवक्ता), विवेक सिंह, ए. प्रसन्ना वेंकटा, गगन गुप्ता, कमल मोहन गुप्ता और अमित आनंद तिवारी

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति आर. भानुमति और न्यायमूर्ति टी. एस. ठाकुर ने दिया ।

न्या. भानुमति – इजाजत दी जाती है ।

2. ये अपीलें 2008 की दांडिक अपील सं. 440 और दांडिक पुनरीक्षण आवेदन सं. 2758 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 30 जनवरी, 2013 को पारित उस एक ही निर्णय के विरुद्ध विशेष इजाजत से फाइल की गई हैं जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी राज सिंह की दांडिक अपील खारिज की और भगत सिंह की ओर से फाइल किया गया दांडिक पुनरीक्षण आवेदन भागतः मंजूर किया और भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की

धारा 304 भाग-I में की गई अपीलार्थी की दोषसिद्धि को दंड संहिता की धारा 302 में परिवर्तित कर दिया और उसे अधिरोपित आजीवन कारावास को कायम रखा तथा ऋषि पाल और राजपाल की ओर से फाइल किया गया पुनरीक्षण आवेदन खारिज कर दिया ।

3. जिन तथ्यों के आधार पर यह अपीलें फाइल की गई हैं, वे संक्षेप में निम्न प्रकार हैं – शिकायतकर्ता भरत सिंह सेना में कार्यरत है और तारीख 23 नवंबर, 2004 को वह 15 दिन की छुट्टी पर अपने ग्राम पहुंचा । भरत सिंह के दो भाई हैं, गिरधारी लाल और देवेन्दर सिंह । भरत सिंह ने अपनी शिकायत में यह अभिकथन किया कि तारीख 3 दिसंबर, 2004 को लगभग 6.00 बजे अपराह्न में जब वह अपने चचेरे भाई के घर के मुख्य द्वार पर तिलक राज के साथ खड़ा हुआ था, अपीलार्थी का भाई ऋषि पाल वहां पहुंचा जिसके हाथ में कुल्हाड़ी थी और उनके बीच कहा-सुनी हुई । ऋषि पाल ने भरत सिंह के बाएं नितम्ब पर कुल्हाड़ी से वार किया, किंतु वह बच निकला और अपने घर की ओर दौड़ा । शिकायतकर्ता भरत सिंह ने यह सम्पूर्ण घटना अपने भाई देवेन्दर सिंह को बताई और उसे बादशाहपुर के अस्पताल ले जाया गया जहां पर डा. गोबिन्द सिंह ने उसका उपचार किया और दोनों भाई ग्राम वापस आ गए । जब बड़ा भाई गिरधारी लगभग 8.30 बजे अपराह्न में घर वापस आया, भरत सिंह ने उसे सम्पूर्ण घटना के बारे में बताया और उसके बड़े भाई गिरधारी ने छोटे भाई की आलोचना की ।

4. जब शिकायतकर्ता और अन्य व्यक्ति घर के मुख्य द्वार पर एक-दूसरे से बात कर रहे थे तब अपीलार्थी राज सिंह लाइसेंस वाली पिस्तौल से ऋषि देशी तमंचे से राजेन्द्र और रामपाल लाठियों से लैस होकर गिरधारी लाल के मकान पर आए और उन्होंने भरत सिंह और अन्य व्यक्तियों पर हमला किया । अपीलार्थी राज सिंह ने गिरधारी के वक्ष पर अपनी पिस्तौल से गोली चलाई और गिरधारी जमीन पर गिर गया । जब भरत सिंह ने शोर मचाया, अपीलार्थी ने भरत सिंह पर गोली चलाई जो उसके कंधों के नीचे पीठ के बाईं ओर लगी । भरत सिंह के शोर मचाने पर, महाबीर सिंह और उसका बड़ा भाई गजराज (अभि. सा. 6) तुरंत घटनास्थल पर पहुंचे । महाबीर ने गिरधारी को बचाने के लिए उसे जमीन से उठाया, उसी समय ऋषि ने अपने देशी तमंचे से महाबीर सिंह और गजराज पर गोली चलाई । इसके पश्चात् राजेन्द्र और रामपाल ने गजराज पर लाठियों से हमला किया । गिरधारी को तत्काल ही सरकारी अस्पताल, गुड़गांव उपचार के लिए भेज दिया गया जहां पर चिकित्सक ने उसे "मृत लाया गया"

घोषित किया । आहत महाबीर, गजराज और भरत सिंह का उपचार किया गया । सरकारी अस्पताल, गुड़गांव से रुक्का प्राप्त होने पर पुलिस सहायक उप-निरीक्षक राजेन्दर सिंह (अभि. सा. 13) ने भरत सिंह (अभि. सा. 1) का कथन अभिलखित किया और दंड संहिता की धारा 302 के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 321/2004 के अनुसार मामला दर्ज किया । अन्वेषण पूरा होने पर दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 323, 324, 302, 307 और 506 के अधीन आरोप पत्र फाइल किया गया ।

5. अभियोजन पक्ष ने अभियुक्तों का दोष साबित करने के लिए कुल मिलाकर 13 साक्षियों की परीक्षा कराई और अभियुक्तों ने 3 प्रतिरक्षा साक्षियों की परीक्षा कराई । अपर सेशन न्यायाधीश, त्वरित न्यायालय, गुड़गांव ने तारीख 17 मई, 2008 को पारित अपने निर्णय के अनुसार यह अभिनिर्धारित किया कि अपीलार्थी राज सिंह ने प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का अतिक्रमण किया है और अपीलार्थी राज सिंह को दंड संहिता की धारा 304 भाग-I के अधीन दोषसिद्ध किया तथा राजपाल और ऋषि पाल को दोषमुक्त किया । अपर सेशन न्यायाधीश ने तारीख 20 मई, 2008 को पारित अलग से किए गए एक आदेश द्वारा अपीलार्थी राज सिंह को कठोर आजीवन कारावास भोगने और 7,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर अतिरिक्त कारावास भोगने के लिए दंडादिष्ट किया ।

6. ऋषि पाल और राज पाल की दोषमुक्ति को चुनौती देते हुए, भरत सिंह (अभि. सा. 1) ने दांडिक पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया । अपनी दोषसिद्धि को चुनौती देते हुए अभियुक्त राज सिंह ने उच्च न्यायालय के समक्ष दांडिक अपील फाइल की जिसमें उच्च न्यायालय ने तारीख 30 जनवरी, 2013 को पारित अपने एक ही निर्णय द्वारा अपीलार्थी राज सिंह की दांडिक अपील खारिज की और शिकायतकर्ता भरत सिंह की ओर से फाइल किया गया दांडिक पुनरीक्षण आवेदन मंजूर किया और इस प्रकार अपीलार्थी की दोषसिद्धि दंड संहिता की धारा 304 भाग-I से धारा 302 के अधीन परिवर्तित कर दी तथा अपीलार्थी को अधिरोपित आजीवन कारावास का दंडादेश कायम रखा ।

7. उसी दिन तारीख 4 दिसंबर, 2004 को उसी पुलिस थाने में अपीलार्थी पक्ष द्वारा महाबीर सिंह और अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध एक प्रति-मामला दर्ज कराया गया और उन्हें भी आरोप पत्रित किया गया । विचारण न्यायालय ने तारीख 17 मई, 2008 को अलग से पारित अपने निर्णय द्वारा

यह अभिनिर्धारित किया कि शिकायतकर्ता पक्ष अर्थात् महाबीर सिंह, भरत सिंह, गजराज, अनिल और सतीश विधिविरुद्ध जमाव गठित करने और ऋषि पाल तथा राजपाल को कुंद हथियार से गंभीर क्षति कारित करने के दोषी हैं और उन्हें दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित धारा 148, 323, 325 और 452 के अधीन दोषसिद्ध किया तथा उन्हें विभिन्न अवधि का कारावास अधिरोपित करते हुए दंडादिष्ट किया । इस आदेश से व्यथित होकर भरत सिंह, महाबीर और अन्य अभियुक्तों ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य और सामग्री का परिशीलन करने पर उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अभियोजन वृत्तांत पर घटनास्थल और हमले की रीति के संबंध में युक्तियुक्त संदेह है और उच्च न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि गिरधारी की मृत्यु और अभियुक्त महाबीर सिंह तथा अन्य अभियुक्तों को पहुंची क्षतियों के संबंध में समुचित रूप से स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है जो कि अभियोजन पक्षकथन के लिए घातक है और इस प्रकार महाबीर सिंह, भरत सिंह और अन्य अभियुक्तों को दोषमुक्त कर दिया ।

8. अपीलार्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री गुरु कृष्ण कुमार ने यह दलील दी है कि घटना अपीलार्थी के घर पर घटित हुई है जिसका यह अर्थ हुआ कि शिकायतकर्ता पक्ष (जिसमें 7 सदस्य हैं) इस घर पर हमलावरों के रूप में आए और अपीलार्थी के पास अपनी और अपने भाइयों की आत्मरक्षा के लिए गोली चलाने के सिवाय कोई विकल्प नहीं था और अपीलार्थी के अभिकथित कृत्य को किसी भी प्रकार से प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का अतिक्रमण नहीं कहा जा सकता । यह भी दलील दी गई है कि अपीलार्थी ने प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का विशेष रूप से उल्लेख किया है जिसे विचारण न्यायालय द्वारा स्वीकार किया गया था और इसे उच्च न्यायालय द्वारा खारिज किया जाना त्रुटिपूर्ण है । विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह दलील दी है कि उच्च न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन अभिलिखित अपीलार्थी के कथन का विच्छेदन करके, केवल अपराध में फंसाने वाले भाग को स्वीकार करके और उस स्पष्टीकरण संबंधी उस भाग को खारिज करके उच्च न्यायालय ने ठीक नहीं किया है कि किस प्रकार अग्न्यायुध से गोली चली और आक्षेपित निर्णय कायम रखे जाने योग्य नहीं है ।

9. इसके प्रतिकूल, प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि इस तर्क को साबित करने के लिए अभिलेख पर कोई भी तर्कसम्मत

साक्ष्य नहीं है कि शिकायतकर्ता पक्ष ने हमला किया था । यह दलील दी गई है कि शिकायतकर्ता के घर पर घटना घटित हुई थी किंतु पुलिस ने अपीलार्थियों की सहायता करने के लिए घटना के 3-4 दिन पश्चात् घटनास्थल बदल दिया । यह दलील दी गई है कि अपीलार्थियों द्वारा गोली चलाए जाने का कृत्य प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का प्रयोग करना नहीं है और उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के निर्णय को उलट कर ठीक ही किया है और दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपीलार्थी को ठीक ही दोषसिद्ध किया है ।

10. हमने परस्पर विरोधी दलीलों पर सावधानीपूर्वक विचार किया है और अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य, सामग्री तथा आक्षेपित निर्णय का परिशीलन किया है ।

11. भरत सिंह (अभि. सा. 1) ने सायंकाल में हुई घटना के संबंध में यह बताया है कि उस पर अभियुक्त पक्ष द्वारा कुल्हाड़ी से हमला किया गया था और भरत सिंह (अभि. सा. 1) ने यह घटना अपने भाइयों अर्थात् गिरधारी (मृतक) और अनिल कुमार (अभि. सा. 5) को बताई जो एक विवाह समारोह से घर पर लगभग 8.30 बजे अपराह्न में वापस आए थे । गिरधारी ने भरत सिंह की आलोचना की और जब वे सब गिरधारी के घर पर बातचीत कर रहे थे, अपीलार्थी और उसके भाई ऋषि पाल तथा राजपाल गिरधारी के घर पर घातक हथियारों से लैस होकर आए । अपीलार्थी राज सिंह ने बंदूक से गोली चलाई और गिरधारी के वक्ष में इस अग्न्यायुध से क्षति पहुंची और वह नीचे गिर गया । राज सिंह ने भरत सिंह (अभि. सा. 1) पर गोली चलाई और यह गोली उसके कंधे के पीछे की ओर लगी । जब महाबीर ने गिरधारी को उठाने का प्रयास किया, उस समय ऋषि पाल ने महाबीर पर देशी तमंचे से गोली चलाई । राजपाल और राजेन्द्र ने अभिकथित रूप से गजराज सिंह (अभि. सा. 6) पर लाठियों से वार किए और सभी अभियुक्त वहां से भाग गए, गिरधारी को अस्पताल ले जाया गया और उसे चिकित्सक द्वारा "मृत लाया गया" घोषित किया गया । भरत सिंह (अभि. सा. 1), अनिल कुमार (अभि. सा. 5) और गजराज (अभि. सा. 6) ने घटना के बारे में स्पष्ट रूप से बताया है, ये साक्षी सूक्ष्मता से प्रतिपरीक्षा किए जाने के बावजूद अपने कथन में अविचल रहे हैं और उनका साक्ष्य विश्वसनीय है । इसके अतिरिक्त, प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों का साक्ष्य चिकित्सीय साक्ष्य से प्रबलित हुआ है ।

12. प्रतिरक्षा पक्ष के इस अभिवाक् को साबित करने के लिए कि

शिकायतकर्ता पक्ष ने हमला किया था, ज्येष्ठ विज्ञान अधिकारी डा. कुलविन्दर सिंह (अभि. सा. 7) के साक्ष्य का अधिक अवलंब लिया गया है जिन्होंने यह कथन किया है कि वे तारीख 7 दिसंबर, 2004 को अभियुक्त के घर अर्थात् घटनास्थल पर गए थे और साथ ही मृतक गिरधारी के घर भी गए थे । स्थल नक्शा प्रदर्श पीजी/I के अनुसार मृतक का शव "ए" बिन्दु पर मिला था और पालिथीन-शीट पर रक्त के धब्बे पाए गए थे जिन्हें स्थल नक्शे में बिन्दु "सी" पर दिखाया गया है और गोबर पर भी रक्त के छींटें पाई गई थीं तथा घटनास्थल अर्थात् अभियुक्त के मकान के अहाते से एक ऊनी टोपी (मंकी कैप), चार चले हुए कारतूस और एक जिन्दा कारतूस बरामद किया गया । डा. कुलविन्दर सिंह (अभि. सा. 7) ने विशेष रूप से यह कथन किया है कि मृतक गिरधारी के मकान के अहाते में रक्त का कोई भी धब्बा या घटना घटित होने से संबंधित कोई भी प्रमाण नहीं मिला ।

13. तारीख 7 दिसंबर, 2004 को तैयार किए गए स्थल नक्शे और अभि. सा. 7 के साक्ष्य पर अधिक बल देते हुए अपीलार्थी के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह दलील दी है कि अभि. सा. 7 एक सरकारी पदधारी है और वह एक ऐसा स्वतंत्र साक्षी है जिसका अपीलार्थी के पक्ष में मिथ्या कथन देने का कोई कारण दिखाई नहीं देता है और इस साक्षी के साक्ष्य की सम्पुष्टि दो अन्वेषण अधिकारी अर्थात् पुलिस उप-निरीक्षक कुलदीप सिंह (अभि. सा. 8) और पुलिस सहायक उप-निरीक्षक राजेन्दर सिंह (अभि. सा. 13) के साक्ष्य से भी होती है । विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने में त्रुटि की है कि अभियुक्त के घर के अहाते में बरामद किया गया सामान 4-5 दिन तक कैसे पड़ा रहा और वह बरामद क्यों नहीं किया गया, उच्च न्यायालय ने अभि. सा. 13 के साक्ष्य का मूल्यांकन समुचित रूप से नहीं किया है और उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्षों को उलटने में त्रुटि की है ।

14. यह उल्लेखनीय है कि पुलिस उप-निरीक्षक कुलदीप सिंह (अभि. सा. 8) ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि तारीख 4 दिसंबर, 2004 को वह पुलिस उपाधीक्षक सूबे सिंह तथा अन्य पुलिस पदधारियों के साथ गिरधारी के घर गया था और उसने राजकुमार तथा अन्य व्यक्तियों के कथन अभिलिखित किए थे और इन साक्षियों के कथनानुसार घटनास्थल का मुआयना भी किया और तारीख 4 दिसंबर, 2004 को कोई भी स्थल नक्शा

नहीं बनाया गया था क्योंकि उस दिन घर की महिलाएं रो रही थीं और प्रत्येक व्यक्ति परेशान था । तारीख 5 दिसंबर, 2004 को पुलिस उप-निरीक्षक कुलदीप सिंह (अभि. सा. 8) ने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में उल्लिखित घटनास्थल का स्थल नक्शा तैयार किया, किंतु अभि. सा. 8 के अनुसार तारीख 5 दिसंबर, 2004 को घटनास्थल पर कोई भी भौतिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं था । तारीख 7 दिसंबर, 2004 को पुलिस सहायक उप-निरीक्षक राजेन्दर सिंह के साथ विशेषज्ञों के एक दल ने अभियुक्त राज सिंह और राजपाल के घर का निरीक्षण किया और उन्होंने 4 चले हुए कारतूस, एक जिन्दा कारतूस, एक ऊनी टोपी (मंकी कैप) और 5 जोड़ी हवाई चप्पलें तथा रक्त के धब्बे लगी एक पालिथीन बरामद कीं । यह सामान्य ज्ञान की बात है कि तारीख 7 दिसंबर, 2004 को बरामद की गईं उपरोक्त तात्विक वस्तुएं बड़ी आसानी से देखी जा सकती हैं । इसलिए यह अत्यंत अप्राकृतिक प्रतीत होता है कि उपरोक्त वस्तुएं तारीख 4 दिसंबर, 2004 और 5 दिसंबर, 2004 को बरामद नहीं की गईं जबकि अन्वेषण करने वाले दल ने दोनों ही दिन घटनास्थल का मुआयना किया था । इस पृष्ठभूमि के आधार पर तारीख 7 दिसंबर, 2004 को की गई अभिकथित बरामदगी के संबंध में डा. कुलविन्दर सिंह (अभि. सा. 7) और पुलिस सहायक उप-निरीक्षक राजेन्दर सिंह (अभि. सा. 13) के साक्ष्य पर विचार किया जाना चाहिए ।

15. पुलिस सहायक उप-निरीक्षक (अभि. सा. 13) ने यह कथन किया है कि उसने कुछ व्यक्तियों से पूछताछ की थी और उसे यह पता चला कि घटनास्थल वास्तव में अपीलार्थी का घर है और इसीलिए न्यायालय में यह दर्शाने के लिए किसी भी व्यक्ति की परीक्षा नहीं कराई गई है कि अभियुक्त का घर ही घटनास्थल है । तारीख 5 दिसंबर, 2004 को तैयार किए गए स्थल नक्शे में गिरधारी के घर के सामने के स्थान को घटनास्थल दिखाया गया है न कि अपीलार्थी के मकान के अहाते को । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभिलिखित अपने कथन में अभियुक्तों ने यह उल्लेख किया है कि भरत सिंह (अभि. सा. 1) और उसके भाई अनिल कुमार (अभि. सा. 5) मृतक गिरधारी एक साथ थे और वे अभियुक्त के मकान पर गए और यह भी उल्लेख किया है कि अभियुक्त का मकान ही घटनास्थल है । जैसाकि उच्च न्यायालय द्वारा ठीक ही मत व्यक्त किया गया है, अभियुक्तों ने अपने अभिवाक् को साबित करने के लिए किसी भी साक्षी की परीक्षा नहीं कराई है । इन महत्वपूर्ण पहलुओं को अनदेखा करते हुए, हमारी राय में, सेशन न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित

करने में ठीक नहीं किया है कि घटनास्थल अभियुक्तों का मकान था और यह कि हमला शिकायतकर्ता पक्ष ने किया था । विद्वान् सेशन न्यायाधीश द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण उचित नहीं है और अभियुक्तों के मकान को घटनास्थल अभिनिर्धारित करने के लिए जो कारण दिए गए हैं वे तथ्यात्मक रूप से कायम रखे जाने योग्य नहीं हैं और उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्षों को ठीक ही अपास्त किया है । हम उच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए इस निष्कर्ष से सहमत हैं कि अन्वेषण अधिकारी ने घटनास्थल में परिवर्तन करके अपीलार्थी की सहायता की है जिससे यह प्रतीत हो सके कि शिकायतकर्ता पक्ष के सदस्य ही हमलावर थे ।

16. **प्रतिरक्षा पक्ष का अभिवाक्** – अपीलार्थी का यह प्रतिवाद है कि उसने हमला नहीं किया है और चूंकि शिकायतकर्ता पक्ष के पास घातक आयुध थे जिससे अपीलार्थी के मन में युक्तियुक्त आशंका हुई कि उसके और उसके दो भाइयों के जीवन को खतरा हो सकता है, इसलिए अपीलार्थी के पास अपनी बंदूक से गोली चलाने के सिवाय कोई विकल्प नहीं बचा था और अपीलार्थी के अभिकथित कृत्य को किसी भी प्रकार से प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का अतिक्रमण नहीं कहा जा सकता है ।

17. प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का उल्लेख दंड संहिता की धारा 96 से 106 में किया गया है । धारा 96 के अंतर्गत यह उपबंध किया गया है कि "कोई बात अपराध नहीं है, जो प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार के प्रयोग में की जाती है" । दंड संहिता की धारा 97 के अधीन यह उपबंध किया गया है कि हर व्यक्ति को अपने शरीर और अपनी सम्पत्ति की प्रतिरक्षा करने का अधिकार है । दंड संहिता की धारा 100 के अधीन उस स्थिति का वर्णन किया गया है जिसके अंतर्गत शरीर की प्राइवेट रक्षा के अधिकार का विस्तार स्वेच्छया मृत्यु कारित करने तक हो जाता है । स्वेच्छया मृत्यु कारित करने की सीमा तक प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का दावा करने के लिए अभियुक्त को यह साबित करना चाहिए कि ऐसी परिस्थितियां थीं जिनके आधार पर इस आशंका के लिए युक्तियुक्त कारण थे कि अभियुक्त की या तो मृत्यु हो सकती थी या उसे घोर उपहति पहुंच सकती थी । प्राइवेट प्रतिरक्षा से संबंधित विधि के अधीन यह अपेक्षित नहीं है कि जिस व्यक्ति पर हमला किया गया है या जिस व्यक्ति को हमले की आशंका है, उसे अपनी सुरक्षा के लिए वहां से भाग जाना चाहिए । वह अपनी प्रतिरक्षा करने का हकदार है और विधि के अधीन उसे प्राइवेट प्रतिरक्षा का अधिकार दिया गया है । जहां कहीं भी खतरे की आशंका न

हो, वहां प्राइवेट प्रतिरक्षा का कोई भी अधिकार नहीं दिया जा सकता । खतरे से बचने और उसके घटित होने की संभावना वास्तविक और स्पष्ट दिखाई देनी चाहिए ।

18. प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार की व्याप्ति को **धर्म और अन्य** बनाम **हरियाणा राज्य**[1] वाले मामले के पैरा 18 और 19 में स्पष्ट करते हुए निम्न अभिनिर्धारित किया गया है :–

> "18. इस प्रकार, प्राइवेट प्रतिरक्षा के सिद्धांत का मुख्य उद्देश्य यह है कि जब किसी व्यक्ति या उसकी संपत्ति को खतरा होता है और राज्य से उसे कोई तत्काल सहायता उपलब्ध न हो तब वह व्यक्ति अपनी और अपनी संपत्ति की संरक्षा करने के लिए हकदार होगा । ऐसा होने पर, यह बात आवश्यक है कि जिस हिंसा का प्रयोग वह नागरिक अपनी और अपनी संपत्ति की रक्षा के लिए कर रहा है वह उस क्षति के असमानुपाती नहीं होनी चाहिए जिसके कारित होने की संभावना है या जिसकी युक्तियुक्त रूप से आशंका है और इसका प्रयोग विधिक प्रयोजन के परे नहीं किया जाना चाहिए । तथापि, हम यह भी कहना चाहते हैं कि भयभीत व्यक्ति अचानक जिन साधनों और जिस बल का प्रयोग उस भय से निपटने के लिए और स्वयं को या अपनी संपत्ति को बचाने के लिए करता है, उसका आंकलन बहुत सूक्ष्मता से नहीं किया जा सकता । न तो यह संभव है और न ही यह समझदारी की बात है कि भावमय मानदंड अधिकथित किए जाएं जिनका प्रयोग यह सुनिश्चित करने में किया जा सके कि जिन साधनों और जिस बल का प्रयोग भयभीत व्यक्ति द्वारा किया गया था, वह उचित था या नहीं । इस प्रश्न का उत्तर घटनास्थल की परिस्थितियों, सुसंगत समय पर भयभीत व्यक्ति की भावना, उस व्यक्ति पर होने वाले हमले की प्रकृति पर आधारित उस व्यक्ति के मन में आई भ्रान्ति और चेतना आदि जैसे कारकों पर निर्भर है । फिर भी प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का प्रयोग प्रतिशोधात्मक या दुर्भावनापूर्ण नहीं किया जाना चाहिए । ऐसा करना प्राइवेट प्रतिरक्षा के सिद्धांत के प्रतिकूल होगा ।
>
> 19. यह अतिसामान्य बात है कि आत्म-रक्षा के अभिवाक् को साबित करने का भार अभियुक्त पर है किंतु यह भार उतना अधिक

[1] (2007) 15 एस. सी. सी. 241.

नहीं जितना अभियोजन पक्ष पर होता है । चूंकि अभियोजन पक्ष को अपना पक्षकथन संदेह के परे साबित करना होता है, इसलिए अभियुक्त को आत्म-रक्षा के अभिवाक् को पूर्णतया साबित करने की आवश्यकता नहीं होती और वह अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री के आधार पर उस अभिवाक् के पक्ष में अधिसंभाव्यताओं की प्रबलता प्रकट करके इस भार से उन्मुक्त हो सकता है । **मुंशी राम** बनाम **दिल्ली प्रशासन** (ए. आई. आर. 1968 एस. सी. 702), **गुजरात राज्य** बनाम **बाई फातिमा** [(1975) 2 एस. सी. सी. 7] और **सलीम जिया** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** [(1979) 2 एस. सी. सी. 698] वाले मामले देखिए ।"

19. **भंवर सिंह और अन्य** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले के पैरा 50 और पैरा 60 में निम्न अभिनिर्धारित किया गया है :–

"50. अपीलार्थियों द्वारा प्राइवेट प्रतिरक्षा का अभिवाक् किया गया है । इस अभिवाक् का पूर्ण रूप से लाभ उठाने के लिए यह साबित किया जाना चाहिए कि अभियुक्त के पक्ष में प्राइवेट प्रतिरक्षा का अधिकार विद्यमान था और यह भी साबित किया जाना चाहिए कि इस अधिकार का विस्तार मृत्यु कारित करने तक है । इस प्रकार यदि न्यायालय को यह अभिवाक् खारिज करना हो, तब ऐसा दो प्रकार से किया जाना संभव है । एक ओर यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि शरीर की प्राइवेट प्रतिरक्षा का अधिकार विद्यमान था । तथापि, यदि आवश्यकता से अधिक अपहानि कारित की जाती है, तब इस अधिकार का विस्तार मृत्यु कारित करने तक नहीं हो सकता । इस नियम का प्रयोग करने के लिए दंड संहिता की धारा 300 के अपवाद 2 को लागू करना होगा जिसके अधीन यह उपबंध किया गया है कि मानव वध हत्या नहीं है, यदि अपराधी, शरीर या संपत्ति की प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का सद्भावपूर्वक प्रयोग करते हुए विधि द्वारा उसे दी गई शक्ति का अतिक्रमण कर दे, और पूर्वचिन्तन बिना और ऐसी प्रतिरक्षा के प्रयोजन से जितनी अपहानि करना आवश्यक हो उससे अधिक अपहानि करने के किसी आशय के बिना उस व्यक्ति की मृत्यु कारित कर दे जिसके विरुद्ध वह प्रतिरक्षा का ऐसा अधिकार प्रयोग में ला रहा हो । दूसरी ओर यह स्थिति है कि जहां तथ्यों का

[1] (2008) 16 एस. सी. सी. 657.

मूल्यांकन करने पर यह अभिनिर्धारित किया गया हो कि प्राइवेट प्रतिरक्षा का अधिकार बिल्कुल नहीं बनता है ।

60. सारवान् रूप से यह कहा जा सकता है कि प्राइवेट प्रतिरक्षा का अधिकार एक सुरक्षा का अधिकार है । यह अधिकार आक्रमण करने या बदला लेने का अधिकार नहीं है । जहां कहीं खतरा न हो, वहां प्राइवेट प्रतिरक्षा का अधिकार नहीं बनता । केवल उस व्यक्ति को प्राइवेट प्रतिरक्षा का अधिकार है जो अचानक ऐसे किसी संकट में पड़ जाता है जो स्वयं उसने उत्पन्न नहीं किया है । इस अधिकार का प्रयोग करने की आवश्यकता दिखाई देनी चाहिए और वह आवश्यकता वास्तविक या स्पष्ट होनी चाहिए ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है ।)

20. वर्तमान मामले में अपीलार्थी द्वारा प्राइवेट प्रतिरक्षा का अभिवाक् किया गया है । प्राइवेट प्रतिरक्षा के अभिवाक् का लाभ लेने के लिए अपीलार्थी को यह साबित करना होगा कि उसने अपने पक्ष में प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का प्रयोग किया है और इस अधिकार का प्रयोग मृत्यु कारित करने की सीमा तक किया जा सकता है । वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, हमें इस पर विचार करना होगा कि क्या अभियुक्त को प्राइवेट प्रतिरक्षा का अधिकार उपलब्ध था । अपीलार्थी का पक्षकथन इस प्रकार है कि शिकायतकर्ता पक्ष ने उसके मकान में बलपूर्वक प्रवेश किया और वे मारपीट करने लगे तथा अपीलार्थी को इस बात की युक्तियुक्त आशंका थी कि उसे उपहति पहुंच सकती है और इसीलिए उसने हवा में कुछ गोलियां चलाईं और गुत्थमगुत्था के दौरान शिकायतकर्ता पक्ष ने उससे पिस्तौल छीनने का प्रयास किया और गोली चल गई जो अचानक मृतक गिरधारी को लगी । अपीलार्थी का यह भी पक्षकथन है कि शिकायतकर्ता पक्ष हथियारों से लैस थे और वे हमलावरों के रूप में आए थे और उन्होंने अपीलार्थी और उसके भाइयों अर्थात् ऋषि पाल और राजपाल को गंभीर क्षतियां कारित कीं ।

21. डा. अरुण (प्रतिरक्षा साक्षी 2) ने ऋषि पाल को कारित क्षतियों के बारे में अपनी राय व्यक्त की है और यह कथन किया है कि ऋषि पाल के शरीर पर रगड़ और गुमटे कारित हुए थे और उसके बाएं पैर में दर्द था । राजपाल को अस्पताल लाया गया था जहां पर डा. अरुण (प्रतिरक्षा साक्षी 2) ने उसकी चिकित्सा परीक्षा की और उसकी बाईं कोहनी और दाईं कलाई

में दर्द और सूजन थी । डा. शैलजा अग्रवाल (प्रतिरक्षा साक्षी 1) ने ऋषि पाल के एक्सरे का मुआयना किया और यह निष्कर्ष निकाला कि उसके बाएं पैर की पांचवीं प्रपदास्थि में अस्थिभंग था । डा. शैलजा अग्रवाल ने राजपाल के एक्सरे का भी मुआयना किया और उसके दाएं हाथ की पांचवीं करभास्थि में अस्थिभंग था । इन अभियुक्तों के शरीर पर पाई गई क्षतियां अधिक गंभीर नहीं थीं ।

22. भरत सिंह और उसके भाइयों के पास कोई भी आयुध या घातक हथियार नहीं थे । अभियुक्त-अपीलार्थियों को उनके पक्ष में प्रतिरक्षा के लिए यदि कोई अधिकार प्राप्त है तो वह यह है कि अपीलार्थियों को शिकायतकर्ता पक्ष ने क्षतियां पहुंचाई हैं, किंतु वे क्षतियां अपीलार्थियों की स्थिति से असम्यक् रूप से असमानुपाती हैं क्योंकि शिकायतकर्ता पक्ष किसी भी घातक हथियार से लैस नहीं थे । इस प्रकार, अपीलार्थियों द्वारा गोली चलाई गई जिससे गिरधारी की मृत्यु हुई और उनका यह कृत्य तनिक भी उस क्षति को रोकने के लिए नहीं किया गया था जिसकी अपीलार्थियों को संभावना थी या जिसकी युक्तियुक्त रूप से आशंका हो सकती थी । किसी भी समय पर, अपीलार्थियों को युक्तियुक्त रूप से मृत्यु कारित किए जाने या गंभीर क्षति पहुंचाए जाने की कोई भी आशंका नहीं थी, किंतु फिर भी अभियुक्त-अपीलार्थियों ने आक्रामक रूप से कृत्य किया और मृतक पर गोली चलाई । उच्च न्यायालय ने भी अनिल कुमार (अभि. सा. 5) के साक्ष्य का अवलंब लेते हुए यह निष्कर्ष अभिलिखित किया है कि शिकायतकर्ता पक्ष के किसी भी हथियार से लैस न होने के बावजूद, अपीलार्थी ने 4 से 5 फुट की दूरी से गिरधारी पर गोली चलाई थी । अपीलार्थी ने बहुत निकट से उपेक्षापूर्ण रीति में गिरधारी पर गोली चलाई जिससे यह उपदर्शित होता है कि अभियुक्त-अपीलार्थी पक्ष ने ही शिकायतकर्ता पक्ष पर हमला किया था । विधि के अधीन किसी भी व्यक्ति को आत्मरक्षा का अधिकार ऐसी स्थिति में प्रदत्त नहीं किया गया है जब वह व्यक्ति स्वयं ही हमलावर हो । वर्तमान मामले में, शिकायतकर्ता पक्ष घातक हथियारों से लैस नहीं थे ; किंतु अपीलार्थी के पास पिस्तौल थी । जब अपीलार्थी और उसके साथियों ने अग्न्यायुध से अनेक गोलियां चलाते हुए हमला किया, तब ऐसी स्थिति में उच्च न्यायालय ने यह ठीक ही अभिनिर्धारित किया है कि अभियुक्तों द्वारा किया गया आत्मरक्षा का अभिवाक् चलने योग्य नहीं है । हमें ऐसा कोई कारण दिखाई नहीं देता है जिसके आधार पर दंड संहिता की धारा 302 के अधीन की गई अपीलार्थी

की दोषसिद्धि और उसे अधिरोपित आजीवन कारावास के दंडादेश में हस्तक्षेप किया जा सके ।

23. **विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 10739/2013 से उद्‌भूत दांडिक अपील** – जहां तक ऋषि पाल और राजपाल की दोषमुक्ति का संबंध है, विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय ने इन अपीलार्थियों को दोषमुक्त करने के लिए समवर्ती निष्कर्ष अभिलिखित किए हैं । अपील न्यायालय केवल ऐसी स्थिति में दोषमुक्ति के आदेश में हस्तक्षेप करता है जब निचला न्यायालय महत्वपूर्ण परिस्थितियों और साबित तथ्यों को अनदेखा करता है और दांडिक न्यायशास्त्र के सिद्धांतों का गलत अवलंब लेता है या उन्हें छिपाने का प्रयास करता है । वर्तमान मामले में, यह नहीं कहा जा सकता है कि ऋषि पाल और राजपाल की दोषमुक्ति के लिए निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष अयुक्तियुक्त हैं जिससे कि उनमें भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करते हुए हस्तक्षेप किया जाना आवश्यक हो और यह अपील खारिज किए जाने योग्य है ।

24. **विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 6347/2013 से उद्‌भूत दांडिक अपील** – जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, उसी दिन अर्थात् तारीख 4 दिसंबर, 2004 को उसी थाने में (पुलिस थाना, सोहना) में एक प्रति मामला शिकायतकर्ता पक्ष अर्थात् महाबीर, सतीश, भरत सिंह, गजराज, अनिल और देवेन्दर के विरुद्ध दर्ज कराया गया था । शिकायतकर्ता राज सिंह के अनुसार तारीख 3 दिसंबर, 2004 को बीमारी के कारण वह अपने घर पर ही था और उस समय उसने गाली-गलौज की आवाज सुनी और जब वह अपने भाई राजपाल के मकान पर पहुंचा, उसने गिरधारी को जमीन पर पड़ा हुआ देखा । इस साक्षी ने यह भी कथन किया है कि महाबीर, गजराज, अनिल, देवेन्दर, भरत सिंह और "सतीश पुत्र महिपाल" वहां मौजूद थे और गजराज के पास लाठी थी, महाबीर के पास देशी तमंचा, अनिल के पास फरसा, देवेन्दर और लालू के पास सरिए और भरत सिंह के पास देशी तमंचा तथा सतीश के हाथ में सरिया था और इन व्यक्तियों ने उसके भाई राजपाल और ऋषि पाल को क्षतियां कारित कीं । अन्वेषण पूरा होने के पश्चात्, महाबीर और अन्य अभियुक्तों के विरुद्ध सेशन मामला सं. 3/2006 के अंतर्गत आरोप पत्र फाइल किया गया । तारीख 17 मई, 2008 को अलग से पारित किए गए आदेश के अनुसार अपर सेशन न्यायाधीश, त्वरित न्यायालय, गुड़गांव ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रत्यर्थी पक्ष अर्थात्

महाबीर, सतीश **उर्फ** लल्लू, भरत सिंह, गजराज और अनिल विधिविरुद्ध जमाव गठित करने और कुंद हथियार से गंभीर क्षति पहुंचाने के दोषी हैं और त्वरित न्यायालय ने उन्हें दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित धारा 148, 323, 325 और 452 के अधीन दोषसिद्ध किया । विचारण न्यायालय ने प्रत्येक अभियुक्त को दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित धारा 325 के अधीन दोषसिद्ध करने पर उन्हें 2 वर्ष का कठोर कारावास भोगने और प्रत्येक को 1,500/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर अतिरिक्त कारावास भोगने का दंडादेश दिया । अन्य अपराधों के अधीन दोषसिद्ध किए जाने पर अभियुक्तों को कारावास और जुर्माना अधिरोपित किए जाने के अनेक दंडादेश दिए गए और सभी दंडादेशों को साथ-साथ चलाए जाने का आदेश भी किया गया । अभियुक्त देवेन्दर को संदेह का लाभ देते हुए सभी आरोपों से दोषमुक्त कर दिया गया । दोषसिद्धि के निर्णय को चुनौती देते हुए, महाबीर और अन्य अभियुक्तों ने पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की एकल न्यायपीठ के समक्ष दांडिक अपील सं. एस-1062/2008 फाइल की और उच्च न्यायालय ने तारीख 30 जनवरी, 2013 को पारित एक ही आदेश द्वारा अभियुक्तों की अपील मंजूर की और उन्हें सभी आरोपों से दोषमुक्त कर दिया ।

25. जैसाकि पहले ही चर्चा की गई है, घटनास्थल राज सिंह या उसके भाई का मकान नहीं था जो कि इस तथ्य से भी स्पष्ट हो जाता है कि अपराध से संबंधित तात्विक वस्तुएं तत्काल बरामद नहीं की गई थीं अपितु 3-4 दिन के अंतराल के बाद ही उन्हें बरामद किया गया था और इस विलंब के संबंध में पुलिस उप-निरीक्षक कुलदीप सिंह (अभि. सा. 8) और सहायक पुलिस उप-निरीक्षक द्वारा कोई भी विश्वसनीय स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है । अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य का परिशीलन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि भरत सिंह और अन्य व्यक्तियों द्वारा किसी भी अग्न्यायुध का प्रयोग नहीं किया गया था और न ही ऐसा कोई भी अग्न्यायुध उनके पास से बरामद किया गया है । जहां तक ऋषि पाल और राजपाल को पहुंची क्षतियों का संबंध है, राजपाल को विदीर्ण क्षतियां पहुंची हैं और उसकी करभास्थित की पांचवीं अस्थि में अस्थिभंग पाया गया है और ऋषि पाल की प्रपदास्थि की पांचवीं अस्थि में अस्थिभंग पाया गया है । चिकित्सकों ने यह राय दी है कि उक्त क्षतियां जमीन पर गिरने से कारित हो सकती हैं । जैसाकि पहले ही चर्चा की जा चुकी है, महाबीर और अन्य व्यक्तियों ने न तो हमला किया था और न ही उन्होंने उक्त क्षतियां कारित

करने के लिए कोई पूर्वचिन्तन किया था । तथ्यों और परिस्थितियों तथा कारित की गई क्षतियों की प्रकृति पर विचार करने पर उच्च न्यायालय ने यह ठीक ही अभिनिर्धारित किया है कि शिकायतकर्ता पक्ष (महाबीर और अन्य) ने प्राइवेट प्रतिरक्षा के लिए कृत्य किया था और उन्हें आरोपों से ठीक ही दोषमुक्त किया है । क्षतियों की प्रकृति और अभिलेख पर प्रस्तुत अन्य सामग्री पर विचार करने पर, हमारे मतानुसार शिकायतकर्ता पक्ष ने प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का अतिक्रमण नहीं किया है और उन्होंने उतनी ही क्षति पहुंचाई है जितनी प्राइवेट प्रतिरक्षा के प्रयोजन के लिए आवश्यक थी । उच्च न्यायालय ने साक्ष्य का मूल्यांकन करने पर महाबीर और अन्य व्यक्तियों को ठीक ही दोषमुक्त किया है और हमें उच्च न्यायालय के आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई कारण दिखाई नहीं देता है ।

26. **विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 5767-5768/2013 से उद्भूत दांडिक अपील** – दंड संहिता की धारा 302 के अधीन की गई अपीलार्थी राज सिंह की दोषसिद्धि और अधिरोपित आजीवन कारावास के दंडादेश की पुष्टि की जाती है और उसके द्वारा प्रस्तुत की गई अपीलें खारिज की जाती हैं । विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 6347 और 10739/2013 से उद्भूत दांडिक अपीलें जो कि राज कुमार और भरत सिंह द्वारा फाइल की गई थीं, खारिज की जाती हैं ।

अपीलें तदनुसार निपटाई गईं ।

न्यायालय का वह निर्णय जो न्यायमूर्ति टी. एस. ठाकुर ने दिया इस प्रकार है :–

न्या. ठाकुर – मैंने अपनी आदरणीय बहिन न्यायमूर्ति भानुमति द्वारा पारित किए गए आदेश का परिशीलन सुविधाजनक रूप से किया है और मैं उनके निष्कर्ष से सहमत हूं तथा साथ ही उनके निष्कर्ष के समर्थन में अपना विचार व्यक्त करना चाहता हूं ।

2. दंड संहिता की धारा 300 के अपवाद 2 के अधीन यह उपबंध किया गया है कि आपराधिक मानव वध हत्या नहीं है, यदि अपराधी, शरीर या सम्पत्ति की प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार को सद्भावपूर्वक प्रयोग में लाते हुए विधि द्वारा उसे दी गई शक्ति का अतिक्रमण कर दे, और पूर्वचिंतन बिना और ऐसी प्रतिरक्षा के प्रयोजन से जितनी अपहानि करना आवश्यक हो उससे अधिक अपहानि करने के किसी आशय के बिना उस व्यक्ति की मृत्यु कारित कर दे जिसके विरुद्ध वह प्रतिरक्षा के इस अधिकार

का प्रयोग कर रहा हो । इसके प्रतिकूल दंड संहिता की धारा 96 द्वारा अनुमोदित प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार के संबंध में यह उपबंध किया गया है कि कोई बात अपराध नहीं है, जो प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार के प्रयोग में की जाती है । दंड संहिता की धारा 97 के अधीन शरीर और सम्पत्ति की प्राइवेट प्रतिरक्षा के संबंध में उपबंध किया गया है जो निम्न प्रकार है :—

> "97. **शरीर तथा सम्पत्ति की प्राइवेट प्रतिरक्षा का अधिकार** — धारा 99 में अंतर्विष्ट निर्बंधनों के अध्यधीन, हर व्यक्ति को अधिकार है कि, वह —
>
> **पहला** — मानव शरीर पर प्रभाव डालने वाले किसी अपराध के विरुद्ध अपने शरीर और किसी अन्य व्यक्ति के शरीर की प्रतिरक्षा करे ;
>
> **दूसरा** — किसी ऐसे कार्य के विरुद्ध जो चोरी, लूट, रिष्टि या आपराधिक अतिचार की परिभाषा में आने वाला अपराध है, या जो चोरी, लूट, रिष्टि या आपराधिक अतिचार करने का प्रयत्न है, अपनी या किसी अन्य व्यक्ति की, चाहे जंगम, चाहे स्थावर सम्पत्ति की प्रतिरक्षा करे ।"

3. दंड संहिता की धारा 99 उन कृत्यों के बारे में है जिनके संबंध में प्राइवेट प्रतिरक्षा का कोई अधिकार नहीं दिया गया है और इस धारा के अधीन अन्य बातों के साथ यह उपबंध किया गया है कि किसी भी दशा में प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का विस्तार उतनी अपहानि से अधिक अपहानि करने पर नहीं है, जितनी प्रतिरक्षा के प्रयोजन से करनी आवश्यक है । दंड संहिता की धारा 100 के अधीन ऐसी स्थिति के बारे में जिसमें शरीर की प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का विस्तार मृत्यु कारित करने या कोई अन्य अपहानि कारित करने तक है यदि वह अपराध, जिसके कारण उस अधिकार के प्रयोग का अवसर आता है इस धारा में प्रगणित भांतियों में से किसी भी भांति का है । उक्त उपबंध के अधीन प्रगणित अपराधों में मृत्यु कारित करना, घोर उपहति पहुंचाना, बलात्संग करना, प्रकृति के विरुद्ध काम-तृष्णा की तृप्ति और व्यपहरण या अपहरण करने के आशय से किया जाने वाला हमला है । इसी प्रकार दंड संहिता की धारा 103 सम्पत्ति की प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का विस्तार मृत्यु कारित करने तक उन परिस्थितियों में हो जाता है जो इस धारा के अधीन प्रगणित की गई हैं जिनमें लूट, रात्रौ गृह-भेदन, अग्नि द्वारा रिष्टि जो किसी ऐसे निर्माण, तम्बू

या जलयान को की गई है, जो मानव आवास के रूप में या सम्पत्ति की अभिरक्षा के स्थान के रूप में उपयोग में लाया जाता है, जैसे अपराध आते हैं ।

4. दंड संहिता की धारा 96 से 103 के उपबंधों और धारा 300 के अपवाद 2 का संयुक्त परिशीलन करने पर कोई संदेह नहीं रह जाता है कि आपराधिक मानव वध हत्या नहीं है यदि अपराधी, व्यक्ति या संपत्ति की प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का प्रयोग सद्भावना से करते हुए उसे विधि द्वारा दी गई शक्ति का अतिक्रमण कर देता है और उस व्यक्ति की मृत्यु कारित कर देता है जिसके विरुद्ध उसने प्रतिरक्षा के उस अधिकार का प्रयोग किया था, परंतु यह तब जब कि ऐसे अधिकार का प्रयोग, पूर्वचिंतन के बिना और ऐसी अपहानि से अधिक अपहानि के आशय के बिना, किया जाए जो ऐसी प्रतिरक्षा के प्रयोजन के लिए आवश्यक हो । यह स्थिति ऐसे मामलों में तो बहुत दिखाई देती है जहां अभियुक्त प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का प्रयोग करता है वहां सबसे प्रथम प्रश्न, जिस पर न्यायालय द्वारा विचार किया जाता है यह सामने आता है कि क्या अभियुक्त ऐसी स्थिति में प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का प्रयोग कर सकता था जिसमें उसने मृत्यु या अपहानि कारित की है । यदि ऐसे प्रश्न का उत्तर नकारात्मक है, तब दंड संहिता की धारा 300 के अपवाद 2 से अभियुक्त को कोई सहायता नहीं मिलेगी । अपवाद 2 के अधीन यह पूर्वकल्पना की गई है कि अपराधी को व्यक्ति या संपत्ति की प्राइवेट प्रतिरक्षा का अधिकार था किन्तु उसने मृत्यु कारित करके इस अधिकार का अतिक्रमण किया है । ऐसा तब होगा जब प्रथम प्रश्न का उत्तर सकारात्मक है अर्थात् यह हो कि अपराधी को व्यक्ति या संपत्ति की प्राइवेट प्रतिरक्षा का अधिकार था तब अगला प्रश्न यह सामने आता है कि क्या उसने इस अधिकार का प्रयोग सद्भावना से और बिना पूर्वचिंतन के किया था और इस अपहानि से अधिक अपहानि कारित करने के आशय के बिना किया था जो ऐसी प्रतिरक्षा के प्रयोजन के लिए आवश्यक थी । यदि इनमें से किसी भी प्रश्न का उत्तर नकारात्मक है तब अपराधी दंड संहिता की धारा 300 के अपवाद 2 का फायदा लेने का हकदार नहीं होगा । इस विषय पर विधिक स्थिति इस न्यायालय के कई विनिश्चयों द्वारा पूर्णतया सुस्थापित है जिसके लिए न्यायमूर्ति बानुमति द्वारा निर्देश किया गया है । अतः, उन विनिश्चयों को पुनः निर्दिष्ट करने से कोई लाभ नहीं होगा । कुल मिलाकर यह आवश्यक है कि क्या किसी व्यक्ति या संपत्ति की प्राइवेट प्रतिरक्षा का अधिकार अपराधी को उपलब्ध था या नहीं और यह प्रथम प्रश्न है जो वर्तमान जैसे

मामले में अभियुक्त द्वारा कारित किए गए अपराध की प्रकृति को विनिश्चित करते समय तय किया जाना चाहिए, दूसरी ओर प्राइवेट प्रतिरक्षा का अधिकार किसी अपराधी को उपलब्ध था या नहीं, तथ्य का एक ऐसा प्रश्न है या विधि और तथ्य का एक मिश्रित प्रश्न है जो न्यायालय में प्रस्तुत किए जाने वाले प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर विनिश्चित किया जाना चाहिए ।

5. वर्तमान मामले में, उच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से यह निष्कर्ष अभिलिखित किया है कि अपीलार्थियों ने इस घटना में हमलावर के रूप में कृत्य किया है जिसके परिणामस्वरूप मृतक गिरधारी लाल की मृत्यु हुई । न्यायमूर्ति बानुमति ने प्रस्तावित आदेश में उस निष्कर्ष का समर्थन करने वाला आदेश निर्दिष्ट किया है । जब एक बार यह अभिनिर्धारित कर दिया गया है कि राज सिंह और अन्य ने हमला किया था और यह कि घटना, जैसाकि अपीलार्थियों द्वारा अभिकथन किया गया है, अपीलार्थियों के घर में नहीं अपितु शिकायतकर्ता के घर में घटित हुई थी, इस बात की कोई गुंजाइश नहीं है कि अपीलार्थी दंड संहिता की धारा 300 के अपवाद 2 का लाभ लेने का दावा कर सकें । ऐसा इसलिए होगा कि जब न तो मृतक गिरधारी लाल ने और न ही अन्य किसी ऐसे व्यक्ति ने, जिसकी अभियोजन पक्ष के रूप में परीक्षा कराई गई थी, शिकायतकर्ता के साक्ष्य का समर्थन किया है कि अपीलार्थी हथियारों से लैस थे । अतः, यह प्रश्न कि क्या अपीलार्थियों ने प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का अतिक्रमण किया है, वास्तव में विचार के लिए उद्भूत होता है । चूंकि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर ऐसा कोई भी अधिकार उन्हें उपलब्ध नहीं था, इसलिए उस अधिकार का अतिक्रमण किए जाने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है ।

6. उपरोक्त चर्चा के आधार पर, मैं अपनी आदरणीय बहिन के प्रस्तावित निर्णय से सहमत हूं ।

अपील खारिज की गई ।

अस.

उत्तर प्रदेश राज्य

बनाम

सतवीर और अन्य

1 जुलाई, 2015

न्यायमूर्ति पिनाकी चन्द्र घोष और न्यायमूर्ति उदय उमेश ललित

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) – धारा 3 [सपठित भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 302 और 34] – एक मात्र साक्षी – घटना के संबंध में एकमात्र साक्षी के साक्ष्य, घटना घटित होने की रीति, अपराध में अन्य लोगों के सम्मिलित होने जैसी परिस्थिति के कारण युक्तियुक्त संदेह से परे यह साबित नहीं होता कि अभियुक्तों द्वारा अपराध किया गया, अतः एकमात्र साक्षी के संदेहास्पद साक्ष्य के आधार पर अभियुक्तों को दोषसिद्ध नहीं ठहराया जा सकता ।

तारीख 24 फरवरी, 2006 को 12.45 बजे अपराह्न में सोहन लाल द्वारा अभिलिखित रूप बसंत (अभि. सा. 1) के कथन के अनुसरण में पुलिस थाना, खुर्जा देहात, जिला बुलन्दशहर में प्रत्यर्थियों के विरुद्ध अपराध मामला सं. 23 दर्ज कराया गया । यह अभिकथन किया गया कि घटना के दिन आकाश आयु लगभग 8 वर्ष जो कि उक्त अभि. सा. 1 का भतीजा है अंबेडकर पार्क के निकट खेल रहा था । लगभग 10.00 बजे पूर्वाह्न में प्रत्यर्थी सुभद्रा उक्त आकाश को अपनी बैठक पर ले गई जिसे ग्रामवासी मेवा राम और विजय पाल द्वारा देखा गया था । उस समय उक्त सुभद्रा के तीन पुत्र जो सुभद्रा के साथ इस मामले में प्रत्यर्थी हैं, बरामदे में बैठे हुए थे । वे आकाश को लेकर अंदर की ओर चले गए और लगभग आधे घंटे तक बाहर नहीं आए । यह अभिकथन किया गया है कि इसके पश्चात् प्रत्यर्थी एक थाल लेकर बाहर आए जिसमें पूजा की सामग्री रखी हुई थी और वे पूजा के लिए चमुंडा मठ की ओर चल दिए । चूंकि मेवा राम और विजय पाल ने आकाश को बाहर आते नहीं देखा इसलिए उन्हें कुछ होने का संदेह हुआ और प्रत्यर्थियों के चमुंडा मठ के लिए रवाना हो जाने पर वे तत्काल ही बैठक के अंदर चले गए । जैसे ही उन्होंने वहां प्रवेश किया उन्होंने आकाश का शव रक्त से लथपथ पाया और उसके नथुनों और कानों से रक्त निकल रहा था । उन्होंने शोर मचाया जिसके

परिणामस्वरूप ग्रामवासी एकत्र हो गए । जब ग्रामवासियों ने आकाश का शव देखा तब स्थिति तनावपूर्ण और वहां का वातावरण पूर्णतया संकटमय हो गया । इसके पश्चात् लोग मठ पर गए और उन्होंने प्रत्यर्थियों पर हमला किया । जब प्रत्यर्थियों को गिरफ्तार किया गया था, उस समय अभियुक्त संजय की तलाशी से रक्त-रंजित दरांती बरामद की गई । चूंकि प्रत्यर्थी के शरीर पर क्षतियां पाई गई थीं, इसलिए उन्हें डा. ए. कुमार (अभि. सा. 3) के पास उपचार के लिए भेज दिया गया जिन्होंने प्रत्यर्थी संजय के शरीर पर 17 क्षतियां, प्रत्यर्थी सतवीर के शरीर पर 1 क्षति और प्रत्यर्थी सुभद्रा के शरीर पर 4 क्षतियां पाईं । चिकित्सक की राय में ये क्षतियां ताजा पाई गई थीं जो संभवतः उसी दिन लगभग 11.15 बजे पूर्वाह्न में कारित की गई थीं । अन्वेषण अधिकारी ने स्थल नक्शा (प्रदर्श क-15) तैयार किया जिसके अनुसार प्रश्नगत बैठक का आकार 12 फुट × 12 फुट था जिसमें एक द्वार दिखाया गया था और उसके साथ ही सामने की ओर बरामदा दिखाया गया था और इस बैठक के चारों ओर दीवार थी । अन्वेषण अधिकारी ने बैठक से रक्त-रंजित मिट्टी बरामद की और चमुंडा मठ से रक्त-रंजित सीमेंट का टुकड़ा बरामद किया और परीक्षण के पश्चात् यह रक्त मानव रक्त पाया गया । अन्वेषण पूरा होने के पश्चात्, प्रत्यर्थियों के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया गया और अपर सेशन न्यायाधीश (त्वरित न्यायालय), बुलन्दशहर में 2006 का सेशन विचारण मामला सं. 516 के अनुसार दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 और अपराध विधि संशोधन अधिनियम की धारा 7 के अधीन विचारण किया गया । अभियोजन पक्ष ने अपने पक्षकथन के समर्थन में दो चिकित्सकों अर्थात् अभि. सा. 3 और अभि. सा. 7 और इत्तिलाकर्ता रूप बसंत (अभि. सा 1) सहित 7 साक्षियों की परीक्षा कराई । मेवा राम की परीक्षा अभि. सा. 2 के रूप में कराई गई । इस साक्षी ने अपने परिसाक्ष्य में यह कथन किया है कि तारीख 21 फरवरी, 2006 को लगभग 10.00 बजे पूर्वाह्न में जब वह विजय पाल के साथ एक चिकित्सक के क्लीनिक के बाहर तिपाई पर अंबेडकर पार्क के सामने बैठा हुआ था, उसने प्रत्यर्थी सुभद्रा को आकाश का हाथ पकड़कर बैठक की ओर ले जाते हुए देखा जहां पर प्रत्यर्थी सतवीर, संजय और शीशपाल पहले से मौजूद थे । इसके पश्चात् सभी प्रत्यर्थी आकाश के साथ अंदर की ओर चले गए और लगभग आधे घंटे तक बाहर नहीं आए । इसके पश्चात् प्रत्यर्थी पूजा की सामग्री रखा हुआ थाल लेकर बाहर आए और चमुंडा मठ की ओर चले गए । चूंकि आकाश कहीं भी दिखाई नहीं दिया, इसलिए इस साक्षी और विजय पाल को संदेह हुआ । वे तत्काल बैठक के अंदर गए और

उन्होंने आकाश का शव रक्त से लथपथ देखा । इस साक्षी ने यह भी कथन किया है कि उसने चमुंडा मठ में सीमेंट से बने फर्श पर रक्त के धब्बे देखे थे और इस साक्षी के अनुसार प्रत्यर्थी तंत्र-मंत्र में लगे हुए थे । इस साक्षी ने यह कथन किया है कि प्रत्यर्थियों के शरीर पर जो क्षतियां पाई गई थीं वो ग्रामवासियों द्वारा पिटाई किए जाने से कारित हुई थीं और यह कि प्रत्यर्थी घटना के पश्चात् वहां से भाग गए थे । इस साक्षी की प्रतिपरीक्षा के दौरान ऐसा कोई सुझाव नहीं दिया गया है कि उक्त बैठक के स्वामी प्रत्यर्थी नहीं थे या उस पर प्रत्यर्थियों का नियंत्रण नहीं था । विचारण न्यायालय द्वारा किए गए निर्देश के आधार पर मामला उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया । प्रत्यर्थियों ने 2006 की दांडिक अपील सं. 7911 भी फाइल की जिसमें उन्होंने अपनी दोषसिद्धि और दंडादेश को चुनौती दी । उच्च न्यायालय ने अपने अपीलाधीन निर्णय के अनुसार निर्देश खारिज कर दिया और प्रत्यर्थियों को उन पर लगाए गए आरोपों से दोषमुक्त करते हुए उनकी अपील मंजूर की । उच्च न्यायालय ने यह स्वीकार किया कि अभियोजन पक्ष ने यह साबित किया है कि 8 वर्ष की आयु वाले लड़के आकाश की हत्या तारीख 24 फरवरी, 2006 को लगभग 10.00 बजे पूर्वाह्न में प्रत्यर्थियों की बैठक में की गई है । तथापि, उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि अभियोजन पक्ष इस अपराध में प्रत्यर्थियों की अपराधिता साबित करने में असफल रहा है । इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की अंतर्वस्तु और भाषा का परिशीलन करने पर यह विश्वसनीय दस्तावेज प्रतीत नहीं होता है और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट लिखने वाले व्यक्ति अर्थात् सोहन लाल की परीक्षा भी नहीं कराई गई है । उच्च न्यायालय के अनुसार इस बात का कोई कारण दिखाई नहीं देता है कि एक बड़ी संख्या में ग्रामवासियों ने प्रत्यर्थियों को पकड़ लिया था और उनके साथ मार-पिटाई की किंतु फिर भी उन्हें वहां से जाने दिया और यह भी विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता है कि 58 वर्ष की महिला सुभद्रा वहां से फरार होने में सफल हो गई । प्रत्यर्थियों की इस दलील में बल दिखाई देता है कि घटनास्थल एक खुला स्थान था जहां पर कोई भी आ जा सकता था । राज्य ने व्यथित होकर उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए दोषमुक्ति को चुनौती देते हुए वर्तमान अपील प्रस्तुत की है । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलें खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री के संदर्भ में एकमात्र साक्षी के परिसाक्ष्य पर विचार करेंगे । मेवा राम (अभि. सा. 2) के अनुसार वह विजय

पाल के साथ उस समय एक चिकित्सक के क्लीनिक के सामने तिपाई पर बैठा हुआ था जब प्रत्यर्थी आकाश को बैठक में ले जा रहे थे । इस साक्षी के अपने परिसाक्ष्य के अतिरिक्त अभियोजन पक्ष द्वारा अभिलेख पर कोई भी सामग्री प्रस्तुत नहीं की गई है जिससे इस साक्षी की मौजूदगी और उसके द्वारा दिए गए कथन की सम्पुष्टि की जा सके । प्रथमतः इस संबंध में कोई कारण नहीं दिया गया है कि मेवा राम और विजय पाल चिकित्सक की क्लीनिक के बाहर तिपाई पर क्यों बैठे हुए थे । न तो चिकित्सक और न ही विजय पाल की परीक्षा कराई गई है । साक्षी के परिसाक्ष्य के अतिरिक्त ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिससे ये उपदर्शित होता हो कि मेवा राम (अभि. सा. 2) वास्तव में सुसंगत समय पर मौजूद था या नहीं । द्वितीयतः, वह स्थान जहां से उसने अभिकथित रूप से घटना देखी थी, नैसर्गिक स्थान नहीं है जहां पर वह साक्षी रहता हो या कोई व्यवसाय करता हो । इस साक्षी के वहां मौजूद होने का कारण अभिलेख पर प्रस्तुत नहीं किया गया है । यह कारण भी नहीं दिया गया है कि यह साक्षी 20-25 मिनट तक वहां क्यों बैठा रहा । तृतीयतः, आकाश के घर से किसी भी सदस्य की परीक्षा नहीं कराई गई है और न ही रूप बसंत (अभि. सा. 1) ने यह स्पष्ट किया है कि आकाश घर से कब निकला था और वह किसके साथ खेल रहा था । अभियोजन पक्ष ने उन बच्चों के नाम भी नहीं दिए हैं न ही उनमें से ऐसे किसी भी बच्चे की परीक्षा कराई गई है जो यह बता पाता कि उसने आकाश को प्रश्नगत स्थान पर खेलते हुए देखा था । अभिलेख पर ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिससे इस बात की सम्पुष्टि हो सके कि आकाश अन्य बच्चों के साथ मौजूद था । चतुर्थतः, ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिससे यह उपदर्शित होता हो कि आकाश का घर कितनी दूर था और क्या घटनास्थल ऐसा स्थान था जहां पर आकाश सामान्यतया खेला करता था । अंतिमतः, यदि इस घटना से ग्राम में इतना संकटमय वातावरण हो गया था कि ग्रामवासियों को प्रत्यर्थियों के साथ बल का प्रयोग करना पड़ा, तब ऐसी स्थिति में ऐसा कोई कारण दिखाई नहीं पड़ता है कि उन ग्रामवासियों में से किसी भी ग्रामवासी की परीक्षा क्यों नहीं कराई गई । घटना के संबंध में एकमात्र साक्षी के साक्ष्य, घटना घटित होने की रीति, प्रत्यर्थियों का अपराध में अंतर्वलित होना – चाहे सभी अपराधी हों या उनमें से कुछ जैसे तथ्यों को ध्यान में रखते हुए अभिलेख पर ऐसी कोई सामग्री दिखाई नहीं देती है जिससे यह संभव हो सके कि एकमात्र साक्षी के साक्ष्य की विश्वसनीयता की परख कर सकें । न्यायालय के मतानुसार, यह संदेहपूर्ण है कि मेवा राम (अभि. सा. 2) को नैसर्गिक और विश्वसनीय साक्षी

कहा जाए और उसके साक्ष्य पर पूर्णतया अवलंब लिया जाए । आकाश किन-किन स्थानों पर गया था, यह सिद्ध नहीं किया गया है जिसके परिणामस्वरूप यह साबित नहीं होता है कि आकाश वास्तव में वहां मौजूद था, जैसाकि साक्षी द्वारा बताया गया है । चूंकि मेवा राम (अभि. सा. 2) एकमात्र साक्षी है और सम्पूर्ण पक्षकथन इसी साक्षी के परिसाक्ष्य पर निर्भर है, इसलिए न्यायालय ने सूक्ष्मता से परिशीलन किया है जिससे संभवतया पुष्टि हो जाती है । तथापि, न्यायालय को ऐसी कोई सामग्री दिखाई नहीं देती है । इस एकमात्र साक्षी के परिसाक्ष्य का अवलंब लेने के लिए न्यायालय ने महत्वपूर्ण विशिष्टियों से सम्पुष्टि करने का प्रयास किया है, जिसका दुर्भाग्यवश अभाव है । सम्पूर्ण सामग्री का आंकलन करने पर कई बातों पर संदेह बना रहता है और कई प्रश्न निरुत्तर रह जाते हैं । दो तथ्य अर्थात् पहला यह बैठक प्रत्यर्थियों की थी और दूसरा यह कि आकाश का शव वहां पाया गया था, अत्यन्त महत्वपूर्ण है किंतु इनके आधार पर प्रत्यर्थियों को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है । बैठक, घर का भाग नहीं है और वह सड़क के पार बनी हुई थी जिसमें बड़ी सुगमता से अन्य व्यक्ति भी आ-जा सकते थे । मुख्य बात यह है कि सभी प्रत्यर्थियों या उनमें से कुछ की मौजूदगी पूर्णतया साबित नहीं की गई है । अब अभिलेख पर प्रस्तुत अन्य बिन्दुओं पर विचार किए जाने की आवश्यकता है । प्रत्यर्थियों को उसी दिन गिरफ्तार किया गया था जब उनमें से एक प्रत्यर्थी अर्थात् संजय को अभिकथित रूप से रक्त-रंजित दरांती के साथ पाया गया था । अभियोजन पक्ष के अनुसार हथियार रक्त-रंजित पाया गया था और वह उक्त संजय की धोती में छिपा हुआ था । तथापि, प्रत्यर्थी संजय की रक्त-रंजित धोती बरामद नहीं की गई । इस संबंध में किसी भी प्रत्यर्थी के कब्जे से कोई भी रक्त-रंजित कपड़ा बरामद नहीं किया गया यद्यपि उन्हें इस अपराध का अपराधी कहा गया है जिसके परिणामस्वरूप आकाश का शव रक्त से लथपथ पाया गया था । चमुंडा मठ के सीमेंट से बने भाग पर रक्त के धब्बे पाए गए थे यद्यपि वह रक्त मानव रक्त पाया गया था किंतु न्यायालयिक प्रयोगशाला द्वारा किए गए परीक्षण के अनुसार वह रक्त अपघटित पाया गया था । इस प्रकार एकमात्र साक्षी के साक्ष्य पर सतर्कतापूर्ण विचार किया जाना चाहिए और अन्य साक्ष्य से उस साक्ष्य की परख भी करनी चाहिए और इसके अतिरिक्त ऐसा एकमात्र साक्ष्य विश्वासोत्पादक तथा संदेह के परे भी होना चाहिए । (पैरा 11, 12, 13 और 14)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2012]	(2012) 4 एस. सी. सी. 257 : **राम नरेश** बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य** ;	11
[2005]	(2005) 3 एस. सी. सी. 114 : **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **सतीश** ;	10
[2003]	(2003) 1 एस. सी. सी. 465 : **जोसफ** बनाम **केरल राज्य** ;	11
[2002]	(2002) 9 एस. सी. सी. 537 : **हरियाणा राज्य** बनाम **इंदर** ।	11

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2008 की दांडिक अपील सं. 623 और 624.

2006 की दांडिक अपील सं. 7911 और 2006 के दांडिक निर्देश सं. 15 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 24 अप्रैल, 2007 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री कमलेन्द्र मिश्र और रणवीर सिंह यादव

प्रत्यर्थियों की ओर से सुश्री रानी छाबरा और श्री राजसिंह राणा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति उदय उमेश ललित ने दिया ।

न्या. ललित – ये अपीलें 2006 की दांडिक अपील सं. 7911 और 2006 के दांडिक निर्देश सं. 15 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 24 अप्रैल, 2007 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध विशेष इजाजत द्वारा फाइल की गई हैं । निर्देश आवेदन को खारिज करते हुए, उच्च न्यायालय ने अपील मंजूर की और प्रत्यर्थियों को भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन आरोपों से मुक्त कर दिया ।

2. तारीख 24 फरवरी, 2006 को 12.45 बजे अपराह्न में सोहन लाल द्वारा अभिलिखित रूप बसंत (अभि. सा. 1) के कथन के अनुसरण में पुलिस थाना, खुर्जा देहात, जिला बुलन्दशहर में प्रत्यर्थियों के विरुद्ध अपराध

मामला सं. 23 दर्ज कराया गया । यह अभिकथन किया गया है कि घटना के दिन आकाश आयु लगभग 8 वर्ष जो कि उक्त अभि. सा. 1 का भतीजा है अंबेडकर पार्क के निकट खेल रहा था । लगभग 10.00 बजे पूर्वाह्न में प्रत्यर्थी सुभद्रा उक्त आकाश को अपनी बैठक पर ले गई जिसे ग्रामवासी मेवा राम और विजय पाल द्वारा देखा गया था । उस समय उक्त सुभद्रा के तीन पुत्र जो सुभद्रा के साथ इस मामले में प्रत्यर्थी हैं, बरामदे में बैठे हुए थे । वे आकाश को लेकर अंदर की ओर चले गए और लगभग आधे घंटे तक बाहर नहीं आए । यह अभिकथन किया गया है कि इसके पश्चात् प्रत्यर्थी एक थाल लेकर बाहर आए जिसमें पूजा की सामग्री रखी हुई थी और वे पूजा के लिए चमुंडा मठ की ओर चल दिए । चूंकि मेवा राम और विजय पाल ने आकाश को बाहर आते हुए नहीं देखा था उन्हें कोई गड़बड़ किए जाने का संदेह हुआ और प्रत्यर्थियों के चमुंडा मठ के लिए रवाना हो जाने पर वे तत्काल ही बैठक के अंदर चले गए । जैसे ही उन्होंने वहां प्रवेश किया उन्होंने आकाश का शव रक्त से लथपथ पाया और उसके नथुनों और कानों से रक्त निकल रहा था । उन्होंने शोर मचाया जिसके परिणामस्वरूप ग्रामवासी एकत्र हो गए । जब ग्रामवासियों ने आकाश का शव देखा तब स्थिति तनावपूर्ण और वहां का वातावरण पूर्णतया संकटमय हो गया । इसके पश्चात् लोग मठ पर गए और उन्होंने प्रत्यर्थियों पर हमला किया ।

3. इसके पश्चात् पुलिस ग्राम में पहुंची और 2.30 बजे अपराह्न से 4.00 बजे अपराह्न के दौरान मृत्यु से संबंधित पंचनामा तैयार किया गया । इस दौरान, प्रत्यर्थियों को लगभग 3.30 बजे अपराह्न में गिरफ्तार किया गया । मृत्युसमीक्षा किए जाने के पश्चात्, आकाश का शव शवपरीक्षण के लिए भेज दिया गया । डा. राजेश कुमार (अभि. सा. 7) ने 4.30 बजे अपराह्न में शवपरीक्षण किया और उन्होंने उक्त आकाश के शरीर पर मृत्युपूर्व की निम्न क्षतियां पाईं :–

"(1) दाएं कान के कर्ण-पल्लव पर 1 सेंमी.× 0.5 सेंमी. माप का छिन्न घाव है जो मांसपेशी और उपास्थि तक गहरा है ।

(2) दाएं कान के अग्रभाग में चेहरे के ठीक दाईं ओर 5 सेंमी. × 3 सेंमी. माप का गुमटा मौजूद है ।

(3) नासा से 3 सेंमी. की दूरी पर बाईं ओर 5 सेंमी. × 3 सेंमी. माप का अपघर्षित गुमटे पाए गए हैं ।

(4) नासा से 3 सेंमी. की दूरी पर चेहरे के बाईं ओर 4 सेंमी. × 3 सेंमी. माप का गुमटा मौजूद है ।

(5) बाएं नासाद्वार पर 1 सेंमी. × 0.5 सेंमी. माप का छिन्न घाव मौजूद है जिसकी गहराई मांसपेशी और उपास्थि तक है ।

(6) दाएं नासाद्वार पर 1 सेंमी. × 0.5 सेंमी. माप का छिन्न घाव है जो मांसपेशी और उपास्थि तक गहरा है ।

(7) हनु (ठुड्डी) पर 1 सेंमी. × 0.5 सेंमी. माप का छिन्न घाव है जो मांसपेशी तक गहरा है ।

(8) कण्ठमणि के निकट गर्दन के दाईं ओर अग्रभाग में 7 सेंमी. × 5 सेंमी. के क्षेत्रफल में अनेक गुमटे मौजूद हैं ।

(9) कण्ठमणि के निकट गर्दन के अग्रभाग में तथा उसके बाईं ओर 4 सेंमी. × 4 सेंमी. माप का अपघर्षित गुमटा ।"

यह पाया गया है कि शव के मुख और नथुनों से रक्त बह रहा था । डा. राजेश कुमार (अभि. सा. 7) के अनुसार मृत्यु का कारण श्वासावरोध पाया गया जो गला घोंट कर किया गया था । इस साक्षी ने यह कथन किया है कि क्षति सं. 1, 5, 6 और 7 तेजधार वाले हथियार से कारित की जा सकती हैं ।

4. जब प्रत्यर्थियों को गिरफ्तार किया गया था, उस समय अभियुक्त संजय की तलाशी से रक्त-रंजित दरांती बरामद की गई । चूंकि प्रत्यर्थी के शरीर पर क्षतियां पाई गई थीं, इसलिए उन्हें डा. ए. कुमार (अभि. सा. 3) के पास उपचार के लिए भेज दिया गया जिन्होंने प्रत्यर्थी संजय के शरीर पर 17 क्षतियां, प्रत्यर्थी सतवीर के शरीर पर 1 क्षति और प्रत्यर्थी सुभद्रा के शरीर पर 4 क्षतियां पाईं । चिकित्सक की राय में ये क्षतियां ताजा पाई गई थीं जो संभवतः उसी दिन लगभग 11.15 बजे पूर्वाह्न में कारित की गई थीं । अन्वेषण अधिकारी ने स्थल नक्शा (प्रदर्श क-15) तैयार किया जिसके अनुसार प्रश्नगत बैठक का आकार 12 फुट × 12 फुट था जिसमें एक द्वार दिखाया गया था और उसके साथ ही सामने की ओर बरामदा दिखाया गया था और इस बैठक के चारों ओर दीवार थी । अन्वेषण अधिकारी ने बैठक से रक्त-रंजित मिट्टी बरामद की और चमुंडा मठ से रक्त-रंजित सीमेंट का टुकड़ा बरामद किया और परीक्षण के पश्चात् यह रक्त मानव रक्त पाया गया ।

5. अन्वेषण पूरा होने के पश्चात्, प्रत्यर्थियों के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया गया और अपर सेशन न्यायाधीश (त्वरित न्यायालय), बुलन्दशहर में 2006 का सेशन विचारण मामला सं. 516 के अनुसार दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 और अपराध विधि संशोधन अधिनियम की धारा 7 के अधीन विचारण किया गया । अभियोजन पक्ष ने अपने पक्षकथन के समर्थन में दो चिकित्सकों अर्थात् अभि. सा. 3 और अभि. सा. 7 और इत्तिलाकर्ता रूप बसंत (अभि. सा. 1) सहित 7 साक्षियों की परीक्षा कराई । मेवा राम की परीक्षा अभि. सा. 2 के रूप में कराई गई । इस साक्षी ने अपने परिसाक्ष्य में यह कथन किया है कि तारीख 21 फरवरी, 2006 को लगभग 10.00 बजे पूर्वाह्न में जब वह विजय पाल के साथ एक चिकित्सक के क्लीनिक के बाहर तिपाई पर अंबेडकर पार्क के सामने बैठा हुआ था, उसने प्रत्यर्थी सुभद्रा को आकाश का हाथ पकड़कर बैठक की ओर ले जाते हुए देखा जहां पर प्रत्यर्थी सतवीर, संजय और शीशपाल पहले से मौजूद थे । इसके पश्चात् सभी प्रत्यर्थी आकाश के साथ अंदर की ओर चले गए और लगभग आधे घंटे तक बाहर नहीं आए । इसके पश्चात् प्रत्यर्थी पूजा की सामग्री रखा हुआ थाल लेकर बाहर आए और चमुंडा मठ की ओर चले गए । चूंकि आकाश कहीं भी दिखाई नहीं दिया, इसलिए इस साक्षी और विजय पाल को संदेह हुआ । वे तत्काल बैठक के अंदर गए और उन्होंने आकाश का शव रक्त से लथपथ देखा । इस साक्षी ने यह भी कथन किया है कि उसने चमुंडा मठ में सीमेंट से बने फर्श पर रक्त के धब्बे देखे थे और इस साक्षी के अनुसार प्रत्यर्थी तंत्र-मंत्र में लगे हुए थे । इस साक्षी ने यह कथन किया है कि प्रत्यर्थियों के शरीर पर जो क्षतियां पाई गई थीं वो ग्रामवासियों द्वारा पिटाई किए जाने से कारित हुई थीं और यह कि प्रत्यर्थी घटना के पश्चात् वहां से भाग गए थे । इस साक्षी की प्रतिपरीक्षा के दौरान ऐसा कोई सुझाव नहीं दिया गया है कि उक्त बैठक के स्वामी प्रत्यर्थी नहीं थे या उस पर प्रत्यर्थियों का नियंत्रण नहीं था ।

6. अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री पर विचार करने के पश्चात् विचारण न्यायालय ने प्रत्यक्षदर्शी साक्षी मेवा राम (अभि. सा. 2) के साक्ष्य को विश्वसनीय पाया और यह निष्कर्ष निकाला कि यह मामला प्रत्यर्थियों के विरुद्ध पूर्णतया सिद्ध होता है । विचारण न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया – (क) तारीख 14 फरवरी, 2006 को लगभग 10.00 बजे पूर्वाह्न में अभियुक्त सुभद्रा मृतक आकाश का हाथ पकड़कर अपनी बैठक में ले गई थी; (ख) अभियुक्त सतवीर, संजय और शीशपाल भी सुभद्रा के साथ थे

जब वह बैठक में जा रही थी; (ग) अभियुक्त सुभद्रा, संजय, शीशपाल और सतवीर 20-25 मिनट पश्चात् बैठक से बाहर आए थे; (घ) अभियुक्त पूजा सामग्री लिए हुए थे; (ङ) सभी अभियुक्तों ने चमुंडा मठ पर जाकर पूजा की और फूल और बताशे चढ़ाए तथा दीपक जलाया; (च) मेवा राम (अभि. सा. 2) ने आकाश का शव देखा था और उसने यह पाया कि आकाश के नथुने और कान कटे हुए थे और वह रक्त से लथपथ था; (छ) मेवा राम (अभि. सा. 2) एक चिकित्सक के क्लीनिक के निकट तिपाई पर बैठा हुआ था जो घटनास्थल से 10-12 फुट की दूरी पर थी; (ज) मृतक आकाश का शव अभियुक्तों की बैठक में पाया गया था जिससे सभी अभियुक्तों द्वारा मृत्यु कारित किया जाना या मानव बलि दिया जाना साबित होता है ।

विचारण न्यायालय ने दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन प्रत्यर्थियों को दोषसिद्ध किया । अभियोजन पक्ष और प्रत्यर्थियों की ओर से दंड के मुद्दे पर दी गई दलीलों पर विचार करने के पश्चात् विचारण न्यायालय ने आगे यह भी आदेश किया कि यह मामला विरल से विरलतम मामले की कोटि में आता है जिसमें मृत्यु दंड जैसा कठोर दंड दिया जाना चाहिए । इस प्रकार विचारण न्यायालय ने उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि किए जाने के अध्यधीन मृत्यु दंड अधिरोपित किया ।

7. विचारण न्यायालय द्वारा किए गए निर्देश के आधार पर मामला उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया । प्रत्यर्थियों ने 2006 की दांडिक अपील सं. 7911 भी फाइल की जिसमें उन्होंने अपनी दोषसिद्धि और दंडादेश को चुनौती दी । उच्च न्यायालय ने अपने अपीलाधीन निर्णय के अनुसार निर्देश खारिज कर दिया और प्रत्यर्थियों को उनको लगाए गए आरोपों से दोषमुक्त करते हुए उनकी अपील मंजूर की । उच्च न्यायालय ने यह स्वीकार किया कि अभियोजन पक्ष ने यह साबित किया है कि 8 वर्ष की आयु वाले लड़के आकाश की हत्या तारीख 24 फरवरी, 2006 को लगभग 10.00 बजे पूर्वाह्न में प्रत्यर्थियों की बैठक में की गई है । तथापि, उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि अभियोजन पक्ष इस अपराध में प्रत्यर्थियों की अपराधिता साबित करने में असफल रहा है । इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की अंतर्वस्तु और भाषा का परिशीलन करने पर यह विश्वसनीय दस्तावेज प्रतीत नहीं होता है और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट लिखने वाले व्यक्ति अर्थात् सोहन लाल की परीक्षा भी नहीं कराई गई है । उच्च न्यायालय के अनुसार इस बात का कोई कारण दिखाई नहीं देता है कि एक बड़ी संख्या में ग्रामवासियों ने

प्रत्यर्थियों को पकड़ लिया था और उनके साथ मार-पिटाई की किंतु फिर भी उन्हें वहां से जाने दिया और यह भी विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता है कि 58 वर्ष की महिला सुभद्रा वहां से फरार होने में सफल हो गई । प्रत्यर्थियों की इस दलील में बल दिखाई देता है कि घटनास्थल एक खुला स्थान था जहां पर कोई भी आ-जा सकता था ।

8. राज्य ने व्यथित होकर उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए दोषमुक्ति को चुनौती देते हुए वर्तमान अपील प्रस्तुत की है । इत्तिलाकर्ता रूप बसंत ने भी 2008 की दांडिक अपील सं. 622 फाइल की है । राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री रत्नाकर दास ने यह दलील दी है कि अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य से स्पष्ट रूप से यह सिद्ध होता है कि मेवा राम (अभि. सा. 2) ने प्रत्यर्थियों को आकाश को बैठक में ले जाते हुए देखा था, और इस साक्षी ने यह भी देखा था कि प्रत्यर्थी उक्त आकाश के बिना लगभग 25 मिनट पश्चात् बैठक से बाहर आए और वे चमुंडा मठ की ओर चले गए और इस बात से मेवा राम और विजय पाल को संदेह हुआ और उन्होंने बैठक में प्रवेश किया और देखा कि शव रक्त से लथपथ पड़ा हुआ है । यह भी दलील दी गई है कि इस साक्षी की प्रतिपरीक्षा के दौरान ऐसी कोई बात सामने नहीं आई है कि यह बैठक प्रत्यर्थी-अभियुक्तों के नियंत्रण में नहीं थी । यद्यपि इत्तिलाकर्ता रूप बसंत द्वारा अलग से एक अपील फाइल की गई है किंतु उसमें कोई भी व्यक्ति प्रस्तुत नहीं हुआ है । श्रीमती रानी छावड़ा प्रत्यर्थियों की ओर से न्यायालय में हाजिर हुई और उन्होंने उच्च न्यायालय द्वारा किए गए आंकलन और निकाले गए निष्कर्ष का समर्थन किया है । यह दलील दी गई है कि प्रत्यर्थियों द्वारा हत्या किए जाने का कोई भी प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं है और यह कि मेवा राम (अभि. सा. 2) के सिवाय किसी भी ग्रामवासी की अभियोजन पक्ष द्वारा परीक्षा नहीं कराई गई है ।

9. वर्तमान मामले में विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय ने दो तथ्यों का अभिलेख पर साबित किया जाना स्वीकार किया है अर्थात् (क) आकाश का शव बैठक के भीतर पाया गया था और (ख) उक्त बैठक प्रत्यर्थियों की है । अभियोजन पक्ष ने केवल एक साक्षी अर्थात् मेवा राम (अभि. सा. 2) की परीक्षा कराई है जिसने कुछ बातें स्पष्ट की हैं । घटनास्थल पर तैयार किए गए पंचनामे (प्रदर्श क-15) से यह दर्शित होता है कि सड़क के एक ओर प्रत्यर्थियों का मकान है जिसके बराबर में चमुंडा मठ है और सड़क के दूसरी ओर प्रश्नगत बैठक है । इस प्रकार, इस

एकमात्र साक्षी के अनुसार उसने प्रत्यर्थी सुभद्रा को अपने घर जो सड़क के एक ओर है, से आते हुए देखा था और इसके पश्चात् उसने सुभद्रा को आकाश का हाथ पकड़े सड़क के दूसरी ओर स्थित बैठक की तरफ जाते हुए देखा । इस साक्षी के अनुसार प्रत्यर्थी लगभग 20-25 मिनट तक बैठक के भीतर रहे और जब वे चमुंडा मठ की ओर जा रहे थे अर्थात् सड़क के दूसरी ओर, तब वह अर्थात् मेवा राम और विजय पाल तत्काल बैठक में गए और उन्होंने आकाश का शव रक्त से लथपथ पड़ा हुआ पाया जिसका यह अर्थ हुआ कि बैठक में ताला लगा हुआ नहीं था ।

10. अभियोजन का यह पक्षकथन है कि आहत को प्रत्यर्थियों के साथ अंतिम बार देखा गया था । वर्तमान मामले में लागू होने वाले "अंतिम बार देखे जाने" के सिद्धांत के दो पहलू हैं – (i) समय की समीपता (ii) घटनास्थल जहां पर आकाश को प्रत्यर्थियों द्वारा ले जाते हुए देखा गया वहीं पर उसका शव पाया गया । **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **सतीश**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने इस संबंध में निम्न प्रकार विधि अधिकथित की है :–

> "'अंतिम बार देखे जाने' का सिद्धांत वहां लागू होता है जहां मृतक को अभियुक्त के साथ अंतिम बार जीवित देखे जाने के समय और मृतक का शव पाए जाने के समय के बीच इतना कम अंतर हो कि अभियुक्त के सिवाय अन्य किसी व्यक्ति के इस अपराध में सम्मिलित होने की संभावना पूर्णतया समाप्त हो जाए ।"

11. वर्तमान मामले में "अंतिम बार देखे जाने" के सिद्धांत का संबंध समय तथा स्थान के साथ भी होता है जिस पर निश्चित रूप से यह मामला तभी निर्भर करेगा जब मेवा राम (अभि. सा. 2) का परिसाक्ष्य स्वीकार कर लिया जाए । सब कुछ इस साक्षी के परिसाक्ष्य पर निर्भर करता है । इस न्यायालय द्वारा **जोसफ** बनाम **केरल राज्य**[2] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया है कि जहां मात्र एक साक्षी होता है वहां ऐसे साक्षी के साक्ष्य को कड़ी सावधानी और अभिलेख पर प्रस्तुत अन्य सामग्री के आधार पर स्वीकार करना चाहिए । इसके अतिरिक्त, **हरियाणा राज्य** बनाम **इंदर**[3] वाले मामले में यह अधिकथित किया गया है कि एकमात्र साक्षी का परिसाक्ष्य विश्वसनीय और संदेह के परे होना चाहिए जिससे न्यायालय के मन में

---

[1] (2005) 3 एस. सी. सी. 114.
[2] (2003) 1 एस. सी. सी. 465.
[3] (2002) 9 एस. सी. सी. 537.

कोई शंका न रहे । इन दोनों निर्णयों पर विचार करते हुए इस न्यायालय ने **राम नरेश** बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य**[1] वाले मामले में निम्न सिद्धांत अधिकथित किया है :–

> "इन निर्णयों में व्यक्त किए गए सिद्धांत निर्विवादित हैं । किसी भी निर्णय में यह नहीं कहा गया है कि एकमात्र साक्षी के परिसाक्ष्य का अवलंब नहीं लिया जा सकता या अभियुक्त की दोषसिद्धि अपराध के किसी एकमात्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के कथन के आधार पर नहीं की जा सकती । आवश्यक यह है कि एकमात्र प्रत्यक्षदर्शी का कथन विश्वसनीय होना चाहिए और उससे न्यायालय के मन में कोई शंका नहीं रहनी चाहिए और अभियोजन पक्ष द्वारा ऐसे साक्ष्य की सम्पुष्टि अपराध कारित किए जाने और उस अपराध में अभियुक्त के अंतर्वलित होने से संबंधित अन्य साक्ष्य से की जानी चाहिए ।"

इस प्रकार एकमात्र साक्षी के साक्ष्य पर सतर्कतापूर्ण विचार किया जाना चाहिए और अन्य साक्ष्य से उस साक्ष्य की परख भी करनी चाहिए और इसके अतिरिक्त ऐसा एकमात्र साक्ष्य विश्वासोत्पादक तथा संदेह के परे भी होना चाहिए ।

12. अब हम अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री के संदर्भ में एकमात्र साक्षी के परिसाक्ष्य पर विचार करेंगे । मेवा राम (अभि. सा. 2) के अनुसार वह विजय पाल के साथ उस समय एक चिकित्सक के क्लीनिक के सामने तिपाई पर बैठा हुआ था जब प्रत्यर्थी आकाश को बैठक में ले जा रहे थे । इस साक्षी के अपने परिसाक्ष्य के अतिरिक्त अभियोजन पक्ष द्वारा अभिलेख पर कोई भी सामग्री प्रस्तुत नहीं की गई है जिससे इस साक्षी की मौजूदगी और उसके द्वारा दिए गए कथन की सम्पुष्टि की जा सके । प्रथमतः इस संबंध में कोई कारण नहीं दिया गया है कि मेवा राम और विजय पाल चिकित्सक की क्लीनिक के बाहर तिपाई पर क्यों बैठे हुए थे । न तो चिकित्सक और न ही विजय पाल की परीक्षा कराई गई है । साक्षी के परिसाक्ष्य के अतिरिक्त ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिससे ये उपदर्शित होता हो कि मेवा राम (अभि. सा. 2) वास्तव में सुसंगत समय पर मौजूद था या नहीं । द्वितीयतः, वह स्थान जहां से उसने अभिकथित रूप से घटना देखी थी, नैसर्गिक स्थान नहीं है जहां पर वह साक्षी रहता हो या कोई व्यवसाय करता हो । इस साक्षी के वहां मौजूद होने का कारण अभिलेख पर प्रस्तुत

[1] (2012) 4 एस. सी. सी. 257.

नहीं किया गया है । यह कारण भी नहीं दिया गया है कि यह साक्षी 20-25 मिनट तक वहां क्यों बैठा रहा । तृतीयतः, आकाश के घर से किसी भी सदस्य की परीक्षा नहीं कराई गई है और न ही रूप बसंत (अभि. सा. 1) ने यह स्पष्ट किया है कि आकाश घर से कब निकला था और वह किसके साथ खेल रहा था । अभियोजन पक्ष ने उन बच्चों के नाम भी नहीं दिए हैं न ही उनमें से ऐसे किसी भी बच्चे की परीक्षा कराई गई है जो यह बता पाता कि उसने आकाश को प्रश्नगत स्थान पर खेलते हुए देखा था । अभिलेख पर ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिससे इस बात की सम्पुष्टि हो सके कि आकाश अन्य बच्चों के साथ मौजूद था । चतुर्थतः, ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिससे यह उपदर्शित होता हो कि आकाश का घर कितनी दूर था और ऐसी भी कोई समाग्री नहीं है जिससे यह पता चलता हो कि घटनास्थल ऐसा स्थान था जहां पर आकाश सामान्यतया खेला करता था । अंतिमतः, यदि इस घटना से ग्राम में इतना संकटमय वातावरण हो गया था कि ग्रामवासियों को प्रत्यर्थियों के साथ बल का प्रयोग करना पड़ा, तब ऐसी स्थिति में ऐसा कोई कारण दिखाई नहीं पड़ता है कि उन ग्रामवासियों में से किसी भी ग्रामवासी की परीक्षा क्यों नहीं कराई गई ।

13. घटना के संबंध में एकमात्र साक्षी के साक्ष्य, घटना घटित होने की रीति, प्रत्यर्थियों का अपराध में अंतर्वलित होना – चाहें सभी अपराधी हों या उनमें से कुछ जैसे तथ्यों को ध्यान में रखते हुए हमें अभिलेख पर ऐसी कोई सामग्री दिखाई नहीं देती है जिससे यह संभव हो सके कि हम एकमात्र साक्षी के साक्ष्य की विश्वसनीयता की परख कर सकें । हमारे मतानुसार, यह संदेहपूर्ण है कि मेवा राम (अभि. सा. 2) को नैसर्गिक और विश्वसनीय साक्षी कहा जाए और उसके साक्ष्य पर पूर्णतया अवलंब लिया जाए । आकाश किन-किन स्थानों पर गया था, यह सिद्ध नहीं किया गया है जिसके परिणामस्वरूप यह साबित नहीं होता है कि आकाश वास्तव में वहां मौजूद था, जैसाकि साक्षी द्वारा बताया गया है । चूंकि मेवा राम (अभि. सा. 2) एकमात्र साक्षी है और सम्पूर्ण पक्षकथन इसी साक्षी के परिसाक्ष्य पर निर्भर है, इसलिए हमने सूक्ष्मता से परिशीलन किया है जिससे संभवतया पुष्टि हो जाती है । तथापि, हमें ऐसी कोई सामग्री दिखाई नहीं देती है । इस एकमात्र साक्षी के परिसाक्ष्य का अवलंब लेने के लिए हमने महत्वपूर्ण विशिष्टियों से सम्पुष्टि करने का प्रयास किया है, जिसका दुर्भाग्यवश अभाव है । सम्पूर्ण सामग्री का आंकलन करने पर कई बातों पर संदेह बना रहता है और कई प्रश्न निरुत्तर रह जाते हैं । दो तथ्य अर्थात् पहला यह बैठक

प्रत्यर्थियों की थी और दूसरा यह कि आकाश का शव वहां पाया गया था, अत्यन्त महत्वपूर्ण है किंतु इनके आधार पर प्रत्यर्थियों को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है । बैठक, घर का भाग नहीं है और वह सड़क के पार बनी हुई थी जिसमें बड़ी सुगमता से अन्य व्यक्ति भी आ-जा सकते थे । मुख्य बात यह है कि सभी प्रत्यर्थियों या उनमें से कुछ की मौजूदगी पूर्णतया साबित नहीं की गई है ।

14. अब अभिलेख पर प्रस्तुत अन्य बिन्दुओं पर विचार किए जाने की आवश्यकता है । प्रत्यर्थियों को उसी दिन गिरफ्तार किया गया था जब उनमें से एक प्रत्यर्थी अर्थात् संजय को अभिकथित रूप से रक्त-रंजित दरांती के साथ पाया गया था । अभियोजन पक्ष के अनुसार हथियार रक्त-रंजित पाया गया था और वह उक्त संजय की धोती में छिपा हुआ था । तथापि, प्रत्यर्थी संजय की रक्त-रंजित धोती बरामद नहीं की गई । इस संबंध में किसी भी प्रत्यर्थी के कब्जे से कोई भी रक्त-रंजित कपड़ा बरामद नहीं किया गया यद्यपि उन्हें इस अपराध का अपराधी कहा गया है जिसके परिणामस्वरूप आकाश का शव रक्त से लथपथ पाया गया था । चमुंडा मठ के सीमेंट से बने भाग पर रक्त के धब्बे पाए गए थे यद्यपि वह रक्त मानव रक्त पाया गया था किंतु न्यायालयिक प्रयोगशाला द्वारा किए गए परीक्षण के अनुसार वह रक्त अपघटित पाया गया था ।

15. इन परिस्थितियों में और विशेषकर ऐसी परिस्थिति में जब हम दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील पर विचार कर रहे हैं, वर्तमान मामले में तभी न्यायोचित निष्कर्ष निकल सकता है जब हमें एकमात्र साक्षी का परिसाक्ष्य ऐसा दिखाई दे जिस पर पूर्णतया विश्वास किया जा सके । वर्तमान मामले में अभियुक्तों का विचारण मृत्यु दंड से दंडनीय अपराध के लिए किया गया है, इसलिए इस मामले में सूक्ष्मता से संवीक्षा की जानी चाहिए । हमारे मतानुसार, अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री निश्चित रूप से अपर्याप्त है और प्रत्यर्थी संदेह का लाभ पाने के हकदार है । अतः, हम उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए मत की पुष्टि करते हैं और राज्य द्वारा फाइल की गई अपीलें खारिज करते हैं । शिकायतकर्ता द्वारा फाइल की गई अपील भी खारिज की गई ।

अपीलें खारिज की गईं ।

अस.

[2016] 1 उम. नि. प. 38

ननजप्पा

बनाम

कर्नाटक राज्य

24 जुलाई, 2015

न्यायमूर्ति टी. एस. ठाकुर और न्यायमूर्ति अमिताव राय

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (1988 का 49) – धारा 19(3), (4) – लोक सेवक के विरुद्ध अभियोजन चलाने के लिए पूर्व मंजूरी – अभियुक्त के विरुद्ध विरचित आरोप साबित नहीं होने और विचारण चलाने के लिए मंजूरी आदेश को अविधिमान्य ठहराते हुए विचारण न्यायालय के विशेष न्यायाधीश द्वारा उसे दोषमुक्त किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा दोषमुक्ति को उलटा जाना – विचारण न्यायालय द्वारा मंजूरी का आदेश अविधिमान्य पाए जाने पर अभियुक्त को गुणागुण के आधार पर दोषमुक्त करने के बजाय उसे उन्मोचित किया जाना चाहिए था क्योंकि विधिमान्य मंजूरी के अभाव में कार्यवाहियां अस्तित्वहीन हो जाती हैं ।

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 – धारा 19(3), (4) [सपठित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 465] – लोक सेवक के विरुद्ध अभियोजन चलाने के लिए पूर्व मंजूरी – अभियुक्त के विरुद्ध विरचित आरोप साबित नहीं होने और विचारण चलाने के लिए मंजूरी आदेश को अविधिमान्य ठहराते हुए विचारण न्यायालय के विशेष न्यायाधीश द्वारा उसे दोषमुक्त किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा दोषमुक्ति को उलटा जाना – उच्च न्यायालय द्वारा मंजूरी की आवश्यकता या इसकी अविधिमान्यता के प्रभाव के संबंध में विधिक स्थिति का ठीक प्रकार से विवेचन नहीं करने के कारण अभियुक्त की दोषसिद्धि के आदेश को कायम रखना उचित नहीं होगा ।

अपीलार्थी कर्नाटक राज्य में ग्राम पंचायत में बिल कलक्टर के रूप में कार्यरत था । शिकायतकर्ता ने लोकायुक्त पुलिस के समक्ष उपसंजात होकर यह अभिकथन किया कि अपीलार्थी ने सब्बनकरुपे ग्राम पंचायत द्वारा पारित किए गए तारीख 13 मार्च, 1998 के कतिपय प्रस्ताव की प्रति जारी करने के लिए उससे 500/- रुपए की रिश्वत मांगी है । चूंकि वह रिश्वत

नहीं देना चाहता था, इसलिए उसने अपीलार्थी के विरुद्ध कार्यवाही करने की प्रार्थना की । लोकायुक्त पुलिस के छापामार दल ने अपीलार्थी को शिकायतकर्ता से रिश्वत लेते हुए रंगे हाथो पकड़ लिया । अन्वेषण पूर्ण होने पर पुलिस ने अधिकारिता वाले न्यायालय के समक्ष आरोप पत्र फाइल किया । विचारण न्यायालय अंततः इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि अभियोजन पक्ष अपीलार्थी के विरुद्ध विरचित आरोपों को साबित करने में असफल रहा है और तद्नुसार उसे आरोपों से दोषमुक्त कर दिया । विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अभियोजन पक्ष यह साबित करने में असफल रहा है कि पंचायत के सदस्यों द्वारा उस प्रस्ताव के पारित करने में अपीलार्थी की कोई भूमिका थी, जिसकी प्रति शिकायतकर्ता द्वारा मांगी गई थी । विचारण न्यायालय ने अन्य बातों के साथ-साथ यह भी अभिनिर्धारित किया कि अपीलार्थी पर अभियोजन चलाने के लिए सक्षम प्राधिकारी द्वारा मंजूरी प्रदान नहीं की गई थी और इसलिए यह अभियोजन भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 19 के अनुसार नहीं है । विचारण न्यायालय ने विचारण के दौरान परीक्षा कराए गए अभि. सा. 4 के अभिसाक्ष्य का अवलंब लेते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि अभियोजन के लिए मंजूरी देने के लिए पंचायती राज अधिनियम की धारा 113 के निबंधनों के अनुसार केवल मुख्य अधिकारी, जिला पंचायत सक्षम प्राधिकारी था । विचारण न्यायालय द्वारा इन निष्कर्षों के आधार पर अपीलार्थी के विरुद्ध अभियोजन के पक्षकथन को नामंजूर कर दिया गया और अपीलार्थी को दोषमुक्त कर दिया । विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए दोषमुक्ति के आदेश से व्यथित होकर राज्य ने उच्च न्यायालय में अपील फाइल की, जिसे उच्च न्यायालय द्वारा मंजूर किया गया । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि मंजूरी के आदेश की विधिमान्यता को समुचित प्रक्रम पर प्रश्नगत नहीं किया गया था, इसलिए अपीलार्थी विचारण के समापन पर इसे उठाने का हकदार नहीं था । उच्च न्यायालय ने मामले के गुणागुण के आधार पर यह अभिनिर्धारित किया कि अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2, जो कोई और नहीं बल्कि शिकायतकर्ता और छाया साक्षी हैं, ने पर्याप्त रूप से यह साबित किया है कि अपीलार्थी ने रिश्वत की रकम की मांग की थी और इसे स्वीकार किया था । उच्च न्यायालय ने इन निष्कर्षों के आधार पर यह अभिनिर्धारित किया कि अपीलार्थी के विरुद्ध विरचित आरोप साबित किए गए हैं और तद्नुसार, उसे भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(2) के साथ पठित धारा 7 और 13(1)(घ) के अधीन दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया गया । अभियुक्त-

अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 19 के अधीन मंजूरी के महत्व के संबंध में विधिक स्थिति बहुत ही स्पष्ट है और अस्पष्टता की बात स्वीकार नहीं की जा सकती है । कानून में किसी लोक सेवक के विरुद्ध धारा 19(1) के खंड (क), (ख) और (ग) के निबंधनों के अनुसार मंजूरी देने के लिए सक्षम प्राधिकारी की पूर्व मंजूरी के बिना न्यायालय द्वारा संज्ञान लेना प्रतिषिद्ध किया गया है । ऐसी मंजूरी की विधिमान्यता से संबंधित प्रश्न कार्यवाहियों के किसी प्रक्रम पर उठाया जा सकता है । अभियुक्त का विचारण करने की न्यायालय की सक्षमता विधिमान्य मंजूरी की विद्यमानता पर बहुत अधिक निर्भर करती है । यदि मंजूरी का अविधिमान्य होना पाया जाता है, तो न्यायालय पक्षकारों को उसी प्रक्रम पर लौटाते हुए, जहां पर सक्षम प्राधिकारी अभियोजन चलाने के लिए विधि के अनुसार नए सिरे से मंजूरी दे सकता है, अभियुक्त को उन्मोचित कर सकता है । यदि विचारण न्यायालय मंजूरी आदेश के अविधिमान्य होने के बावजूद कार्यवाही करता है, तो ऐसी कार्यवाही विधि की दृष्टि में अस्तित्वहीन समझी जाएगी और ऐसा अभियोजन चलाने के लिए विधिमान्य मंजूरी देने पर उन्हीं अपराधों के लिए द्वितीय विचारण निषिद्ध नहीं होगा । ऐसा मत व्यक्त करने के पश्चात् इसके दो पहलू हैं । पहला, धारा 19 की उपधारा (3) के प्रभाव से संबंधित है, जो सर्वोपरि खंड से आरंभ होती है । इसी पहलू से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 465 भी सुसंगत है । राज्य की ओर से पर्याप्त दृढ़ता के साथ यह दलील दी गई कि धारा 19(3) के निबंधनों के अनुसार किसी अभियुक्त पर अभियोजन चलाने के लिए मंजूरी आदेश में किसी गलती, लोप या अनियमितता तब तक कोई मायने नहीं रखती है जब तक कि ऐसी गलती, लोप या अनियमितता के परिणामस्वरूप न्याय की कोई हानि न हुई हो । यह दलील दी गई कि धारा 4 के स्पष्टीकरण के निबंधनों के अनुसार, "गलती के अंतर्गत मंजूरी देने वाले प्राधिकारी की सक्षमता भी आती है"। यह दलील देखने में आकर्षक लगती है किंतु, न्यायालय की राय में, गहराई से संवीक्षा करने योग्य नहीं है । धारा 19 की उपधारा (3) के सावधानीपूर्वक वाचन से यह दर्शित होता है कि इस धारा में किसी विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित किसी निष्कर्ष, दंडादेश या आदेश को इस आधार पर कि मंजूरी में कोई गलती, लोप या अनियमितता है तब तक उलटने या परिवर्तित करने के

लिए प्रतिषिद्ध किया गया है जब तक कि उस न्यायालय की जिसके समक्ष ऐसे निष्कर्ष, दंडादेश या आदेश को अपील या पुनरीक्षण में चुनौती दी जाती है, यह राय न हो कि ऐसी गलती, लोप या अनियमितता के कारण न्याय की हानि हुई है । दूसरे शब्दों में, उपधारा (3) में विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश में अपील, पुष्टि या पुनरीक्षण कार्यवाहियों में मात्र इस आधार पर कि मंजूरी दूषित है, उन मामलों के सिवाय हस्तक्षेप करने के लिए निषिद्ध किया गया है जहां अपील या पुनरीक्षण न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि ऐसी अविधिमान्यता के कारण न्याय की हानि हुई है । उल्लेखनीय बात यह है कि उपधारा (3) विशेष न्यायाधीश के समक्ष कार्यवाहियों पर लागू नहीं होती है, जो तब अभियुक्त को उन्मोचित करते हुए आदेश पारित करने के लिए स्वतंत्र है यदि उसकी यह राय है कि अभियुक्त के विरुद्ध अभियोजन चलाने के लिए विधिमान्य मंजूरी आदेश धारा 19(1) के अधीन अपेक्षानुसार प्रस्तुत नहीं किया गया है । इस न्यायालय की राय में, उपधारा (3) में किसी उच्चतर न्यायालय द्वारा विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को मंजूरी के आदेश में किसी त्रुटि, लोप या अनियमितता के आधार पर उलटने के लिए प्रतिषेध परिकल्पित है । यह धारा किसी विशेष न्यायाधीश को कार्यवाहियों के किसी भी प्रक्रम पर यह अभिनिर्धारित करते हुए आदेश पारित करने से नहीं रोकती है कि अभियोजन चलाने की मंजूरी देने वाले विधिमान्य आदेश के अभाव में अभियोजन चलने योग्य नहीं है । इस न्यायालय की राय में, उपधारा (3) में प्रयुक्त भाषा स्पष्ट और असंदिग्ध है । यह बात उपधारा (4) में प्रयुक्त भाषा से भी पर्याप्त रूप से स्पष्ट होती है, जिसके अनुसार अपील या पुनरीक्षण न्यायालय यह परीक्षा करते समय कि क्या मंजूरी में गलती, लोप या अनियमितता के कारण न्याय की कोई हानि हुई है इस तथ्य को ध्यान में रखेगा कि क्या आक्षेप किसी पूर्ववर्ती प्रक्रम पर उठाया जा सकता था और उठाया जाना चाहिए था । यह कहना पर्याप्त होगा कि धारा 19(3) और (4) के संयुक्त वाचन से संदेह की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती है कि उक्त उपबंध में मंजूरी के आदेश की विधिमान्यता या विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित निष्कर्ष, दंडादेश या आदेश सहित कार्यवाहियों की विधिमान्यता को किसी उच्चतर न्यायालय के समक्ष अपील या पुनरीक्षण में चुनौती दिया जाना परिकल्पित है न कि अभियुक्त का विचारण कर रहे विशेष न्यायाधीश के समक्ष । स्पष्ट रूप से, इस उपबंध के अधीन तर्काधार यह है कि यदि विचारण का समापन हो गया है और परिणामस्वरूप कोई निष्कर्ष निकाला गया है या दंडादेश दिया गया है, तो अपील या पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा

इसमें हल्केपन से केवल इस कारण हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए कि अभियोजन चलाने की मंजूरी देने वाले धारा 19(1) के अधीन आदेश में कुछ गलती, लोप या अनियमितता है । न्याय की हानि वह है जो ऐसे मामलों में अपील या पुनरीक्षण न्यायालय के सामने आए । और यह परीक्षा करते हुए कि क्या ऐसी कोई न्याय की हानि वास्तव में हुई है, संबंधित न्यायालय इस बात को भी ध्यान में रखेगा कि क्या मंजूरी में गलती, लोप या अनियमितता से संबंधित आक्षेप कार्यवाहियों के पूर्ववर्ती प्रक्रम पर उठाया जा सकता था या उठाया जाना चाहिए था, कहने का तात्पर्य यह है कि क्या ऐसा आक्षेप अपील या पुनरीक्षण में किए जाने के बजाय विचारण के प्रक्रम पर किया जा सकता था या किया जाना चाहिए था । (पैरा 15 और 16)

विशेष न्यायालय ने मंजूरी के आदेश की अविधिमान्यता के बारे में अभियुक्त की ओर से दी गई दलील को न केवल ग्रहण किया अपितु यह पाया कि उक्त आदेश जारी करने वाला प्राधिकारी मंजूरी देने के लिए असक्षम था । विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्राधिकारी जिसने मंजूरी जारी की थी, ऐसा करने के लिए सक्षम नहीं था, यह ऐसा तथ्य है जिसे उच्च न्यायालय या इस न्यायालय के समक्ष विवादग्रस्त नहीं किया गया है । इस न्यायालय की राय में, विचारण न्यायालय ने जो एकमात्र गलती की, वह यह थी कि मंजूरी अविधिमान्य होना ठहराए जाने के पश्चात् उसे मामले के गुणागुण के आधार पर दोषमुक्ति का आदेश अभिलिखित करने के बजाय अभियुक्त को उन्मोचित कर देना चाहिए था । इस न्यायालय की राय में, उच्च न्यायालय ने मंजूरी की आवश्यकता या इसकी अविधिमान्यता के प्रभाव के संबंध में विधिक स्थिति का ठीक प्रकार से विवेचन नहीं किया । उसने यह अभिनिर्धारित करते हुए कि यह प्रश्न पूर्ववर्ती प्रक्रम पर उठाया जाना चाहिए था, इस विषय पर केवल सरसरी टिप्पणी की है । यह प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने यह महसूस नहीं किया कि यह मुद्दा पहली बार उसके समक्ष नहीं उठाया जा रहा है अपितु विचारण न्यायालय के समक्ष भी सफलतापूर्वक उठाया गया था । इसके पश्चात् अगला प्रश्न यह है कि क्या इस अपील को मंजूर करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश अपास्त कर देना चाहिए और अपीलार्थी के विरुद्ध इतनी लंबी अवधि के पश्चात् नए सिरे से अभियोजन चलाने की अनुज्ञा देनी चाहिए । प्रश्नगत घटना तारीख 24 मार्च, 1998 को घटी थी । अपीलार्थी की आयु उस सुसंगत समय पर लगभग 38 वर्ष थी । अपीलार्थी

आज एक वरिष्ठ नागरिक है । न्यायालय की राय में, इस प्रक्रम पर पूर्व स्थिति में वापस जाने से, जब स्वयं अभियोजन साक्षी भी शायद उपलब्ध न हों, किसी प्रयोजन की पूर्ति नहीं होगी । इसके अतिरिक्त, विचारण न्यायालय ने यहां तक कि साक्ष्य के मूल्यांकन के आधार पर, यद्यपि उसे ऐसा नहीं करना चाहिए था, मंजूरी की विधिमान्यता पर अपना निष्कर्ष दिया और यह अभिनिर्धारित किया कि अभियोजन पक्षकथन संदेहास्पद है और अभियोजन के वृत्तांत को नामंजूर कर दिया । इसलिए बार-बार कार्यवाहियों को पुनः आरंभ करने से किसी प्रयोजन की पूर्ति नहीं होगी । इस न्यायालय को इतने अंतराल के पश्चात् इस प्रकृति के मामले में नए सिरे से विचारण करने का निदेश देने का किसी प्रकार का कोई बाध्यकारी कारण दिखाई नहीं पड़ता है, जिसमें 500/- रुपए की रिश्वत अंतर्वलित है और जिसके लिए अपीलार्थी ने पहले ही विचारण के कारण बदनामी, दोषसिद्धि और कारावास की अवधि, चाहे थोड़े समय के लिए ही, भुगती है । तद्नुसार, यह न्यायालय इस अपील को मंजूर करता है और उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को अपास्त करता है । (पैरा 17, 20 और 21)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2005]	(2005) 8 एस. सी. सी. 130 : **गोवा राज्य** बनाम **बाबू थोमस** ;	11, 19
[2005]	(2005) 8 एस. सी. सी. 370 : **कर्नाटक राज्य** बनाम **सी. नागराजस्वामी** ;	12
[2005]	(2005) 4 एस. सी. सी. 512 : **के. कालीमुथु** बनाम **राज्य** मार्फत **पुलिस उप अधीक्षक** ;	14
[1979]	(1979) 4 एस. सी. सी. 177 : **बी. साहा और अन्य** बनाम **एम. एस. कोचर** ;	14
[1973]	ए. आई. आर. 1973 एस. सी. 2773 : **कलीराम** बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य** ;	2
[1966]	ए. आई. आर. 1966 एस. सी. 69 : **मोहम्मद सफी** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य** ;	18, 19

[1957]	ए. आई. आर. 1957 एस. सी. 494 : **बैज नाथ त्रिपाठी** बनाम **भोपाल राज्य और एक अन्य** ;	7, 17
[1952]	1952 की दांडिक अपील सं. 17 : **बुधा मल** बनाम **दिल्ली राज्य** ;	7, 10
[1949]	ए. आई. आर. 1949 पी. सी. 264 : **यूसोफअली मुल्ला** बनाम **दि किंग** ;	7, 8
[1945]	ए. आई. आर. 1945 एफ. सी. 16 : **बासदेव अग्रवाल** बनाम **किंग एम्परर** ।	7, 9

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2012 की दांडिक अपील सं. 1867.

2006 की दांडिक अपील सं. 1260 में कर्नाटक उच्च न्यायालय, बंगलोर की खंड न्यायपीठ के तारीख 9 फरवरी, 2012 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री डी. पी. चतुर्वेदी, रवि पंवार और एस. एन. भट

प्रत्यर्थी की ओर से श्री वी. एन. रघुपति

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति टी. एस. ठाकुर ने दिया ।

न्या. ठाकुर – यह अपील बंगलोर स्थित कर्नाटक उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 9 फरवरी, 2012 को पारित किए गए उस निर्णय और आदेश से उद्‌भूत हुई है, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए दोषमुक्ति के आदेश को उलटते हुए अपीलार्थी को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(2) के साथ पठित धारा 7 और 13 के अधीन दोषसिद्ध किया और धारा 7 के अधीन छह माह की और धारा 13 के अधीन एक वर्ष की अवधि के कारावास के अतिरिक्त जुर्माने और जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम करने पर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया । वे तथ्य जिनसे यह अपील उद्‌भूत हुई, संक्षेप में निम्नलिखित हैं –

2. अपीलार्थी कर्नाटक राज्य के एस. आर. पटना तालुक में सब्बनकरुपे ग्राम पंचायत में बिल कलक्टर के रूप में कार्यरत था । अभियोजन का पक्षकथन यह है कि शिकायतकर्ता, जिसकी विचारण में

अभि. सा. 1 के रूप में परीक्षा की गई थी, लोकायुक्त पुलिस के समक्ष यह अभिकथन करने के लिए उपसंजात हुआ कि अपीलार्थी ने सब्बनकरुपे ग्राम पंचायत द्वारा पारित किए गए तारीख 13 मार्च, 1998 के कतिपय प्रस्ताव की प्रति जारी करने के लिए उससे 500/- रुपए की रिश्वत मांगी है । चूंकि शिकायतकर्ता रिश्वत की रकम का संदाय करने का इच्छुक नहीं था, इसलिए उसने अपीलार्थी के विरुद्ध कार्यवाही करने की प्रार्थना की । यह प्रतीत होता है कि लोकायुक्त पुलिस ने पंच साक्षी बनाए, रकम सौंपे जाने का एक ज्ञापन बनाया और करेंसी नोटों पर फिनोलफेथालिन पाउडर लगाने के पश्चात् शिकायतकर्ता को आशयित रिश्वत की रकम अपीलार्थी के मांग करने पर उसे संदत्त करने के लिए सौंपी । अभियोजन का पक्षकथन यह है कि अपीलार्थी द्वारा रिश्वत की रकम की मांग की गई और शिकायतकर्ता द्वारा उसे रकम संदत्त की गई तथा उसके उपरांत छापामार दल शिकायतकर्ता द्वारा किए गए संकेत पर घटनास्थल पर आया और अपीलार्थी के कब्जे से उक्त रकम बरामद की । अपीलार्थी के हाथ सोडियम कार्बोनेट के घोल में धुलाए गए और वह गुलाबी रंग का हो गया, जिससे स्पष्ट रूप से यह पता चला कि अपीलार्थी द्वारा रिश्वत की रकम का लेन-देन किया गया था । अन्वेषण पूर्ण होने पर पुलिस ने अधिकारिता वाले न्यायालय के समक्ष आरोप पत्र फाइल किया जहां अभियोजन पक्ष ने अपने पक्षकथन के समर्थन में पांच साक्षियों की परीक्षा कराई । तथापि, अपीलार्थी ने अपनी प्रतिरक्षा में कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया । विचारण न्यायालय अंततः इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि अभियोजन पक्ष अपीलार्थी के विरुद्ध विरचित आरोपों को साबित करने में असफल रहा है और तद्नुसार उसे आरोपों से दोषमुक्त कर दिया । विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अभियोजन पक्ष यह साबित करने में असफल रहा है कि पंचायत के सदस्यों द्वारा उस प्रस्ताव के पारित करने में अपीलार्थी की कोई भूमिका थी, जिसकी प्रति शिकायतकर्ता द्वारा मांगी गई थी । विचारण न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि यह सुझाव देने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि सब्बनकरुपे ग्राम पंचायत की शिकायतकर्ता के मकान के सामने से जाने वाली सड़क को पर-पक्षकारों को स्थल आबंटित करने के लिए संपरिवर्तित करने में अपीलार्थी के साथ मिली-भगत थी । विचारण न्यायालय ने यह पाया कि शिकायतकर्ता द्वारा खरीदी गई संपत्ति में वस्तुतः उक्त संपत्ति के उत्तरी दिशा में कोई सड़क नहीं दिखाई गई है । विचारण न्यायालय ने इन परिणामों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि शिकायतकर्ता का अपीलार्थी के बारे में उससे रिश्वत मांगने

वाला अभ्यारोपण अविश्वसनीय और अविश्वासप्रद है । **कलीराम** बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का अवलंब लेते हुए विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि मामले में प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के आधार पर दो मत संभव हैं, एक अपीलार्थी की दोषिता की ओर इंगित करता है और दूसरा उसकी निर्दोषिता की ओर, इसलिए जो मत अपीलार्थी का समर्थन करता है उसे स्वीकार किया जाना चाहिए । विचारण न्यायालय ने आगे यह अभिनिर्धारित किया कि अपीलार्थी पर अभियोजन चलाने के लिए सक्षम प्राधिकारी द्वारा मंजूरी प्रदान नहीं की गई थी और इसलिए यह अभियोजन भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 19 के अनुसार नहीं है । विचारण न्यायालय ने विचारण के दौरान परीक्षा कराए गए अभि. सा. 4 के अभिसाक्ष्य का अवलंब लेते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि अभियोजन के लिए मंजूरी देने के लिए पंचायती राज अधिनियम की धारा 113 के निबंधनों के अनुसार केवल मुख्य अधिकारी, जिला पंचायत सक्षम प्राधिकारी था । विचारण न्यायालय द्वारा इन निष्कर्षों के आधार पर अपीलार्थी के विरुद्ध अभियोजन के पक्षकथन को नामंजूर कर दिया गया और अपीलार्थी को दोषमुक्त कर दिया ।

3. विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए दोषमुक्ति के आदेश से व्यथित होकर राज्य ने 2006 की दांडिक अपील सं. 1260 फाइल की, जिसे, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, उच्च न्यायालय द्वारा इस अपील में आक्षेपित निर्णय और आदेश के निबंधनों के अनुसार मंजूर किया गया । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि मंजूरी के आदेश की विधिमान्यता को समुचित प्रक्रम पर प्रश्नगत नहीं किया गया था, इसलिए अपीलार्थी विचारण के समापन पर इसे उठाने का हकदार नहीं था । उच्च न्यायालय ने मामले के गुणागुण के आधार पर यह अभिनिर्धारित किया कि अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2, जो कोई और नहीं बल्कि शिकायतकर्ता और छाया साक्षी हैं, ने पर्याप्त रूप से यह साबित किया है कि अपीलार्थी ने रिश्वत की रकम की मांग की थी और इसे स्वीकार किया था । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि रकम देने की रीति के संबंध में साक्ष्य में आई कमियां अप्रासंगिक हैं । उच्च न्यायालय ने ट्रैप महाजर में यथा अभिलिखित अपीलार्थी के स्पष्टीकरण का भी यह अभिनिर्धारित करने के लिए अवलंब लिया कि अपीलार्थी ने रकम प्राप्त करने की बात स्वीकार की थी और यह बात मायने नहीं रखती कि उसने

---

[1] ए. आई. आर. 1973 एस. सी. 2773.

जो स्पष्टीकरण दिया था उसके अनुसार रकम "टोंटी लगाने के प्रभार" के लिए थी, और इस स्पष्टीकरण का समर्थन किसी प्रतिरक्षा साक्षी द्वारा नहीं होता है । उच्च न्यायालय ने इन निष्कर्षों के आधार पर यह अभिनिर्धारित किया कि अपीलार्थी के विरुद्ध विरचित आरोप साबित किए गए हैं । तद्नुसार, उसे भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(2) के साथ पठित धारा 7 और 13(1)(घ) के अधीन दोषसिद्ध किया गया और उसे धारा 7 और 13(1)(घ) के अधीन क्रमशः छह माह तथा एक वर्ष के कारावास के अतिरिक्त 3,000/- रुपए और 5,000/- रुपए के जुर्माने का दंडादेश दिया गया और जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम करने पर क्रमशः एक माह और दो माह का दंडादेश दिया गया । दंडादेशों को साथ-साथ चलने का निदेश किया गया ।

4. हमने पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों को काफी विस्तार से सुना । हमारी राय में, यह अपील इस संक्षिप्त आधार पर सफल रहनी चाहिए कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 19 के अधीन अपेक्षित विधिमान्य पूर्व मंजूरी के अभाव में विचारण न्यायालय अपीलार्थी के विरुद्ध अभिकथित अपराध का संज्ञान लेने के लिए सक्षम नहीं था । भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 19 निम्नलिखित है :–

> "19. अभियोजन के लिए पूर्व मंजूरी की आवश्यकता – (1) कोई न्यायालय धारा 7, 10, 11, 13 और 15 के अधीन दंडनीय अपराध का संज्ञान, जिसके संबंध में यह अभिकथित है कि वह लोक सेवक द्वारा किया गया है, निम्नलिखित की पूर्व मंजूरी के बिना नहीं लेगा –
>
> > (क) ऐसे व्यक्ति की दशा में, जो संघ के मामलों के संबंध में नियोजित है और जो अपने पद से केन्द्रीय सरकार द्वारा या उसकी मंजूरी से हटाए जाने के सिवाय नहीं हटाया जा सकता है, केन्द्रीय सरकार ;
> >
> > (ख) ऐसे व्यक्ति की दशा में, जो राज्य के मामलों के संबंध में नियोजित है और जो अपने पद से राज्य सरकार द्वारा या उसकी मंजूरी से हटाए जाने के सिवाय नहीं हटाया जा सकता है, राज्य सरकार ;
> >
> > (ग) किसी अन्य व्यक्ति की दशा में, उसे उसके पद से हटाने के लिए सक्षम प्राधिकारी ।

(2) जहां किसी कारण से इस बाबत शंका उत्पन्न हो जाए कि उपधारा (1) के अधीन अपेक्षित पूर्व मंजूरी केन्द्रीय या राज्य सरकार या किसी अन्य प्राधिकारी में से किसके द्वारा दी जानी चाहिए, वहां ऐसी मंजूरी उस सरकार या प्राधिकारी द्वारा दी जाएगी जो लोक सेवक को उसके पद से उस समय हटाने के लिए सक्षम था जिस समय अपराध किया जाना अभिकथित है ।

(3) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में किसी बात के होते हुए भी –

(क) उपधारा (1) के अधीन अपेक्षित मंजूरी के अभाव में, या किसी त्रुटि, लोप या अनियमितता के आधार पर किसी विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित कोई निष्कर्ष, दंडादेश या आदेश किसी न्यायालय द्वारा अपील, पुष्टिकरण या पुनरीक्षण में तब तक नहीं उलटा जाएगा, जब तक कि उस न्यायालय की राय में उसके कारण यथार्थ में न्याय नहीं हो सका ;

(ख) इस अधिनियम के अधीन की किसी कार्यवाही को किसी न्यायालय द्वारा प्राधिकारी द्वारा दी गई मंजूरी में किसी त्रुटि, लोप या अनियमितता के आधार पर रोका नहीं जाएगा जब तक कि यह समाधान न हो जाए कि ऐसी त्रुटि, लोप या अनियमितता के परिणामस्वरूप न्याय नहीं हो सका है ;

(ग) इस अधिनियम के अधीन की किसी कार्यवाही को, किसी न्यायालय द्वारा किसी अन्य आधार पर नहीं रोका जाएगा और किसी न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण के अधिकारों का प्रयोग किस जांच, सुनवाई, अपील या अन्य कार्यवाही में पारित किसी अंतर्वर्ती आदेश के संबंध में नहीं किया जाएगा ।

(4) उपधारा (3) के अधीन यह अवधारण करने के लिए कि ऐसी मंजूरी के अभाव या किसी त्रुटि, लोप या अनियमितता के कारण न्याय नहीं हो सका है, न्यायालय इस तथ्य को विचार में लेगा कि क्या आक्षेप कार्यवाहियों के किसी पूर्ववर्ती प्रक्रम पर उठाया जा सकता था और उठाया जाना चाहिए था ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए –

(क) 'त्रुटि' में मंजूरी देने वाले प्राधिकारी की सक्षमता सम्मिलित है ;

(ख) अभियोजन के लिए अपेक्षित मंजूरी में ऐसी किसी आवश्यकता के प्रतिनिर्देश सम्मिलित है कि अभियोजन किसी विनिर्दिष्ट प्राधिकारी की प्रेरणा पर या किसी विनिर्दिष्ट व्यक्ति की मंजूरी पर या इसी प्रकृति की अन्य अपेक्षा पर किया जाएगा ।"

5. हम, प्रारंभ में, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 465 को भी उद्धृत करेंगे जो अभियोजन के लिए मंजूरी देने में किसी त्रुटि, लोप या अनियमितता के प्रभाव से संबंधित इसी प्रकार का उपबंध है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 465 इस प्रकार है :–

"**465. निष्कर्ष या दंडादेश कब गलती, लोप या अनियमितता के कारण उलटने योग्य होगा** – (1) इसमें इसके पूर्व अन्तर्विष्ट उपबंधों के अधीन यह है कि सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय द्वारा पारित कोई निष्कर्ष, दंडादेश या आदेश विचारण के पूर्व या दौरान परिवाद, समन, वारण्ट, उद्घोषणा, आदेश, निर्णय या अन्य कार्यवाही में हुई या इस संहिता के अधीन किसी जांच या अन्य कार्यवाही में हुई किसी गलती, लोप या अनियमितता या अभियोजन के लिए मंजूरी में हुई किसी गलती या अनियमितता के कारण अपील, पुष्टीकरण का पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा तब तक न तो उलटा जाएगा और न परिवर्तित किया जाएगा जब तक न्यायालय की यह राय नहीं है कि उसके कारण वस्तुतः न्याय नहीं हो पाया है ।

(2) यह अवधारित करने में कि क्या इस संहिता के अधीन किसी कार्यवाही में किसी गलती, लोप या अनियमितता या अभियोजन के लिए मंजूरी में हुई किसी गलती या अनियमितता के कारण न्याय नहीं हो पाया है न्यायालय इस बात को ध्यान में रखेगा कि क्या वह आक्षेप कार्यवाही के किसी पूर्वतर प्रक्रम पर उठाया जा सकता था और उठाया जाना चाहिए था ।"

6. धारा 19(1) (उपरोक्त) के पढ़ने मात्र से तनिक भी यह संदेह नहीं रह जाता है कि इस धारा का उपबंध आज्ञापक है और न्यायालय को लोक सेवक के विरुद्ध धारा 7, 10, 11, 13 और 15 के अधीन दंडनीय किसी अपराध का संज्ञान धारा 19 की उपधारा (1) के खंड (क), (ख) और (ग) में प्रगणित सक्षम प्राधिकारी की पूर्व मंजूरी के बिना लेने से निषिद्ध किया गया है । धारा 19 की उपधारा (1) में अंतर्विष्ट उपबंध उपधारा (3) की मौजूदगी को छोड़कर आत्यंतिक निबंधनों में लागू होगा, जिस पर हम अभी

विचार करेंगे । किंतु इस पर विचार करने से पूर्व, हम इस बात पर जोर देना चाहते हैं कि धारा 19 की उपधारा (1) में प्रयुक्त भाषा में कोई अस्पष्टता नहीं है और किसी न्यायालय को किसी लोक सेवक के विरुद्ध अधिनियम की धारा 7, 10, 11, 13 और 15 के अधीन दंडनीय अपराध का संज्ञान सक्षम प्राधिकारी की पूर्व मंजूरी के बिना लेने के लिए पूर्ण और आत्यंतिक रूप से वर्जित किया गया है । संज्ञान लेने संबंधी इसी प्रकार का वर्जन भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 की धारा 6 में भी अंतर्विष्ट था, जो निम्न प्रकार से है :–

> "(1) कोई न्यायालय भारतीय दंड संहिता की धारा 161 और 165 या इस अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (2) के अधीन दंडनीय अपराध का संज्ञान, जिसके संबंध में यह अभिकथित है कि वह लोक सेवक द्वारा किया गया है, निम्नलिखित की पूर्व मंजूरी के बिना नहीं लेगा –
>
> (क) ऐसे व्यक्ति की दशा में, जो संघ के मामलों के संबंध में नियोजित है और जो अपने पद से केन्द्रीय सरकार द्वारा या उसकी मंजूरी से हटाए जाने के सिवाय नहीं हटाया जा सकता है, केन्द्रीय सरकार ;
>
> (ख) ऐसे व्यक्ति की दशा में, जो राज्य के मामलों के संबंध में नियोजित है और जो अपने पद से राज्य सरकार द्वारा या उसकी मंजूरी से हटाए जाने के सिवाय नहीं हटाया जा सकता है, राज्य सरकार ;
>
> (ग) किसी अन्य व्यक्ति की दशा में, उसे उसके पद से हटाने के लिए सक्षम प्राधिकारी ।
>
> (2) जहां किसी कारण से इस बाबत शंका उत्पन्न हो जाए कि उपधारा (1) के अधीन अपेक्षित पूर्व मंजूरी केन्द्रीय या राज्य सरकार या किसी अन्य प्राधिकारी में से किसके द्वारा दी जानी चाहिए, वहां ऐसी मंजूरी उस सरकार या प्राधिकारी द्वारा दी जाएगी जो लोक सेवक को उसके पद से उस समय हटाने के लिए सक्षम था जिस समय अपराध किया जाना अभिकथित है ।"

7. **बैज नाथ त्रिपाठी** बनाम **भोपाल राज्य और एक अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की एक संविधान न्यायपीठ तत्कालीन भोपाल राज्य से

---

[1] ए. आई. आर. 1957 एस. सी. 494.

आए एक पुलिस उप-निरीक्षक के मामले पर विचार कर रही थी, जिसे विशेष न्यायाधीश, भोपाल द्वारा अभियोजित किया गया था और भारतीय दंड संहिता की धारा 161 और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 की धारा 5 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया गया था । विचारण न्यायालय द्वारा उसे प्रत्येक अपराध के लिए नौ माह का कठोर कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया था । उक्त दोषसिद्धि और दंडादेश के विरुद्ध न्यायिक आयुक्त के समक्ष अपील में यह अभिनिर्धारित किया गया कि चूंकि अभियुक्त पर अभियोजन चलाने के लिए विधि के अनुसार मंजूरी नहीं दी गई थी, इसलिए विशेष न्यायाधीश को मामले का संज्ञान लेने की कोई अधिकारिता नहीं थी और विचारण अविधिमान्य और आरंभ से ही शून्य था, इसलिए उसे अभिखंडित किया गया और पक्षकारों को उसी स्थिति में इस प्रकार प्रत्यावर्तित किया गया मानो अपीलार्थी के विरुद्ध कोई विधिक आरोप-पत्र प्रस्तुत ही नहीं किया था । इसके पश्चात् अभियुक्त का दूसरी बार एक अन्य विशेष न्यायाधीश के समक्ष विचारण किया गया और अभियुक्त ने उस अभियोजन का इस आधार पर विरोध किया कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 20(2) और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 403 के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए द्वितीय विचारण अननुज्ञेय है । एक अन्य उप-निरीक्षक, सुधाकर दूबे, जिसका इसी प्रकार से विचारण और अभियोजन किया गया था, द्वारा ऐसी ही दलील दी गई किंतु विशेष न्यायाधीश ने मंजूरी आदेश को असक्षम पाते हुए कार्यवाहियों को अभिखंडित कर दिया । इसके उपरांत दूबे का भी दूसरी बार विचारण किए जाने की ईप्सा की गई और इस द्वितीय विचारण को उसके द्वारा इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका फाइल करके चुनौती दी गई । उपरोक्त पृष्ठभूमि में विचार के लिए यह संक्षिप्त प्रश्न उद्‌भूत हुआ कि क्या याचियों को भारत के संविधान के अनुच्छेद 20 के अर्थांतर्गत अभियोजित और दंडित किया गया था या सक्षम प्राधिकारिता के न्यायालय द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 403(1) के अर्थांतर्गत विचारण किया गया था । प्रत्यर्थी की ओर से यह दलील दी गई कि यदि पहला विचारण अकृत और शून्य तथा अविद्यमान था, तो द्वितीय विचारण विधिक रूप से अनुज्ञेय था । इस दलील में न्यायालय ने बल पाया । **यूसोफअली मुल्ला** बनाम **दि किंग**[1], **बासदेव अग्रवाल** बनाम **किंग एम्परर**[2] और **बुधा मल** बनाम **दिल्ली राज्य**[3]

---

[1] ए. आई. आर. 1949 पी. सी. 264.

[2] ए. आई. आर. 1945 एफ. सी. 16.

[3] 1952 की दांडिक अपील सं. 17.

वाले मामलों का अवलंब लेते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया कि अभियुक्तों का विचारण न तो सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय द्वारा किया गया था और न ही उन्हीं अपराधों के लिए उनके अभियोजन के विरुद्ध दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 403 के अर्थांतर्गत एक वर्जना होने के रूप में कोई अभ्यारोपण या दोषसिद्धि प्रवर्तन में थी । भोपाल राज्य की ओर से दी गई दलील को स्वीकार करने के लिए विनिश्चय के निम्नलिखित उद्धरण में संक्षिप्त और स्पष्ट रूप से इसके विधिक आधार के सार का उल्लेख किया गया है :–

> "यदि कोई न्यायालय विधिक मंजूरी के अभाव में प्रश्नगत अपराधों का संज्ञान नहीं ले सकता, तो यह स्पष्ट है कि किसी न्यायालय को उन अपराधों का विचारण करने वाला सक्षम प्राधिकारिता का न्यायालय होना नहीं कहा जा सकता है और ऐसी मंजूरी के अभाव में किया गया कोई विचारण अवश्य अकृत और शून्य होना चाहिए, और संहिता की वे धाराएं, जिनका याचियों की ओर से विद्वान् काउंसेल ने अवलंब लिया, उनका मामले से कोई सरोकार नहीं है । संहिता की धारा 530 वास्तव में विद्वान् काउंसेल की दलील के विरुद्ध है, क्योंकि इस धारा में, अन्य बातों के साथ-साथ, यह उपबंधित है कि यदि कोई मजिस्ट्रेट, किसी अपराधी का विचारण करने के लिए विधि द्वारा सशक्त नहीं है, तब कार्यवाहियां शून्य होंगी । धारा 529(ङ) किसी अपराध की धारा 190, उपधारा (13), खंड (क) और (ख) के अधीन संज्ञान लेने के विषय में एकमात्र एक अपवाद है, और इसका उस मामले में कोई सरोकार नहीं है जहां मंजूरी आवश्यक है और विधि के अनुसार मंजूरी अभिप्राप्त नहीं की गई है ।"

8. **युसोफअली मुल्ला** (उपरोक्त) वाले मामले में प्रिवी कौंसिल को यह परीक्षा करनी थी कि क्या मंजूरी अभिप्राप्त न करना अभियुक्त का विचारण करने के लिए न्यायालय की सक्षमता को प्रभावित करता है या नहीं । यह दलील दी गई थी कि एक ओर तो किसी अभियोजन को विधिमान्य रूप से संस्थित करने और दूसरी ओर अभियोजन की सुनवाई और अवधारण करने की न्यायालय की सक्षमता, इनके बीच विभेद है । इस दलील को नामंजूर करते हुए कि ऐसा कोई विभेद विद्यमान है, इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया :–

> "अगली दलील यह दी गई कि मंजूरी अभिप्राप्त करने में

असफल रहना, अधिक से अधिक, किसी अभियोजन की विधिमान्य संस्थिति को निवारित करेगा, किंतु इससे न्यायालय की किसी अभियोजन की सुनवाई और अवधारण करने, जो वास्तव में उसके समक्ष लाया गया है, की सक्षमता प्रभावित नहीं होती है । श्री पेज़ द्वारा इस बात पर जोरदार रूप से बल दिया गया कि इस बात से अभियोजन की विधिमान्यता और न्यायालय की सक्षमता के बीच विभेद का सुझाव मिलता है, किंतु यह प्रतीत होता है कि यह दलील निराधार है । कोई न्यायालय ऐसे किसी अभियोजन की सुनवाई और अवधारण करने के लिए सक्षम नहीं हो सकता है, जिसका संस्थित करना विधि द्वारा प्रतिषिद्ध है और धारा 14 में उचित मंजूरी के अभाव में किसी अभियोजन को संस्थित करना प्रतिषिद्ध किया गया है । विद्वान् मजिस्ट्रेट, निस्संदेह, यह विनिश्चय करने के लिए सक्षम था कि क्या उसे अभियोजन ग्रहण करने की अधिकारिता है और इस प्रयोजन के लिए यह अवधारण करना कि क्या विधिमान्य मंजूरी दी गई थी या नहीं, किंतु जैसे ही उसने यह विनिश्चय किया कि कोई विधिमान्य मंजूरी नहीं दी गई थी, न्यायालय मामले में कार्यवाही के लिए असक्षम हो गया । हम **अग्रवाल** (ए. आई. आर. 1945 एफ. सी. 16) वाले मामले में फेडरल न्यायालय द्वारा अभिव्यक्त किए गए इस मत से सहमत हैं कि विधिमान्य मंजूरी के बिना चलाया गया अभियोजन अकृत होता है ।"

9. **बासदेव अग्रवाल** (उपरोक्त) वाले मामले में फेडरल न्यायालय ने मंजूरी के अभाव के प्रभाव के संबंध में विधिक स्थिति का सार निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया है :–

"हमारे मत में, अभियोजन संस्थित करने से पूर्व मंजूरी का अभाव मात्र एक तकनीकी त्रुटि नहीं माना जा सकता है । प्रश्नगत खंड स्पष्ट तौर पर नागरिक संरक्षा के प्रयोजन और प्रांतीय सरकार को प्रत्येक मामले में इस बात पर विचार करने का अवसर देने के लिए अधिनियमित किया गया है कि क्या कोई अभियोजन प्रत्येक विशिष्ट मामले की परिस्थितियों में संस्थित किया ही जाए या नहीं । ऐसा खंड प्रांतीय सरकार को, जब कभी उसे यह प्रतीत हो कि कोई तकनीकी अपराध कारित किया गया है, इस बात के लिए समर्थ बनाता है कि यदि किसी विशिष्ट मामले में, वह ऐसा उचित समझे तो, किसी अभियोजन से इनकार कर सके । मंजूरी का आशय एक

यंत्रवत औपचारिकता नहीं है और न ही होना चाहिए तथा न तो पुलिस और न ही पदधारियों द्वारा इसे ऐसा समझा जाना चाहिए । ऐसे किसी आदेश के उपबंधों के विरुद्ध कारित तकनीकी अपराध हो सकते हैं, जैसा कि प्रश्नगत है, जिनमें प्रांतीय सरकार के पास किसी अभियोजन को अवांछनीय या असमीचीन समझने के लिए उत्कृष्ट कारण हों । किंतु यह विनिश्चय अभियोजन आरंभ करने से पूर्व ही किया जाना चाहिए । अभियोजन आरंभ होने के पश्चात् दी गई मंजूरी एक बिल्कुल अलग बात है । किसी नागरिक को न्यायालय में लाया जाना और आरोपित किया जाना, यह तथ्य उसकी ख्याति को बहुत ही गंभीर रूप से प्रभावित कर सकता है और अभियोजन के लिए बाद में मंजूरी देने से इनकारी संभवतः उस अपहानि की, जो अभियोजन के प्रथम प्रक्रमों के आरंभ होने पर उसे कारित हुई, भरपाई नहीं की जा सकती है । इसके अतिरिक्त, हमारी राय में, जिस पदधारी द्वारा और जिसके परामर्श पर कोई मंजूरी दी जाती है या इनकार किया जाता है, यदि उसे उस अभियोजन के लिए, जो वास्तव में पहले ही आरंभ किया जा चुका है, मंजूरी देने के लिए कहा जाता तो उसका उस मत से एक भिन्न मत हो सकता था यदि वह मामले में कोई कार्यवाही किए जाने से पूर्व उस पर विचार करता ।"

10. इसी प्रकार, **बुधा मल** बनाम **दिल्ली राज्य** (उपरोक्त) वाले मामले में भी इस न्यायालय ने स्पष्ट रूप से यह निर्णय दिया कि विधिमान्य मंजूरी के अभाव में अभियुक्त का विचारण करने और दंडित करने की सक्षमता प्रभावित हुई थी । इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया :–

"हमारा यह समाधान हो गया है कि विद्वान् सेशन न्यायाधीश ने जो दृष्टिकोण अपनाया वह ठीक था । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 403 उन मामलों को लागू होती है जहां दोषमुक्ति का आदेश किसी सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय द्वारा किया गया हो किंतु यह धारा उन मामलों में अभियुक्त का पुनर्विचारण करने के लिए वर्जित नहीं करती है जहां ऐसा आदेश ऐसे किसी न्यायालय द्वारा किया गया है जिसे मामले का संज्ञान लेने की अधिकारिता नहीं थी । इस अभिलेख पर यह बिल्कुल स्पष्ट है कि विधिमान्य मंजूरी के अभाव में अपीलार्थी का प्रथम बार विचारण उस मजिस्ट्रेट द्वारा किया गया था जिसको उसका विचारण करने की अधिकारिता नहीं थी ।"

11. **गोवा राज्य** बनाम **बाबू थोमस**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा तर्काधार की उपरोक्त बातों का ही अनुसरण किया गया था, जहां इस न्यायालय ने भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 19 के अधीन एक मामले पर विचार करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि धारा 19(1) के अधीन विधिमान्य मंजूरी का अभाव इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि उक्त उपबंध में किसी न्यायालय को लोक सेवक के विरुद्ध धारा 7, 10, 13 और 15 के अधीन दंडनीय अपराध की धारा 19 के खंड (क), (ख) और (ग) के निबंधनों के अनुसार सक्षम प्राधिकारी द्वारा पूर्व मंजूरी दिए बिना संज्ञान लेने के लिए प्रतिषिद्ध किया गया है, अभियोजन पक्षकथन के मूल आधार को ठेस पहुंचाता है । यह न्यायालय उस मामले में ऐसे प्राधिकारी द्वारा जारी किए गए एक मंजूरी आदेश पर विचार कर रहा था जो ऐसा करने के लिए सक्षम नहीं था और प्रस्तुत मामले में भी ऐसी ही स्थिति है । उस मामले में अभियुक्त पर अभियोजन चलाने के लिए जारी किया गया द्वितीय मंजूरी आदेश इस तथ्य के अतिरिक्त कि वह आदेश भूतलक्षी प्रभाव से प्रभावी होना तात्पर्यित था, असक्षम होना भी ठहराया गया । इस न्यायालय ने यह पाया कि तारीख 29 मार्च, 1995 को जब विशेष न्यायाधीश द्वारा संज्ञान लिया गया था, तब अभियोजन चलाने की मंजूरी देने वाला कोई आदेश नहीं था और परिणामस्वरूप न्यायालय संज्ञान लेने के लिए असक्षम था तथा यह गलती इतनी मौलिक थी कि इससे न्यायालय द्वारा की गई कार्यवाहियां अविधिमान्य हो गईं । तद्‌नुसार, इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए आदेश को मान्य ठहराया किंतु अभियुक्त के विरुद्ध किए गए गंभीर अभिकथन को ध्यान में रखते हुए सक्षम प्राधिकारी को नए आदेश जारी करने की स्वतंत्रता को आरक्षित रखा ।

12. **कर्नाटक राज्य** बनाम **सी. नागराजस्वामी**[2] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा एक बार फिर इस विधिक स्थिति को दोहराया गया, जहां इस न्यायालय ने विधि के सार का निम्नलिखित शब्दों में उल्लेख किया :–

> "पूर्वोल्लिखित प्रामाणिक निर्णय को ध्यान में रखते हुए, उच्च न्यायालय के इस निर्णय से सहमत होना संभव नहीं है कि विचारण न्यायालय यह अभिनिर्धारित करने के पश्चात् भी कि मंजूरी विधिमान्य

---

[1] (2005) 8 एस. सी. सी. 130.

[2] (2005) 8 एस. सी. सी. 370.

नहीं है, दोषसिद्धि या दोषमुक्ति का निर्णय अभिलिखित करने के लिए आबद्ध था । हमने इसमें ऊपर यह अवेक्षा की है कि चाहे दोषसिद्धि या दोषमुक्ति का निर्णय अभिलिखित किया गया हो, इससे संहिता की धारा 300 के उपबंधों का अवलंब लेने के प्रयोजन से कोई विभेद नहीं होगा क्योंकि फिर भी इन्हें अवैध रूप से और अधिकारिता के बिना अभिलिखित किया गया ठहराया जाएगा ।"

13. महत्वपूर्ण बात यह है कि न्यायालय द्वारा संज्ञान लेने के लिए न केवल विधिमान्य मंजूरी प्रदान किया जाना आवश्यक ठहराया गया, अपितु इस न्यायालय के अनुसार ऐसे किसी आदेश की विधिमान्यता के बारे में प्रश्न विचारण के पश्चात् अंतिम बहस के प्रक्रम पर या अपील के प्रक्रम पर भी उठाया जा सकता है । इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया :–

"सामान्यतया, यह प्रश्न कि क्या अभियुक्त व्यक्तियों पर अभियोजन चलाने के लिए उचित मंजूरी दी गई है या नहीं, ऐसा विषय है जिस पर संज्ञान लेने के प्रक्रम पर विचार किया जाना चाहिए । किंतु इस प्रकृति के किसी मामले में जहां विचारण के पश्चात् अंतिम बहस के प्रक्रम पर यह प्रश्न उठाया जाता है कि क्या मंजूरी प्रदान करने वाला प्राधिकारी इसके लिए सक्षम था या नहीं, इस प्रश्न पर यह अवधारण करने के प्रयोजन के लिए कि अभियुक्त को सेवा से कौन हटा सकता है, उसकी सेवा के निबंधनों और शर्तों को ध्यान में रखते हुए विचार किया जाना होगा ।

किसी सक्षम प्राधिकारी द्वारा उचित मंजूरी प्रदान करना अपराध का संज्ञान लेने के लिए अनिवार्य है । यह वांछनीय है कि मंजूरी के विषय में प्रश्न का अवधारण आरंभिक प्रक्रम पर किया जाए ।

किंतु, चाहे गलती से अपराध का संज्ञान ले लिया जाता है और यह बात बाद के प्रक्रम पर न्यायालय के ध्यान में आती है, तो भी इस प्रभाव का निष्कर्ष अनुज्ञेय है । यहां तक कि ऐसा अभिवाक् पहली बार अपील न्यायालय के समक्ष भी किया जा सकता है ।"

14. **बी. साहा और अन्य** बनाम **एम. एस. कोचर**[1] वाले मामले में यह न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के अधीन मंजूरी की आवश्यकता और वह प्रक्रम जिस पर इसकी विधिमान्यता के संबंध में प्रश्न उठाया जा सकता है पर विचार कर रहा था । इस न्यायालय ने यह

---

[1] (1979) 4 एस. सी. सी. 177.

अभिनिर्धारित किया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के अधीन मंजूरी के आदेश की विधिमान्यता का प्रश्न कार्यवाहियों के किसी भी प्रक्रम पर उठाया जा सकता है और उस पर विचार किया जा सकता है । **के. कालीमुथु** बनाम **राज्य** मार्फत **पुलिस उप अधीक्षक**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय के प्रति भी निर्देश किया जा सकता है, जहां न्यायमूर्ति पसायत ने, न्यायालय का निर्णय सुनाते हुए, यह अभिनिर्धारित किया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के अधीन विधिमान्य मंजूरी की आवश्यकता संबंधी प्रश्न शिकायत दर्ज होते ही उठाना आवश्यक नहीं है अपितु इसे कार्यवाहियों के किसी भी प्रक्रम पर उठाया जा सकता है । इस संबंध में निम्नलिखित मताभिव्यक्ति प्रासंगिक है :–

> "संहिता की धारा 197 के अधीन मंजूरी की आवश्यकता संबंधी प्रश्न पर शिकायत दर्ज होते ही और उसमें अंतर्विष्ट अभिकथनों पर विचार किया जाना आवश्यक नहीं है । यह प्रश्न कार्यवाहियों के किसी भी प्रक्रम पर उद्भूत हो सकता है । इस प्रश्न का अवधारण कि क्या मंजूरी आवश्यक है या नहीं, एक प्रक्रम से अगले प्रक्रम पर किया जा सकेगा । इसके अतिरिक्त, उन मामलों में जहां अधिनियम के अधीन किए गए अपराधों का संबंध है, वहां प्रतिकूल प्रभाव पड़ने के प्रश्न पर विचार करते समय धारा 19 के प्रभाव को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए ।"

15. इस प्रकार, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 19 के अधीन मंजूरी के महत्व के संबंध में विधिक स्थिति पर्याप्त स्पष्ट है और अस्पष्टता की बात स्वीकार नहीं की जा सकती है । कानून में किसी लोक सेवक के विरुद्ध धारा 19(1) के खंड (क), (ख) और (ग) के निबंधनों के अनुसार मंजूरी देने के लिए सक्षम प्राधिकारी की पूर्व मंजूरी के बिना न्यायालय द्वारा संज्ञान लेना प्रतिषिद्ध किया गया है । ऐसी मंजूरी की विधिमान्यता से संबंधित प्रश्न कार्यवाहियों के किसी प्रक्रम पर उठाया जा सकता है । अभियुक्त का विचारण करने की न्यायालय की सक्षमता विधिमान्य मंजूरी की विद्यमानता पर बहुत अधिक निर्भर करती है । यदि मंजूरी का अविधिमान्य होना पाया जाता है, तो न्यायालय पक्षकारों को उसी प्रक्रम पर लौटाते हुए, जहां पर सक्षम प्राधिकारी अभियोजन चलाने के लिए विधि के अनुसार नए सिरे से मंजूरी दे सकता है, अभियुक्त को उन्मोचित कर सकता है । यदि विचारण न्यायालय मंजूरी आदेश के अविधिमान्य होने के

---

[1] (2005) 4 एस. सी. सी. 512.

बावजूद कार्यवाही करता है, तो ऐसी कार्यवाही विधि की दृष्टि में अस्तित्वहीन समझी जाएगी और ऐसा अभियोजन चलाने के लिए विधिमान्य मंजूरी देने पर उन्हीं अपराधों के लिए द्वितीय विचारण निषिद्ध नहीं होगा ।

16. ऐसा मत व्यक्त करने के पश्चात् इसके दो पहलू हैं जिन पर हमें तुरंत विचार करना होगा । पहला, धारा 19 की उपधारा (3) के प्रभाव से संबंधित है, जो सर्वोपरि खंड से आरंभ होती है । इसी पहलू से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 465 भी सुसंगत है, जिसे हमने पहले उद्धृत किया है । राज्य की ओर से बेहतर उद्देश्य के लिए पर्याप्त दृढ़ता के साथ यह दलील दी गई कि धारा 19(3) के निबंधनों के अनुसार किसी अभियुक्त पर अभियोजन चलाने के लिए मंजूरी आदेश में किसी गलती, लोप या अनियमितता तब तक कोई मायने नहीं रखती है जब तक कि ऐसी गलती, लोप या अनियमितता के परिणामस्वरूप न्याय की कोई हानि न हुई हो । यह दलील दी गई कि धारा 4 के स्पष्टीकरण के निबंधनों के अनुसार, "गलती के अंतर्गत मंजूरी देने वाले प्राधिकारी की सक्षमता भी आती है" । यह दलील देखने में आकर्षक लगती है किंतु, हमारी राय में, गहराई से संवीक्षा करने योग्य नहीं है । धारा 19 की उपधारा (3) के सावधानीपूर्वक वाचन से यह दर्शित होता है कि इस धारा में किसी विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित किसी निष्कर्ष, दंडादेश या आदेश को इस आधार पर कि मंजूरी में कोई गलती, लोप या अनियमितता है तब तक उलटने या परिवर्तित करने के लिए प्रतिषिद्ध किया गया है जब तक कि उस न्यायालय की जिसके समक्ष ऐसे निष्कर्ष, दंडादेश या आदेश को अपील या पुनरीक्षण में चुनौती दी जाती है, यह राय न हो कि ऐसी गलती, लोप या अनियमितता के कारण न्याय की हानि हुई है । दूसरे शब्दों में, उपधारा (3) में विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश में अपील, पुष्टि या पुनरीक्षण कार्यवाहियों में मात्र इस आधार पर कि मंजूरी दूषित है, उन मामलों के सिवाय हस्तक्षेप करने के लिए निषिद्ध किया गया है जहां अपील या पुनरीक्षण न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि ऐसी अविधिमान्यता के कारण न्याय की हानि हुई है । उल्लेखनीय बात यह है कि उपधारा (3) विशेष न्यायाधीश के समक्ष कार्यवाहियों पर लागू नहीं होती है, जो तब अभियुक्त को उन्मोचित करते हुए आदेश पारित करने के लिए स्वतंत्र है यदि उसकी यह राय है कि अभियुक्त के विरुद्ध अभियोजन चलाने के लिए विधिमान्य मंजूरी आदेश धारा 19(1) के अधीन अपेक्षित अनुसार प्रस्तुत नहीं किया गया है । हमारी राय में, उपधारा (3) में किसी उच्चतर न्यायालय द्वारा विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को मंजूरी के आदेश में किसी त्रुटि, लोप या

अनियमितता के आधार पर उलटने के लिए प्रतिषेध परिकल्पित है । यह धारा किसी विशेष न्यायाधीश को कार्यवाहियों के किसी भी प्रक्रम पर यह अभिनिर्धारित करते हुए आदेश पारित करने से नहीं रोकती है कि अभियोजन चलाने की मंजूरी देने वाले विधिमान्य आदेश के अभाव में अभियोजन चलने योग्य नहीं है । हमारी राय में, उपधारा (3) में प्रयुक्त भाषा स्पष्ट और असंदिग्ध है । हमारी राय में, यह बात उपधारा (4) में प्रयुक्त भाषा से भी पर्याप्त रूप से स्पष्ट होती है, जिसके अनुसार अपील या पुनरीक्षण न्यायालय यह परीक्षा करते समय कि क्या मंजूरी में गलती, लोप या अनियमितता के कारण न्याय की कोई हानि हुई है इस तथ्य को ध्यान में रखेगा कि क्या आक्षेप किसी पूर्ववर्ती प्रक्रम पर उठाया जा सकता था और उठाया जाना चाहिए था । यह कहना पर्याप्त होगा कि धारा 19(3) और (4) के संयुक्त वाचन से संदेह की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती है कि उक्त उपबंध में मंजूरी के आदेश की विधिमान्यता या विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित निष्कर्ष, दंडादेश या आदेश सहित कार्यवाहियों की विधिमान्यता को किसी उच्चतर न्यायालय के समक्ष अपील या पुनरीक्षण में चुनौती दिया जाना परिकल्पित है न कि अभियुक्त का विचारण कर रहे विशेष न्यायाधीश के समक्ष । स्पष्ट रूप से, इस उपबंध के अधीन तर्क-आधार यह है कि यदि विचारण का समापन हो गया है और परिणामस्वरूप कोई निष्कर्ष निकाला गया है या दंडादेश दिया गया है, तो अपील या पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा इसमें हल्केपन से केवल इस कारण हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए कि अभियोजन चलाने की मंजूरी देने वाले धारा 19(1) के अधीन आदेश में कुछ गलती, लोप या अनियमितता है । न्याय की हानि वह है जो ऐसे मामलों में अपील या पुनरीक्षण न्यायालय के सामने आए । और यह परीक्षा करते हुए कि क्या ऐसी कोई न्याय की हानि वास्तव में हुई है, संबंधित न्यायालय इस बात को भी ध्यान में रखेगा कि क्या मंजूरी में गलती, लोप या अनियमितता से संबंधित आक्षेप कार्यवाहियों के पूर्ववर्ती प्रक्रम पर उठाया जा सकता था या उठाया जाना चाहिए था, कहने का तात्पर्य यह है कि क्या ऐसा आक्षेप अपील या पुनरीक्षण में किए जाने के बजाय विचारण के प्रक्रम पर किया जा सकता था या किया जाना चाहिए था ।

17. प्रस्तुत मामले में, विशेष न्यायालय ने मंजूरी के आदेश की अविधिमान्यता के बारे में अभियुक्त की ओर से दी गई दलील को न केवल ग्रहण किया अपितु यह पाया कि उक्त आदेश जारी करने वाला प्राधिकारी मंजूरी देने के लिए असक्षम था । विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्राधिकारी जिसने मंजूरी जारी की थी, ऐसा करने के लिए सक्षम

नहीं था, यह ऐसा तथ्य है जिसे उच्च न्यायालय या हमारे समक्ष विवादग्रस्त नहीं किया गया है । हमारी राय में, विचारण न्यायालय ने जो एकमात्र गलती की, वह यह थी कि मंजूरी अविधिमान्य होना ठहराए जाने के पश्चात् उसे मामले के गुणागुण के आधार पर दोषमुक्ति का आदेश अभिलिखित करने के बजाय अभियुक्त को उन्मोचित कर देना चाहिए था । **बैज नाथ त्रिपाठी** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा व्यक्त मत के अनुसार, मंजूरी आदेश के अभाव से यह विवक्षित है कि न्यायालय संज्ञान लेने या अभियुक्त का विचारण करने के लिए सक्षम नहीं था । परिणामतः, असक्षम न्यायालय द्वारा किए गए विचारण का अविधिमान्य और विधि के अनुसार विद्यमान न होना लाजिमी है ।

18. **मोहम्मद सफी** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय का विनिश्चय भी इसी आशय का है । इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया :–

> "जहां तक श्री मुखर्जी की द्वितीय दलील का संबंध है, यह उल्लेख करना आवश्यक है कि कोई दांडिक न्यायालय, उस न्यायालय के सिवाय जहां आरोप किसी ऐसे न्यायालय द्वारा विरचित किया है जो इसे विरचित करने के लिए सक्षम है और मामले का विचारण करने और दोषमुक्ति या दोषसिद्धि का विधिमान्य आदेश करने के लिए सक्षम है, उसके समक्ष आए ऐसे मामले का अवधारण करने से विवर्जित है जिसमें दोषमुक्ति या दोषसिद्धि का आदेश न करके केवल कोई आरोप विरचित किया गया है । निस्संदेह, यहां आरोप श्री गांगुली द्वारा विरचित किया गया था किंतु उनके अपने मत के अनुसार वह अपराध का संज्ञान लेने के लिए सक्षम नहीं थे और इसलिए आरोप विरचित करने के लिए असक्षम थे । इस कारण केवल इस तथ्य से अपीलार्थी से कोई सहायता नहीं मिलती है कि इस मामले में आरोप विरचित किया गया था ।"
>
> * * * * *
>
> 12. न्यायालय के सक्षम होने के अतिरिक्त, संहिता की धारा 403 में कोई विचारण किए जाने और विचारण के समापन पर दोषमुक्ति किए जाने के बारे में उपबंध है । हमने ऊपर जो कुछ कहा है उससे यह स्पष्ट होता है कि इस तथ्य से कि अभियोजन पक्ष तथा

[1] ए. आई. आर. 1966 एस. सी. 69.

प्रतिरक्षा पक्ष की ओर से सभी साक्षियों की श्री गांगुली के समक्ष परीक्षा की गई थी और इस तथ्य से भी कि अपीलार्थी की धारा 342 के अधीन भी परीक्षा की गई थी, इसे विधि के अनुसार कतई यह नहीं समझा जा सकता है कि विचारण किया गया था । यह कहना केवल दोहराना होगा कि कार्यवाहियों को विचारण की कोटि में आने के लिए उन्हें ऐसे न्यायालय के समक्ष चलाया जाना चाहिए जो उन पर विचार करने के लिए वास्तव में सक्षम है और उसकी यह राय न हो कि उसे इन पर विचार करने की अधिकारिता नहीं है । बहरहाल, इसका यह भी परिणाम होगा कि ऐसे न्यायालय द्वारा किया गया अंतिम आदेश, चाहे उसका स्वरूप कोई भी हो, विधि के अनुसार दोषमुक्ति के रूप में लागू नहीं होगा । प्रिवी कौंसिल के समक्ष एक मामले में सर जॉन बेमांट, जिन्होंने बोर्ड की राय को व्यक्त किया, ऐसे आदेश का निर्वचन उन्मोचन के आदेश के रूप में किया । हमारे लिए यह कहना अनावश्यक है कि संहिता में मामले को शासित करने वाले किसी अभिव्यक्त उपबंध के अभाव में क्या ऐसा आदेश उन्मोचन के आदेश की कोटि में आता है या यह उन्मोचन के आदेश की कोटि में नहीं आता है । यह कहना पर्याप्त होगा कि यह आदेश धारा 403(1) में अनुध्यात अनुसार दोषमुक्ति के आदेश की कोटि में नहीं आता है और चूंकि विशेष न्यायाधीश के समक्ष कार्यवाहियों के समापन पर यह आदेश किया गया था, इस पर मात्र ऐसे आदेश के रूप में विचार करना पर्याप्त होगा कि यह कार्यवाहियों को बंद करने वाला आदेश था । इन कारणों से हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि भट्टाचार्जी द्वारा किया गया अपीलार्थी का विचारण और पारिणामिक दोषसिद्धि विधि के अनुसार विधिमान्य थी और इस अपील को खारिज करते हैं ।"

19. **बाबू थोमस** (उपरोक्त) वाले मामले में भी इस न्यायालय ने उस मामले में अभियुक्त के विरुद्ध किए गए अभिकथनों की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए मंजूरी के आदेश को अविधिमान्य ठहराते हुए पक्षकारों को उसी स्थिति में लौटाया जहां सक्षम प्राधिकारी अभियोजन चलाने की मंजूरी देते हुए उचित आदेश जारी कर सकता था ।

20. हमारी राय में, उच्च न्यायालय ने मंजूरी की आवश्यकता या इसकी अविधिमान्यता के प्रभाव के संबंध में विधिक स्थिति का ठीक प्रकार से विवेचन नहीं किया । उसने यह अभिनिर्धारित करते हुए कि यह प्रश्न

पूर्ववर्ती प्रक्रम पर उठाया जाना चाहिए था, इस विषय पर केवल सरसरी टिप्पणी की है । यह प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने यह महसूस नहीं किया कि यह मुद्दा पहली बार उसके समक्ष नहीं उठाया जा रहा है अपितु विचारण न्यायालय के समक्ष भी सफलतापूर्वक उठाया गया था ।

21. इसके पश्चात् अगला प्रश्न यह है कि क्या हमें इस अपील को मंजूर करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश अपास्त कर देना चाहिए और अपीलार्थी के विरुद्ध इतनी लंबी अवधि के पश्चात् नए सिरे से अभियोजन चलाने की अनुज्ञा देनी चाहिए । प्रश्नगत घटना तारीख 24 मार्च, 1998 को घटी थी । अपीलार्थी की आयु उस सुसंगत समय पर लगभग 38 वर्ष थी । अपीलार्थी आज एक वरिष्ठ नागरिक है । हमारी राय में, इस प्रक्रम पर पूर्व स्थिति में वापस जाने से, जब स्वयं अभियोजन साक्षी भी शायद उपलब्ध न हों, किसी प्रयोजन की पूर्ति नहीं होगी । इसके अतिरिक्त, विचारण न्यायालय ने यहां तक कि साक्ष्य के मूल्यांकन के आधार पर, यद्यपि उसे ऐसा नहीं करना चाहिए था, मंजूरी की विधिमान्यता पर अपना निष्कर्ष दिया था और यह अभिनिर्धारित किया था कि अभियोजन पक्षकथन संदेहास्पद है और अभियोजन के वृत्तांत को नामंजूर कर दिया था । इसलिए बार-बार कार्यवाहियों को पुनः आरंभ करने से किसी प्रयोजन की पूर्ति नहीं होगी । हमें इतने अंतराल के पश्चात् इस प्रकृति के मामले में नए सिरे से विचारण करने का निदेश देने का किसी प्रकार का कोई बाध्यकारी कारण दिखाई नहीं पड़ता है, जिसमें 500/- रुपए की रिश्वत अंतर्वलित है और जिसके लिए अपीलार्थी ने पहले ही विचारण के कारण बदनामी, दोषसिद्धि और कारावास की अवधि, चाहे थोड़े समय के लिए ही, भुगती है । तद्नुसार, हम इस अपील को मंजूर करते हैं और उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को अपास्त करते हैं ।

अपील मंजूर की गई ।

जस.

राकेश महिन्द्रा

बनाम

अनीता बेरी और अन्य

6 अक्तूबर, 2015

न्यायमूर्ति एम. वाई इक़बाल और न्यायमूर्ति सी. नागप्पन

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) – धारा 65 – द्वितीयिक साक्ष्य – पूर्ववर्ती शर्त – प्राथमिक साक्ष्य के स्थान पर द्वितीयिक साक्ष्य प्रस्तुत करने वाले पक्षकार को यह सिद्ध करना आवश्यक है कि मूल दस्तावेज खो गए हैं या नष्ट हो गए हैं या उस पक्षकार द्वारा जानबूझकर विधारित किए जा रहे हैं जिसके संबंध में दस्तावेज प्रयुक्त किया जाना ईप्सित है और मूल दस्तावेज सर्वोत्तम प्रयास के बावजूद प्रस्तुत नहीं किए जा सकते हैं ।

साक्ष्य अधिनियम, 1872 – धारा 65 – द्वितीयिक साक्ष्य – स्थावर संपत्ति पर हक संबंधी विवाद की बाबत वाद फाइल किया जाना – प्रतिवादी के पास अपने हक संबंधी मूल दस्तावेज न होने पर द्वितीयिक साक्ष्य प्रस्तुत करने की ईप्सा किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा द्वितीयिक साक्ष्य ग्रहण किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा अपास्त किया जाना – मामले के संपूर्ण तथ्यों और द्वितीयिक साक्ष्य के ग्रहण करने के प्रयोजन के लिए अपीलार्थी-प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् यह प्रतीत होता है कि द्वितीयिक साक्ष्य देने के प्रयोजन के लिए सभी प्रयास किए गए हैं और कुछ दस्तावेजों में हस्ताक्षर पढ़े जाने योग्य और दृष्टिगोचर नहीं हैं, द्वितीयिक साक्ष्य को नामंजूर करने का आधार नहीं हो सकता है ।

साक्ष्य अधिनियम, 1872 – धारा 65 – द्वितीयिक साक्ष्य का ग्रहण किया जाना – द्वितीयिक साक्ष्य ग्रहण कर लेने से ही यह सबूत की कोटि में नहीं आता है और दस्तावेज की असलियत, सत्यता और अस्तित्व को विचारण के दौरान सिद्ध किया जाना होगा और विचारण न्यायालय उन द्वितीयिक साक्ष्यों का अवलंब लेने से पूर्व कारण अभिलिखित करेगा ।

मामले के तथ्यों के अनुसार, स्वर्गीय श्री दुनी चंद नामक व्यक्ति ने

कसौली कैंट, तहसील कसौली में स्थित अपने स्वामित्वाधीन संपत्ति की बाबत अपने जीवन काल के दौरान एक दान विलेख निष्पादित किया था । उसके द्वारा अपनी संपत्तियां अपने पुत्र न्यायमूर्ति स्वर्गीय श्री टेक चंद को दान में दी गई थीं । न्यायमूर्ति स्वर्गीय श्री टेक चंद अपने पीछे दो पुत्रियां और एक पुत्र छोड़कर स्वर्ग सिधार गए । उसने अपने जीवन काल के दौरान अपनी पुत्री अनीता बेरी (वादी सं. 2) के पक्ष में एक वैध और विधिमान्य "विल" निष्पादित की । अपीलार्थी-प्रतिवादी की माता न्यायमूर्ति स्वर्गीय श्री टेक चंद की सौतेली बहिन थी । वादियों के अनुसार, प्रतिवादी "होमस्टिड" के रूप में ज्ञात मकान के एक भाग का वादी सं. 2 अर्थात् श्रीमती अनीता बेरी की अनुज्ञा से उपयोग कर रहा था । श्रीमती अनीता बेरी को पता चला कि प्रतिवादी लाइसेंस का दुरुपयोग कर रहा है और चबूतरे के आकार का कुछ अवैध निर्माण किया गया है, ताकि उसे कार पार्किंग के प्रयोजन के लिए उपयोग कर सके । प्रत्यर्थी-वादियों ने विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 34 और 38 के अधीन एक वाद यह घोषणा करने के लिए फाइल किया था कि अपीलार्थी-प्रतिवादी का वाद संपत्ति में किसी रीति से कोई अधिकार, हक या हित नहीं है और वाद संपत्ति पर वादियों का कब्जा है और उसे उक्त संपत्ति का दुरुपयोग करने से रोका जाए । प्रतिवादी-अपीलार्थी के पक्षकथन के अनुसार, उन्हें यह संपत्ति श्री विजय कुमारी से विरासत में प्राप्त हुई थी, जो एक दान विलेख के आधार पर वाद संपत्ति की स्वामिनी बनी थी । उसका यह भी पक्षकथन है कि न्यायमूर्ति टेक चंद ने एक दावा-त्याग पत्र जारी किया था । उक्त दावा-त्याग पत्र न्यायमूर्ति टेक चंद द्वारा अपनी बहिन श्रीमती विजय कुमारी को सौंपा गया था, जिसने इसे अपीलार्थी को सौंपा । दावा-त्याग पत्र के आधार पर अपीलार्थी ने तारीख 21 जुलाई, 2001 के पत्र द्वारा प्राधिकारी, अर्थात् रक्षा संपदा अधिकारी (डीईओ), अम्बाला कैंट से अपने नाम में संपत्ति का नामांतरण करने का अनुरोध किया था और उक्त दावा-त्याग पत्र के साथ-साथ अन्य दस्तावेज सौंपे थे । उक्त दावा-त्याग की मूल प्रतिलिपि न मिलने पर प्रतिवादी ने न्यायमूर्ति टेक चंद द्वारा निष्पादित दावा-त्याग पत्र को द्वितीयिक साक्ष्य के माध्यम से साबित करने की अनुज्ञा की ईप्सा करते हुए साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 के अधीन विचारण न्यायालय में आवेदन फाइल किया । इस प्रयोजन के लिए प्रतिवादी ने रक्षा संपदा अधिकारी, अम्बाला, जो कि कथित रूप से अभिलेख का अभिरक्षक है, के कार्यालय से साधारण भूमि रजिस्टर (जीएलआर) का अभिलेख आहूत किया । साक्षी, जिसने अभिलेख और प्रतिवादी का साक्ष्य

प्रस्तुत किया, द्वारा दिए गए साक्ष्य के आधार पर विचारण न्यायालय ने आवेदन को मंजूर किया और दावा-त्याग पत्र को द्वितीयिक साक्ष्य के रूप में उपयोग करने के लिए ग्रहण किया । प्रत्यर्थी-वादी सं. 1 द्वारा विचारण न्यायालय के आदेश से व्यथित होकर उच्च न्यायालय में पुनरीक्षण अर्जी फाइल की गई । उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने वादी-प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा फाइल की गई सिविल पुनरीक्षण अर्जी में विचारण न्यायालय के पूर्वोक्त आदेश को अपास्त कर दिया । प्रतिवादी-अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – द्वितीयिक साक्ष्य पेश करने के लिए पूर्ववर्ती शर्तें यह हैं कि ऐसे मूल दस्तावेजों को, दस्तावेजों का अवलंब लेने वाले पक्षकार द्वारा, सर्वोत्तम प्रयास के बावजूद प्रस्तुत नहीं किया जा सकता हो, और ऐसे दस्तावेज जो पक्षकारों के नियंत्रण से परे हैं, उन्हें प्रस्तुत करने में असमर्थ हों । पक्षकार, जो द्वितीयिक साक्ष्य पेश करना चाहता है, उसे प्राथमिक साक्ष्य प्रस्तुत न करने की बात सिद्ध करनी होगी । जब तक यह सिद्ध नहीं किया जाता है कि मूल दस्तावेज खो गए हैं या नष्ट हो गए हैं या उस पक्षकार द्वारा जानबूझकर विधारित किए जा रहे हैं जिसके संबंध में वह दस्तावेज प्रयुक्त किया जाना ईप्सित है, तब तक उस दस्तावेज की बाबत द्वितीयिक साक्ष्य स्वीकार नहीं किया जा सकता है । (पैरा 17)

यह सुस्थिर है कि यदि कोई पक्षकार द्वितीयिक साक्ष्य प्रस्तुत करना चाहता है, तो न्यायालय उसके पास प्रस्तुत किए गए दस्तावेज के साक्ष्यिक महत्व या उनकी अंतर्वस्तुओं की परीक्षा करने और द्वितीयिक साक्ष्य में प्रस्तुत दस्तावेज की ग्राह्यता के प्रश्न का विनिश्चय करने के लिए आबद्ध है । इसके साथ-साथ, जहां मूल दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किया जा सकता हो, वहां पक्षकार को द्वितीयिक साक्ष्य देने के अधिकार को सिद्ध करने के लिए तथ्यात्मक आधार निर्धारित करना होगा । यह भी समान रूप से सुस्थिर है कि न तो कोई दस्तावेज साक्ष्य में ग्रहण करने मात्र से इसके सबूत की कोटि में आता है और न ही किसी दस्तावेज का प्रदर्श बनाने मात्र से उसके सबूत से अभिमुक्त हो जाता है, जो कि अन्यथा विधि के अनुसार साबित किया जाना अपेक्षित है । (पैरा 22)

मामले के संपूर्ण तथ्यों और द्वितीयिक साक्ष्य के ग्रहण करने के प्रयोजन के लिए अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् इस न्यायालय का यह मत है कि द्वितीयिक साक्ष्य देने के प्रयोजन

के लिए सभी प्रयास किए गए हैं । विचारण न्यायालय ने यह उल्लेख किया है कि प्रदर्श डी. डब्ल्यू.-2/बी रक्षा संपदा अधिकारी, अंबाला की अभिरक्षा से प्रस्तुत किया गया था और साक्षी जो अभिलेख लाया था, उसकी साक्षी के रूप में परीक्षा की गई थी । मामले को इस दृष्टि से देखते हुए, साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 के उपबंधों का पालन किया गया है । केवल यह बात कि कुछ दस्तावेजों में हस्ताक्षर पढ़े जाने योग्य और दृष्टिगोचर नहीं हैं, द्वितीयिक साक्ष्य को नामंजूर करने का आधार नहीं हो सकता है । इस न्यायालय का यह विचार है कि विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी द्वारा द्वितीयिक साक्ष्य प्रस्तुत करने के प्रयोजन के लिए किए गए प्रयासों का ठीक ही मूल्यांकन किया है । तथापि, यह न्यायालय यह स्पष्ट करता है कि द्वितीयिक साक्ष्य ग्रहण कर लेना ही इसके सबूत की कोटि में नहीं आता है । दस्तावेज की असलियत, सत्यता और अस्तित्व को विचारण के दौरान सिद्ध किया जाना होगा और विचारण न्यायालय उन द्वितीयिक साक्ष्यों का अवलंब लेने से पूर्व कारण अभिलिखित करेगा । (पैरा 24 और 26)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2011]	ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 1492 : **एच. सिदिकी (मृत) विधिक प्रतिनिधियों की मार्फत** बनाम **ए. रामलिंगम** ;	19
[2010]	(2010) 9 एस. सी. सी. 712 : **एम. चन्द्रा** बनाम **एम. थंगामुथु** ;	23
[2007]	ए. आई. आर. 2007 एस. सी. 1721 : **जे. यशोदा** बनाम **श्रीमती के. शोभा रानी** ;	19
[1922]	ए. आई. आर. 1922 प्रिवी कौंसिल 54 : **राय बैजनाथ (मृत) केदारनाथ गोयनका की मार्फत** बनाम **महाराजा सर पवनेश्वर प्रसाद सिंह** ।	21

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2015 की सिविल अपील सं. 13361.

2014 की सीएमपीएमओ सं. 165 में हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय, शिमला के तारीख 2 सितम्बर, 2014 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री के. वी. राधाकृष्णन्, ज्येष्ठ अधिवक्ता और (सुश्री) राधिका गौतम (ई. सी. अग्रवाल की ओर से)

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री विपिन गोगिया, (सुश्री) जसप्रीत गोगिया और राकेश गुप्ता

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एम. वाई. इक़बाल ने दिया ।

न्या. इक़बाल – इजाजत दी गई ।

2. यह अपील विशेष इजाजत लेकर हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा तारीख 2 सितम्बर, 2014 को पारित किए गए आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है, जिसने विचारण न्यायालय द्वारा प्रतिवादी-अपीलार्थी को प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा फाइल किए गए सिविल वाद में द्वितीयिक साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए अनुज्ञात करते हुए पारित किए गए आदेश को अपास्त कर दिया ।

3. इस न्यायालय द्वारा विचार के लिए उद्‌भूत संक्षिप्त प्रश्न यह है कि क्या उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा प्रतिवादी-अपीलार्थी को दस्तावेजों की अंतर्वस्तुओं का द्वितीयिक साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुज्ञा देते हुए पारित किए गए आदेश को उलट कर न्यायोचित किया है ।

4. इस मामले के तथ्य संक्षिप्त हैं ।

5. प्रत्यर्थी-वादियों ने विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 34 और 38 के अधीन एक वाद यह घोषणा करने के लिए फाइल किया कि अपीलार्थी-प्रतिवादी का वाद संपत्ति में किसी रीति से कोई अधिकार, हक या हित नहीं है और वाद संपत्ति पर वादियों का कब्जा है । परिणामतः, प्रतिवादी को किसी प्रकार की हानि, क्षति कारित करने और कोई ऐसा कृत्य करने से अवरुद्ध किया जाए जिससे किसी भी रीति से वाद संपत्ति के संबंध में वादी के उपयोग, कब्जे और हक पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े ।

6. वाद की विषयवस्तु सर्वेक्षण सं. 41, कसौली कैंट, तहसील कसौली के रूप में परिनिश्चित भूमि का भाग और विनिर्दिष्ट रूप से "धर्म प्रकाश होमस्टिड" के रूप में ज्ञात संरचना/भवन हैं । स्वर्गीय श्री दुनी चंद, अधिवक्ता "किल्डर एस्टेट" होमस्टिड के रूप में वर्णित सर्वेक्षण सं. 41 में समाविष्ट 2.31 एकड़ भूमि का सकब्जा-स्वामी था । स्वर्गीय श्री दुनी चंद ने अपने जीवन काल के दौरान अपने स्वामित्वाधीन संपत्ति की बाबत एक दान विलेख निष्पादित

किया, जिसे उप रजिस्ट्रार, कसौली के पास विलेख सं. 2 के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया गया । उसने अपनी संपत्तियां अपने पुत्र न्यायमूर्ति स्वर्गीय श्री टेक चंद को दान में दीं । न्यायमूर्ति स्वर्गीय श्री टेक चंद वाद संपत्ति का सकब्जा-स्वामी बन गया । न्यायमूर्ति स्वर्गीय श्री टेक चंद अपने पीछे दो पुत्रियां श्रीमती अनीला सूद और श्रीमती अनीता बेरी और एक पुत्र श्री विक्रम ढांडा को छोड़कर तारीख 16 जून, 1996 को स्वर्ग सिधार गए । न्यायमूर्ति स्वर्गीय श्री टेक चंद ने अपने जीवन काल के दौरान वादी सं. 2, अनीता बेरी के पक्ष में एक वैध और विधिमान्य "विल" निष्पादित की, जिसे उप रजिस्ट्रार के पास तारीख 19 जून, 1984 को विलेख सं. 410 के रूप में सम्यक् रूप से रजिस्ट्रीकृत किया गया था । प्रतिवादी की माता न्यायमूर्ति स्वर्गीय श्री टेक चंद की सौतेली बहिन थी । प्रतिवादी "होमस्टिड" के रूप में ज्ञात मकान के भाग का वादी सं. 2 अर्थात् श्रीमती अनीता बेरी की अनुज्ञा से उपयोग कर रहा था । श्रीमती अनीता बेरी को पता चला कि प्रतिवादी लाइसेंस का दुरुपयोग कर रहा है और चबूतरे के आकार का कुछ अवैध निर्माण किया गया है, ताकि उसे कार पार्किंग के प्रयोजन के लिए उपयोग कर सके ।

7. वादी के अनुसार, प्रतिवादी का वाद संपत्ति पर कोई अधिकार, हक या हित नहीं है और इसलिए वह इसके स्वरूप में परिवर्तन नहीं कर सकता है । तारीख 5 नवम्बर, 2006 को एक विधिक सूचना जारी की गई । प्रतिवादी द्वारा इसका उत्तर भेजा गया । प्रतिवादी ने सर्कुलर रोड से "होमस्टिड कॉटेज" और "होमस्टिड बिल्डिंग" की ओर जाने वाले रास्ते पर बाधा डालना आरंभ कर दिया । वादी सं. 2 ने प्रतिवादी से दरवाजे पर ताला न लगाने का अनुरोध किया । तथापि, दरवाजे पर ताला वादी सं. 2 द्वारा वाद संपत्ति के उपयोग में अस्थायी बाधा, अड़चन और प्रतिकूल प्रभाव डालने के लिए लगाया गया था ।

8. दूसरी ओर, प्रतिवादी-अपीलार्थी का यह पक्षकथन है कि उन्हें यह संपत्ति श्रीमती विजय कुमारी से विरासत में प्राप्त हुई थी, जो तारीख 19 मार्च, 1965 के दान विलेख के आधार पर वाद संपत्ति की स्वामिनी बनी थी । अपीलार्थी का यह भी पक्षकथन है कि न्यायमूर्ति टेक चंद ने तारीख 24 अगस्त, 1992 को एक दावा-त्याग पत्र जारी किया था । अपीलार्थी के अनुसार, उक्त दावा-त्याग पत्र न्यायमूर्ति टेक चंद द्वारा अपनी बहिन श्रीमती विजय कुमारी को सौंपा गया था, जिसने इसे अपीलार्थी को सौंपा । दावा-त्याग पत्र के आधार पर अपीलार्थी ने तारीख 21 जुलाई, 2001 के पत्र द्वारा प्राधिकारी, अर्थात् रक्षा संपदा अधिकारी (डीईओ), अम्बाला कैंट से

अपने नाम में संपत्ति का नामांतरण करने का अनुरोध किया ।

9. इन पृष्ठभूमियों के आधार पर, प्रतिवादी ने न्यायमूर्ति टेक चंद द्वारा निष्पादित दावा-त्याग पत्र को द्वितीयिक साक्ष्य के माध्यम से साबित करने की अनुज्ञा की ईप्सा करते हुए साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 के अधीन विचारण न्यायालय में आवेदन फाइल किया । इस प्रयोजन के लिए प्रतिवादी ने रक्षा संपदा अधिकारी, अम्बाला, जो कि कथित रूप से अभिलेख का अभिरक्षक है, के कार्यालय से साधारण भूमि रजिस्टर (जीएलआर) का अभिलेख आहूत किया । अपीलार्थी के अनुसार, वाद संपत्ति की बाबत नामांतरण की स्वीकृति के समय उसने न्यायमूर्ति टेक चंद द्वारा निष्पादित दावा-त्याग पत्र के साथ-साथ सह-अंशधारियों के मूल शपथपत्र रक्षा संपदा अधिकारी, अंबाला के कार्यालय में, इनकी एक फोटोस्टेट प्रति सहित, फाइल किए थे ।

10. अपीलार्थी ने साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 के अधीन किए गए आवेदन का विनिश्चय करने के प्रयोजन के लिए उक्त कार्यालय में उपलब्ध अभिलेख को प्रस्तुत करने के लिए संबंधित पदधारी की परीक्षा कराई । इस साक्षी, जिसने अभिलेख और प्रतिवादी का साक्ष्य प्रस्तुत किया, द्वारा दिए गए साक्ष्य के आधार पर विचारण न्यायालय ने आवेदन को मंजूर किया और दावा-त्याग पत्र को द्वितीयिक साक्ष्य के रूप में उपयोग करने के लिए ग्रहण किया ।

11. आवेदन में किए गए प्रकथन के अनुसार, प्रतिवादी ने रक्षा संपदा अधिकारी, अंबाला, जो कि अभिलेख का अभिरक्षक है, के कार्यालय से साधारण भूमि रजिस्टर का अभिलेख आहूत किया था । प्रतिवादी का पक्षकथन यह है कि वाद संपत्ति के नामांतरण की स्वीकृति के समय उसने न्यायमूर्ति स्वर्गीय टेक चंद के शपथपत्रों और मूल दावा-त्याग पत्र सहित सह-अंशधारियों के मूल शपथपत्रों को इनकी एक फोटोस्टेट प्रति के साथ रक्षा संपदा अधिकारी, अंबाला के कार्यालय में फाइल किया था । मूल दावा-त्याग पत्र और शपथपत्रों के आधार पर वाद संपत्ति का नामांतरण शपथकर्ता के पक्ष में स्वीकृत किया गया था । संबंधित पदधारी ने तारीख 4 जुलाई, 2013 को न्यायालय में न्यायमूर्ति स्वर्गीय टेक चंद द्वारा तारीख 24 अगस्त, 1982 को श्री हरीश ढांडा और आवेदक की माता, श्रीमती विजय कुमारी के पक्ष में निष्पादित दावा-त्याग पत्र के सिवाय मूल अभिलेख प्रस्तुत किया । मूल दावा-त्याग पत्र अनुमित रूप से उक्त कार्यालय में होना चाहिए था, किंतु संबंधित पदधारी ने न्यायालय में शपथ पर यह कथन किया कि मूल पत्र उनके कार्यालय में नहीं है और उनके कार्यालय में मूल पत्र की फोटोस्टेट प्रतिलिपि है और इसलिए उसने पत्र की फोटोस्टेट प्रतिलिपि प्रस्तुत की । प्रतिवादी के अनुसार, उसके प्रयासों के

बावजूद डी. डब्ल्यू.-2/बी की मूल प्रति नहीं पाई और रक्षा संपदा अधिकारी, अंबाला के कार्यालय से खो गई/गुम हो गई । आवेदन के उत्तर में, इस बात से इनकार किया गया कि दावा-त्याग पत्र कभी अस्तित्व में था या कभी इसकी फोटोस्टेट प्रति बनाई गई थी । यह दलील दी गई कि न्यायमूर्ति स्वर्गीय टेक चंद ने कभी दावा-त्याग पत्र निष्पादित ही नहीं किया था और फोटोस्टेट प्रतिलिपि जाली है ।

12. विचारण न्यायालय ने प्रतिवादी का आवेदन मंजूर करते हुए और दस्तावेज प्रदर्श डी. डब्ल्यू.-2/बी के संबंध में द्वितीयिक साक्ष्य पेश करने के लिए न्यायालय की इजाजत प्रदान करते हुए यह मत व्यक्त किया :–

> "फोटोस्टेट प्रतिलिपि, प्रदर्श डी. डब्ल्यू.-2/बी रक्षा संपदा अधिकारी, अंबाला की अभिरक्षा से आई है और आवेदक साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 के उपबंधों का पालन करने में समर्थ रहा है क्योंकि साक्ष्य में यह आया है कि मूल दस्तावेज अर्थात् दावा-त्याग पत्र, प्रदर्श डी. डब्ल्यू.-2/बी आवेदक द्वारा रक्षा संपदा अधिकारी, अंबाला को सौंपा गया था । पूर्वोक्त को देखते हुए, इस न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि मूल दस्तावेज खो गया है और आवेदक को दस्तावेज, प्रदर्श डी. डब्ल्यू.-2/बी की बाबत भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 65(ग) के अधीन परिकल्पित अनुसार द्वितीयिक साक्ष्य पेश करने के लिए अनुज्ञात किया जाता है और इन दोनों विवाद्यकों का विनिश्चय आवेदकों के पक्ष में और प्रत्यर्थियों के विरुद्ध किया जाता है ।"

13. उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने वादी-प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा फाइल की गई सिविल पुनरीक्षण अर्जी में विचारण न्यायालय के पूर्वोक्त आदेश को अपास्त कर दिया ।

14. इसलिए प्रतिवादी द्वारा विशेष इजाजत लेकर यह अपील फाइल की गई है ।

15. साधारणतया, दस्तावेज प्राथमिक साक्ष्य पेश करके साबित किए जाते हैं । साक्ष्य अधिनियम की धारा 64 में यह उपबंधित है कि दस्तावेज साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 में वर्णित अवस्थाओं के सिवाय प्राथमिक साक्ष्य द्वारा साबित करनी होंगी । प्राथमिक साक्ष्य के अभाव में, अधिनियम की धारा 63 के अधीन अनुध्यात अनुसार दस्तावेज द्वितीयिक साक्ष्य द्वारा साबित किए जा सकते हैं । धारा 63 निम्नलिखित है :–

"द्वितीयिक साक्ष्य – द्वितीयिक साक्ष्य से अभिप्रेत है और इसके अन्तर्गत आते हैं –

(1) एतस्मिन्पश्चात् अंतर्विष्ट उपबंधों के अधीन दी हुई प्रमाणित प्रतियां ;

(2) मूल से ऐसी यान्त्रिक प्रक्रियाओं द्वारा, जो प्रक्रियाएं स्वयं ही प्रति की शुद्धता सुनिश्चित करती है, बनाई गई प्रतियां तथा ऐसी प्रतियों से तुलना की हुई प्रतिलिपियां ;

(3) मूल से बनाई गई या तुलना की गई प्रतियां ;

(4) उन पक्षकारों के विरुद्ध, जिन्होंने उन्हें निष्पादित नहीं किया है, दस्तावेजों के प्रतिलेख ;

(5) किसी दस्तावेज की अंतर्वस्तु का उस व्यक्ति द्वारा, जिसने स्वयं उसे देखा है, दिया हुआ मौखिक वृत्तांत ।

दृष्टांत –

(क) किसी मूल का फोटोचित्र, यद्यपि दोनों की तुलना न की गई हो तथापि, यदि यह साबित किया जाता है कि फोटोचित्रित वस्तु मूल थी, उस मूल की अंतर्वस्तु का द्वितीयिक साक्ष्य है ।

(ख) किसी पत्र की वह प्रति, जिसकी तुलना उस पत्र की उस प्रति से कर ली गई है जो प्रतिलिपि-यंत्र द्वारा तैयार की गई है, उस पत्र की अंतर्वस्तु का द्वितीयिक साक्ष्य है, यदि यह दर्शित कर दिया जाता है कि प्रतिलिपि-यंत्र द्वारा तैयार की गई प्रति मूल से बनाई गई थी ।

(ग) प्रति की नकल करके तैयार की गई किंतु तत्पश्चात् मूल से तुलना की हुई प्रतिलिपि द्वितीयिक साक्ष्य है किंतु इस प्रकार तुलना नहीं की हुई प्रति मूल का द्वितीयिक साक्ष्य नहीं है, यद्यपि उस प्रति की, जिससे वह नकल की गई है, मूल से तुलना की गई थी ।

(घ) न तो मूल से तुलनाकृत प्रति का मौखिक वृत्तांत और न मूल के किसी फोटोचित्र या यंत्रकृत प्रति का मौखिक वृत्तांत मूल का द्वितीयिक साक्ष्य है ।"

16. अधिनियम की धारा 65 उन परिस्थितियों से संबंधित है, जिनमें दस्तावेजों के अस्तित्व, दशा या अंतर्वस्तु को साबित करने के लिए दस्तावेजों के संबंध में द्वितीयिक साक्ष्य दिया जा सकेगा । बेहतर तरीके से मूल्यांकन करने के

लिए अधिनियम की धारा 65 को इसमें नीचे उद्धृत किया जाता है :–

"65. अवस्थाएं, जिनमें दस्तावेजों के संबंध में द्वितीयिक साक्ष्य दिया जा सकेगा – किसी दस्तावेज के अस्तित्व, दशा या अंतर्वस्तु का द्वितीयिक साक्ष्य निम्नलिखित अवस्थाओं में दिया जा सकेगा –

(क) जबकि यह दर्शित कर दिया जाए या प्रतीत होता हो कि मूल ऐसे व्यक्ति के कब्जे में या शक्ति अधीन है :–

जिसके विरुद्ध उस दस्तावेज का साबित किया जाना ईप्सित है, अथवा

जो न्यायालय की आदेशिका की पहुंच के बाहर है, या ऐसी आदेशिका के अध्यधीन नहीं है, अथवा जो उसे पेश करने के लिए वैध रूप से आबद्ध है,

और जब कि ऐसा व्यक्ति धारा 66 में वर्णित सूचना के पश्चात् उसे पेश नहीं करता है ;

(ख) जब कि मूल के अस्तित्व, दशा या अंतर्वस्तु को उस व्यक्ति द्वारा, जिसके विरुद्ध उसे साबित किया जाना है या उसके हित प्रतिनिधि द्वारा लिखित रूप में स्वीकृत किया जाना साबित कर दिया है ;

(ग) जबकि मूल नष्ट हो गया है, या खो गया है अथवा जबकि उसकी अंतर्वस्तु का साक्ष्य देने की प्रस्थापना करने वाला पक्षकार अपने स्वयं के व्यतिक्रम या उपेक्षा से अनुद्भूत अन्य किसी कारण से उसे युक्तियुक्त समय में पेश नहीं कर सकता ;

(घ) जबकि मूल इस प्रकृति का है कि उसे आसानी से स्थानान्तरित नहीं किया जा सकता ;

(ङ) जबकि मूल धारा 74 के अर्थ के अंतर्गत एक लोक दस्तावेज है ;

(च) जबकि मूल ऐसी दस्तावेज है जिसकी प्रमाणित प्रति का साक्ष्य में दिया जाना इस अधिनियम द्वारा या भारत में प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा अनुज्ञात है ;

(छ) जबकि मूल ऐसे अनेक लेखाओं या अन्य दस्तावेजों से गठित है जिनकी न्यायालय में सुविधापूर्वक परीक्षा नहीं की

जा सकती और यह तथ्य जिसे साबित किया जाना है, संपूर्ण संग्रह का साधारण परिणाम है ।

अवस्थाओं (क), (ग) और (घ) में दस्तावेजों की अंतर्वस्तु का कोई भी द्वितीयिक साक्ष्य ग्राह्य है ।

अवस्था (ख) में वह लिखित स्वीकृति ग्राह्य है ।

अवस्था (ङ) या (च) में दस्तावेज की प्रमाणित प्रति ग्राह्य है, किंतु अन्य किसी प्रकार का द्वितीयिक साक्ष्य ग्राह्य नहीं है ।

अवस्था (छ) में दस्तावेजों के साधारण परिणाम का साक्ष्य ऐसे किसी व्यक्ति द्वारा दिया जा सकेगा जिसने उनकी परीक्षा की है और जो ऐसी दस्तावेजों की परीक्षा करने में कुशल है ।"

17. द्वितीयिक साक्ष्य पेश करने के लिए पूर्ववर्ती शर्तें यह हैं कि ऐसे मूल दस्तावेजों को, दस्तावेजों का अवलंब लेने वाले पक्षकार द्वारा, सर्वोत्तम प्रयास के बावजूद प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है और ऐसे दस्तावेज जो पक्षकारों के नियंत्रण से परे हैं, उन्हें प्रस्तुत करने में असमर्थ हैं । पक्षकार, जो द्वितीयिक साक्ष्य पेश करना चाहता है, उसे प्राथमिक साक्ष्य प्रस्तुत न करने की बात सिद्ध करनी होगी । जब तक यह सिद्ध नहीं किया जाता है कि मूल दस्तावेज खो गए हैं या नष्ट हो गए हैं या उस पक्षकार द्वारा जानबूझकर विधारित किए जा रहे हैं जिसके संबंध में वह दस्तावेज प्रयुक्त किया जाना ईप्सित है, तब तक उस दस्तावेज की बाबत द्वितीयिक साक्ष्य स्वीकार नहीं किया जा सकता ।

18. उच्च न्यायालय ने आक्षेपित आदेश में निम्नलिखित उल्लेख किया है :–

"9. लिखित कथन में प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/बी के बारे में कोई प्रकथन नहीं है । लिखित कथन तारीख 19 फरवरी, 2007 को फाइल किया गया था । डी. डब्ल्यू. 2/बी वास्तव में केवल एक फोटो प्रति है । वादी वर्ष 1984 में उनके पक्ष में निष्पादित की गई एक रजिस्ट्रीकृत विल के आधार पर संपत्ति का दावा कर रही है । प्रतिवादी के लिए यह साबित करना आवश्यक है कि तारीख 24 अगस्त, 1982 का दस्तावेज किस रीति में निष्पादित किया गया था । प्रतिवादी ने ए. डब्ल्यू. 1 के रूप में उपसंजात होते हुए अपनी प्रतिपरीक्षा में यह स्वीकार किया कि उसके शपथपत्र प्रदर्श ए. डब्ल्यू. 1/ए के

सिवाय उसने किसी दस्तावेज में यह उल्लेख नहीं किया है कि न्यायमूर्ति स्वर्गीय श्री टेक चंद द्वारा दावा-त्याग पत्र उसकी मौजूदगी में निष्पादित किया गया था । प्रति. सा. 2 के कथन से यह साबित नहीं होता है कि प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/ए कभी विद्यमान था । प्रति. सा. 2 श्री गुरचरन सिंह ने अपनी प्रतिपरीक्षा में स्पष्ट रूप से यह स्वीकार किया कि वह प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/बी का मूल नहीं लाया था । उसने यह भी स्वीकार किया कि प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/बी पर पी. सी. ढांडा के हस्ताक्षर पढ़े जाने योग्य नहीं थे । उसने स्वयं यह स्वीकार किया कि हस्ताक्षर दृश्यमान नहीं थे । विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65 के अधीन आवेदन को मंजूर करते हुए मौखिक तथा दस्तावेजी साक्ष्य, विशिष्ट रूप से प्रति. सा. 2 गुरचरन सिंह और प्रति. सा. 3 दीपक नारंग के कथनों का, विपरीत अर्थ लगाया है । आवेदक भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65 के उपबंधों का पालन करने में पूरी तरह से असफल रहा है । विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकालने में गलती की है कि आवेदक ने प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/बी प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त कदम उठाए हैं ।"

19. **जे. यशोदा** बनाम **श्रीमती के. शोभा रानी**[1] और **एच. सिद्दीकी (मृत) विधिक प्रतिनिधियों की मार्फत** बनाम **ए. रामलिंगम**[2] वाले मामलों में इस न्यायालय द्वारा विनिश्चित विनिश्चयाधारों का अनुसरण करते हुए उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि प्रतिवादी मूल दस्तावेजों के अस्तित्व और निष्पादन को साबित करने में असफल रहा है और यह साबित करने में भी असफल रहा है कि उसने कभी प्राधिकारियों को तारीख 24 अगस्त, 1982 के दावा-त्याग पत्र की मूल प्रति सौंपी थी । इसलिए उच्च न्यायालय का यह मत है कि द्वितीयिक साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए कोई मामला नहीं बनता है ।

20. साक्षी, प्रति. सा. 2, जो रक्षा संपदा अधिकारी, अंबाला के कार्यालय में उच्च श्रेणी लिपिक के रूप में कार्यरत है, ने मूल जीएलआर रजिस्टर प्रस्तुत किया । उसने दावा-त्याग पत्र की फोटोप्रति सहित कागजातों के चार पन्ने प्रस्तुत किए । उसने यह कथन किया कि मूल दस्तावेज रक्षा संपदा अधिकारी की अभिरक्षा में रहते हैं । प्रतिपरीक्षा में दिए

---

[1] ए. आई. आर. 2007 एस. सी. 1721.

[2] ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 1492.

गए उसके अभिसाक्ष्य को इसमें नीचे उद्धृत किया जाता है :–

"......... वादी सं. 2 की ओर से अधिवक्ता श्री एम. एस. चंदेल द्वारा ।

मैं अभिलेख के साथ पूरी फाइल नहीं लाया हूं । मैं फाइल से दस्तावेज लेने के पश्चात् केवल वही दस्तावेज लेकर आया हूं, जो आहूत किए गए थे । जीएलआर, प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/ए के अनुसार, आज की तारीख को इसमें राकेश महिन्द्रा का नाम नहीं है । तारीख 29 अगस्त, 2011 के आदेश द्वारा उसका नाम हटा दिया गया था । मैं प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/बी की मूल प्रति नहीं लाया हूं । यह सही है कि प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/डी पर श्री पी. सी. ढांडा के हस्ताक्षर नहीं हैं । स्वेच्छा से कहा – ये पढ़े जाने योग्य नहीं हैं । प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/सी पर हस्ताक्षर हैं किंतु ये पढ़े जाने योग्य नहीं हैं । उक्त दस्तावेज पर प्रमाणन अधिकारी के हस्ताक्षर पढ़े जाने योग्य नहीं हैं क्योंकि दस्तावेज भीग गया था । मैं नहीं कह सकता कि इन दस्तावेजों पर किसके हस्ताक्षर हैं । यह प्रतीत होता है कि प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/ई पर शपथकर्ता के स्थान पर किए गए हस्ताक्षर भीग जाने के कारण अपठनीय हो गए हैं । प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/एफ पर भी धूंधले हस्ताक्षर हैं और अंतिम पृष्ठ पर केवल टेक चंद ही पढ़ा जा सकता है । यह कहना सही नहीं है कि अंतिम पृष्ठ पर प्रमाणन अधिकारी के हस्ताक्षर नहीं हैं । स्वेच्छा से कहा – ये धूंधले हैं, किंतु पढ़े जाने योग्य नहीं हैं । अंतिम कागजात पर लगी मुहर भी पढ़े जाने योग्य नहीं है । प्रथम और द्वितीय पृष्ठ पर कोई मुहर नहीं लगी है । हमारे लेखे में, कोई कौटुम्बिक व्यवस्थापन नहीं है, अपितु कौटुम्बिक व्यवस्थापन की केवल अभिस्वीकृति है । मैं नहीं जानता कि राकेश महिन्द्रा के कितने भाई हैं । यह सही है कि प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/एच की मूल प्रति पर श्री अभय कुमार के हस्ताक्षर नहीं हैं । मैं नहीं जानता कि श्री अभय कुमार और राकेश महिन्द्रा सगे भाई हैं या नहीं । ऊपर वर्णित दस्तावेज न तो मेरी मौजूदगी में निष्पादित किए गए थे और न ही बनाए गए थे । यह कहना असत्य है कि ऊपर वर्णित दस्तावेज जाली हैं । यह कहना असत्य है कि इसी कारण से मैं पूरी फाइल लेकर नहीं आया हूं ।"

21. **राय बैजनाथ (मृत) केदारनाथ गोयनका की मार्फत** बनाम

महाराजा सर पवनेश्वर प्रसाद सिंह[1] वाले मामले में इसी प्रकार का प्रश्न प्रथम साक्ष्य गुम हो जाने की दशा में द्वितीयिक साक्ष्य की ग्राह्यता के बारे में विचार के लिए आया था । लार्ड फिलीमोर ने निर्णय में यह मत व्यक्त किया :–

> "निस्संदेह, इस बात की बहुत कम संभावना है कि ऐसा विलेख गुम हो गया होगा, किंतु सामान्य दशाओं में, यदि साक्षी जिसकी अभिरक्षा में विलेख होना चाहिए, इसके गुम होने के बारे अभिसाक्ष्य देता है, तो जब तक उसके अभिसाक्ष्य के असत्य होने के लिए कोई हेतु इंगित न होता हो, उसके साक्ष्य को विलेख का द्वितीयिक साक्ष्य होने के लिए पर्याप्त समझा जाएगा ।"

22. यह सुस्थिर है कि यदि कोई पक्षकार द्वितीयिक साक्ष्य प्रस्तुत करना चाहता है, तो न्यायालय उसके पास प्रस्तुत किए गए दस्तावेज के साक्ष्यिक महत्व या उनकी अंतर्वस्तुओं की परीक्षा करने और द्वितीयिक साक्ष्य में प्रस्तुत दस्तावेज की ग्राह्यता के प्रश्न का विनिश्चय करने के लिए आबद्ध है । इसके साथ-साथ, जहां मूल दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किया जा सकता हो, वहां पक्षकार को द्वितीयिक साक्ष्य देने के अधिकार को सिद्ध करने के लिए तथ्यात्मक आधार निर्धारित करना होगा । यह भी समान रूप से सुस्थिर है कि न तो कोई दस्तावेज साक्ष्य में ग्रहण करने मात्र से इसके सबूत की कोटि में आता है और न ही किसी दस्तावेज का प्रदर्श बनाने मात्र से उसके सबूत से अभिमुक्त हो जाता है, जो कि अन्यथा विधि के अनुसार साबित किया जाना अपेक्षित है ।

23. **एम. चन्द्रा** बनाम **एम. थंगामुथु**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 की अपेक्षा पर विचार किया और निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया :–

> "47. हम उच्च न्यायालय के तर्काधार से सहमत नहीं हैं । यह सही है कि कोई पक्षकार, जो किसी दस्तावेज की अंतर्वस्तुओं का अवलंब लेना चाहता है, उसे अंतर्वस्तुओं का प्राथमिक साक्ष्य प्रस्तुत करना होगा, और केवल आपवादिक दशाओं में द्वितीयिक साक्ष्य ग्राह्य होगा । तथापि, यदि द्वितीयिक साक्ष्य ग्राह्य है, तो इसे किसी रूप में, चाहे प्रति प्रस्तुत करके, प्रति की अनुलिपि प्रस्तुत करके, अंतर्वस्तुओं

[1] ए. आई. आर. 1922 प्रिवी कौंसिल 54.
[2] (2010) 9 एस. सी. सी. 712.

के मौखिक साक्ष्य या किसी अन्य रूप में, जिसमें यह उपलब्ध हो, प्रस्तुत किया जा सकेगा । द्वितीयिक साक्ष्य इस आधारिक साक्ष्य से प्रमाणित किया जाना आवश्यक है कि अभिकथित प्रति वास्तव में मूल की शुद्ध प्रति है । इस बात पर जोर देना चाहिए कि प्राथमिक साक्ष्य की अपेक्षा करने वाले नियम के अपवाद उस दशा में राहत देने के लिए बनाए गए हैं जहां कोई पक्षकार असलियत में उसके किसी दोष के बिना मूल प्रति को प्रस्तुत करने में असमर्थ है ।"

24. मामले के संपूर्ण तथ्यों और द्वितीयिक साक्ष्य के ग्रहण करने के प्रयोजन के लिए अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् हमारा यह मत है कि द्वितीयिक साक्ष्य देने के प्रयोजन के लिए सभी प्रयास किए गए हैं । विचारण न्यायालय ने यह उल्लेख किया है कि प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/बी रक्षा संपदा अधिकारी, अंबाला की अभिरक्षा से प्रस्तुत किया गया था और साक्षी जो अभिलेख लाया था, उसकी साक्षी के रूप में परीक्षा की गई थी । मामले को इस दृष्टि से देखते हुए, साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 के उपबंधों का पालन किया गया है । केवल यह बात कि कुछ दस्तावेजों में हस्ताक्षर पढ़े जाने योग्य और दृष्टिगोचर नहीं हैं, द्वितीयिक साक्ष्य को नामंजूर करने का आधार नहीं हो सकता है । हमारे मत में, विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी द्वारा द्वितीयिक साक्ष्य प्रस्तुत करने के प्रयोजन के लिए किए गए प्रयासों का ठीक ही मूल्यांकन किया है ।

25. पूर्वोक्त कारणों से, उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश को विधि की दृष्टि से कायम नहीं रखा जा सकता है । तद्नुसार, यह अपील मंजूर की जाती है और उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश अपास्त किया जाता है ।

26. तथापि, हम यह स्पष्ट करते हैं कि द्वितीयिक साक्ष्य ग्रहण कर लेना ही इसके सबूत की कोटि में नहीं आता है । दस्तावेज की असलियत, सत्यता और अस्तित्व को विचारण के दौरान सिद्ध किया जाना होगा और विचारण न्यायालय उन द्वितीयिक साक्ष्यों का अवलंब लेने से पूर्व कारण अभिलिखित करेगा ।

अपील मंजूर की गई ।

जस.

[2016] 1 उम. नि. प. 78

सत्य पाल सिंह

बनाम

मध्य प्रदेश राज्य और अन्य

6 अक्तूबर, 2015

न्यायमूर्ति टी. एस. ठाकुर और न्यायमूर्ति वी. गोपाल गौड़ा

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 2(यक), धारा 372 और धारा 378(3) – पीड़ित का अपील फाइल करने का अधिकार – विधिक वारिस और अन्य सहित पीड़ित को धारा 378 की उपधारा (3) के अधीन यथापेक्षित उच्च न्यायालय की इजाजत अभिप्राप्त करने के पश्चात् ही अभियुक्त को दोषमुक्त करने वाले या कम अपराध से दोषसिद्धि करने वाले या अपर्याप्त प्रतिकर अधिरोपित करने वाले आदेश के विरुद्ध अपील फाइल करने का कानूनी अधिकार है ।

इसमें अपीलार्थी ने मध्य प्रदेश के भिंड के पुलिस अपर अधीक्षक को अपनी पुत्री रंजना की मृत्यु के बारे में तारीख 19 जुलाई, 2010 को लिखित शिकायत की थी । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट 27 जुलाई, 2010 को दर्ज की गई । विचारण न्यायालय ने अभिलेख के साक्ष्य की परीक्षा करने के पश्चात् सभी अभियुक्तों को उनके विरुद्ध भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 498क और 304ख तथा दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 की धारा 4 के अधीन दंडनीय अपराधों तथा अनुकल्पतः भा.द.सं. की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए उनके विरुद्ध लगाए गए आरोपों से दोषमुक्त करते हुए तारीख 13 जून, 2013 को निर्णय और आदेश पारित किया । विचारण न्यायालय के विनिश्चय से व्यथित महसूस करते हुए अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी सं. 2 से 6 के दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध उच्च न्यायालय में आवेदन किया । उच्च न्यायालय ने तारीख 4 मार्च, 2014 के अपने निर्णय और आदेश द्वारा विचारण न्यायालय के सभी अभियुक्त व्यक्तियों के दोषमुक्ति के विनिश्चय को कायम रखा । आक्षेपित निर्णय और आदेश से व्यथित महसूस करते हुए मृतका का विधिक वारिस होते हुए अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 372 के परंतुक के अधीन अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने यह परीक्षा किए बिना कि क्या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378 की उपधारा (3)

के अधीन यथा उपबंधित अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई अपील को फाइल करने की इजाजत दी जा सकती है या नहीं, एक गूढ़ आदेश पारित कर अपील का यंत्रवत् निपटान किया । अपीलार्थी द्वारा इसकी शुद्धता को इस अपील में अन्य बातों के साथ विभिन्न आधारों को उठाते हुए प्रश्नगत किया है । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 372 के परंतुक को इसके मुख्य अधिनियमिति अर्थात् स्वयं धारा 372 और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378 की उपधारा (3) के साथ पढ़ा जाए । अन्यथा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 372 का अधिस्थायी उपबंध निरर्थक हो जाएगा क्योंकि इसमें स्पष्टतः उल्लेख है कि किसी दंड न्यायालय के किसी निर्णय या आदेश से दंड प्रक्रिया संहिता द्वारा यथा उपबंधित के सिवाय कोई अपील नहीं की जाएगी । उच्चतम न्यायालय का मत है कि उच्च न्यायालय को अपील पर दोषमुक्ति के निर्णय और आदेश की शुद्धता को प्रश्नगत करने का अधिकार धारा 372 के परंतुक के अधीन दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 2(यक) के अधीन यथा परिभाषित विधिक वारिस और अन्य सहित पीड़ित को प्रदत्त है । किंतु यह उच्च न्यायालय की इजाजत अभिप्राप्त करने के पश्चात् ही है जैसा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378 की उपधारा (3) के अधीन यथापेक्षित है । मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय आक्षेपित निर्णय और आदेश पारित करते समय मामले के इस महत्वपूर्ण विधिक पहलू पर विचार करने में असफल रहा । अतः उच्च न्यायालय का आक्षेपित निर्णय और आदेश विधि की दृष्टि से संधार्य नहीं है और यह इस न्यायालय द्वारा अपास्त किए जाने योग्य है और मामले को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378 की उपधारा (3) के अधीन यथापेक्षित अपीलार्थी द्वारा अपील फाइल करने की इजाजत देने पर विचार करने के लिए उच्च न्यायालय को प्रतिप्रेषित किए जाने और इसके पश्चात् मामले में आगे कार्यवाही किए जाने की अपेक्षा है । (पैरा 12, 13, 14 और 15)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2015]	(2015) 221 डी. एल. टी. 1 : **रामफल** बनाम **राज्य और अन्य** ;	5
[1985]	[1985] 2 उम. नि. प. 142 = (1985) 1 एस. सी. सी. 591 : **एस. सुन्दरम पिल्लई** बनाम **बी. आर. पट्टाबीरमन** ;	12

[1976] [1976] 4 उम. नि. प. 1275 =
(1976) 1 एस. सी. सी. 128 :
द्वारका प्रसाद बनाम **द्वारका दास सर्राफ** । 11

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2015 की दांडिक अपील सं. 1315.

2013 की दांडिक अपील सं. 547 में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय की ग्वालियर न्यायपीठ के तारीख 4 मार्च, 2014 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री प्रशान्त शुक्ला, (सुश्री) अनुश्री मिश्रा, (सुश्री) रानी कुमारी और पशुपति नाथ राजदान

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री सी. डी. सिंह, (सुश्री) साक्षी कक्कर, संतोष नारायण सिंह, आर. एस. राठी, (सुश्री) कुसुम और डा. कैलाश चंद

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति वी. गोपाल गौड़ा ने दिया ।

न्या. गौड़ा – इजाजत दी गई ।

2. विशेष इजाजत द्वारा यह दांडिक अपील मध्य प्रदेश के ग्वालियर उच्च न्यायालय के द्वारा 2013 की दांडिक अपील सं. 547 में पारित तारीख 4 मार्च, 2014 के आक्षेपित निर्णय और आदेश के विरुद्ध की गई है जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने यहां सभी अभियुक्त अर्थात् प्रत्यर्थी सं. 2 से 6 को दोषमुक्त कर सेशन मामला सं. 293/2010 में मध्य प्रदेश के भिंड के सेशन न्यायालय (विचारण न्यायालय) के विनिश्चय को कायम रखा ।

3. इसमें अपीलार्थी ने मध्य प्रदेश के भिंड के पुलिस अपर अधीक्षक को अपनी पुत्री रंजना (जिसे इसमें इसके पश्चात् "मृतका" कहा गया है) की मृत्यु के बारे में तारीख 19 जुलाई, 2010 को लिखित शिकायत की थी । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट 27 जुलाई, 2010 को दर्ज की गई । विचारण न्यायालय ने अभिलेख के साक्ष्य की परीक्षा करने के पश्चात् सभी अभियुक्तों को उनके विरुद्ध भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में "भा.द.सं.") की धारा 498क और 304ख तथा दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 की धारा 4 के अधीन दंडनीय अपराधों तथा अनुकल्पतः भा.द.सं. की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए उनके विरुद्ध लगाए गए

आरोपों से दोषमुक्त करते हुए तारीख 13 जून, 2013 को निर्णय और आदेश पारित किया । विचारण न्यायालय के विनिश्चय से व्यथित महसूस करते हुए अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी सं. 2 से 6 के दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध उच्च न्यायालय में आवेदन किया । उच्च न्यायालय ने तारीख 4 मार्च, 2014 के अपने निर्णय और आदेश द्वारा विचारण न्यायालय के सभी अभियुक्त व्यक्तियों के दोषमुक्ति के विनिश्चय को कायम रखा । उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय और आदेश को चुनौती इस अपील में इसकी शुद्धता को प्रश्नगत करते हुए इस न्यायालय के समक्ष की गई है ।

4. आक्षेपित निर्णय और आदेश से व्यथित महसूस करते हुए मृतका का विधिक वारिस होते हुए अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में "दंड प्रक्रिया संहिता") की धारा 372 के परंतुक के अधीन अपील फाइल की । तथापि, उच्च न्यायालय ने यह परीक्षा किए बिना कि क्या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378 की उपधारा (3) के अधीन यथा उपबंधित अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई अपील को फाइल करने की इजाजत दी जा सकती है या नहीं, एक गूढ़ आदेश पारित कर अपील का यंत्रवत् निपटान किया । इसकी शुद्धता को अपीलार्थी द्वारा इस अपील में अन्य बातों के साथ विभिन्न आधारों को उठाते हुए प्रश्नगत किया है ।

5. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री प्रशांत शुक्ला ने **रामफल** बनाम **राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का ठोस अवलंब लिया जिसमें पूर्ण न्यायपीठ ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 372 के साथ पठित धारा 2(बक) के परंतुक का निर्वचन करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया कि पीड़ित के पिता को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 2(बक) के अधीन पीड़ित की परिभाषा के अधीन प्राइवेट पक्षकार होकर अपील फाइल करने का अधिकार है । उनके द्वारा यह दलील दी गई कि इस मामले में अपीलार्थी को मृतका का पिता होते हुए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378 की उपधारा (3) के अधीन यथापेक्षित उच्च न्यायालय की इजाजत की ईप्सा किए बिना धारा 372 के परंतुक के अधीन दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल करने का अधिकार है । इस प्रकार अपीलार्थी द्वारा फाइल अपील दंड प्रक्रिया संहिता के पूर्वोक्त उपबंधों के अधीन मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के समक्ष संधार्य थी । उन्होंने आगे यह आग्रह किया कि निःसंदेह

---

[1] (2015) 221 डी. एल. टी. 1.

मामले के उक्त विधिक पहलू पर उच्च न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया गया और अपील का विनिश्चय यह परीक्षा किए बिना कि क्या अपीलार्थी द्वारा अपील फाइल करने की इजाजत दंड प्रक्रिया संहिता के उपरोक्त उपबंधों के अधीन मंजूर किए जाने की अपेक्षा है या नहीं, गुणागुण पर विचार किया गया था ।

6. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने पूर्वोक्त विनिर्दिष्ट मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय की ओर इस न्यायालय का ध्यान आकृष्ट किया गया जिसमें दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 2(बक) और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 372 के परंतुक के अधीन यथा परिभाषित पीड़ित की परिभाषा को विस्तार से स्पष्ट किया गया और उन्हें उनके विधायी इतिहास के आलोक में परीक्षा की । उन्होंने दंड प्रक्रिया संहिता के उक्त विधिक उपबंध के संबंध में 1996 की 154वीं विधि आयोग रिपोर्ट का भी उल्लेख किया और संक्षिप्ततः यह अभिनिर्धारित किया कि जहां पीड़ित अपील फाइल करने में असमर्थ है वहां अपील पीड़ित के नातेदारों, पोष्य बालकों, संरक्षकों, प्रेमी-प्रेमिकाओं या सहवासी भागीदारों, आदि जैसे व्यक्तियों द्वारा अपील फाइल की जा सकती है जो उसकी ओर से ऐसा करने की स्थिति में हैं । उन्होंने आग्रह किया कि इस मामले में मृतका का पिता होते हुए अपीलार्थी के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378 की उपधारा (3) के अधीन यथा उपबंधित उच्च न्यायालय की इजाजत की ईप्सा करने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 372 के परंतुक को ध्यान में रखते हुए सभी अभियुक्त व्यक्तियों की दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपील फाइल करने का उसका कानूनी अधिकार है ।

7. उसके द्वारा आगे यह आग्रह किया गया कि उच्च न्यायालय को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378 की उपधारा (3) के अधीन यथा अपेक्षित अपीलार्थी द्वारा अपील फाइल करने के लिए अपीलार्थी को इजाजत दिया जाना चाहिए और उसके पश्चात् अपील की परीक्षा और निपटान गुण-दोष के आधार पर करना चाहिए था ।

8. उन्होंने आगे यह दृढ़तापूर्वक दलील दी कि उच्च न्यायालय के समक्ष अपील अपीलार्थी द्वारा विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति के आदेश को चुनौती देते हुए फाइल की गई थी किंतु उच्च न्यायालय ने अभिलेख के साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन किए बिना यंत्रवत् विचारण न्यायालय के विनिश्चय से सहमति व्यक्त की । उन्होंने आगे यह निवेदन किया कि

उच्च न्यायालय का विनिश्चय विधि की दृष्टि से त्रुटिपूर्ण है क्योंकि उच्च न्यायालय से अपील न्यायालय होते हुए अपील के ज्ञापन में उठाई गई विधिक दलीलों के प्रतिनिर्देश से अपीलार्थी द्वारा फाइल अपील में अपनी अपीली अधिकारिता का प्रयोग करते हुए अभिलेख के साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने की अपेक्षा थी किंतु वह ऐसा करने में असफल रहा । उच्च न्यायालय ने बहुत सरसरी और नैमित्तिक ढंग से यह अभिनिर्धारित किया कि अभिलेख के साक्ष्य का परिशीलन करने के पश्चात् उसे विचारण न्यायालय के विनिश्चय में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं मिला क्योंकि अभियोजन युक्तियुक्त संदेह से परे यह साबित करने में असफल रहा कि सभी अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध लगाए गए आरोप साबित होते हैं और उसने अपील को एक गूढ़ आदेश पारित कर खारिज कर दिया जो उच्च न्यायालय द्वारा समुचित रूप से अपीली अधिकारिता का प्रयोग न करने के बराबर है । इस प्रकार उच्च न्यायालय का आक्षेपित निर्णय और आदेश विधि की दृष्टि से दोषपूर्ण है अतः इसे इस न्यायालय द्वारा अपास्त किए जाने की अपेक्षा है । उन्होंने आगे इस न्यायालय से अभिलेख के साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने और दोनों पक्षकारों की सुनवाई करने के पश्चात् मामले के गुण-दोष पर समुचित आदेश पारित करने के लिए उच्च न्यायालय को मामला प्रतिप्रेषित करने का अनुरोध किया है ।

9. हमने दंड प्रक्रिया संहिता के पूर्वोक्त उपबंधों और पूर्वोक्त निर्दिष्ट दिल्ली उच्च न्यायालय के पूर्ण न्यायपीठ के विनिश्चय, जिसका अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा ठोस अवलंब लिया गया है, की सावधानीपूर्वक परीक्षा की । इसमें कोई संदेह नहीं है कि अपीलार्थी मृतका का पिता होने के कारण दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 372 के परंतुक के अधीन उच्च न्यायालय के समक्ष अपील करने का अधिकार रखता है क्योंकि वह सेशन मामला संख्या 293/2010 वाले मामले में प्रत्यर्थी संख्या 2 से 6 के पक्ष में विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति के निर्णय और आदेश की शुद्धता के प्रश्न पर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 2(यक) के अधीन यथा परिभाषित पीड़ित की परिभाषा के भीतर आता है ।

10. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 372 के परंतुक को 2009 के अधिनियम संख्या 5 द्वारा संशोधित किया गया । उक्त परंतुक दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 2(यक) के अधीन यथा परिभाषित पीड़ित को विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध अभियुक्त को दोषमुक्त करते हुए या उसे कम अपराध से दोषसिद्ध करते हुए या अपर्याप्त प्रतिकर अधिरोपित

करते हुए पारित आदेश के विरुद्ध अपील करने का कानूनी अधिकार प्रदान करता है । इस बाबत पूर्वोक्त निर्दिष्ट मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ ने 21 दिसंबर, 2009 से 2009 के अधिनियम संख्या 5 द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 372 के परंतुक के अंतःस्थापन के विधायी इतिहास पर विस्तार से विचार किया । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 372 का सुसंगत परंतुक इस प्रकार है :–

> "372. दंड न्यायालय के किसी निर्णय या आदेश से कोई अपील इस संहिता द्वारा या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा जैसा उपबंधित हो उसके सिवाय न होगी :
>
> परंतु पीड़ित को न्यायालय द्वारा पारित अभियुक्त को दोषमुक्त करने वाले या कम अपराध के लिए दोषसिद्ध करने वाले या अपर्याप्त प्रतिकर अधिरोपित करने वाले आदेश के विरुद्ध अपील करने का अधिकार होगा और ऐसी अपील उस न्यायालय में होगी जिसमें ऐसे न्यायालय की दोषसिद्धि के आदेश के विरुद्ध मामूली तौर पर अपील होती है ।"

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 372 के उपबंध का उक्त संशोधन 154वीं विधि आयोग रिपोर्ट द्वारा तैयार किया गया था । उक्त विधि आयोग रिपोर्ट में दंड प्रक्रिया संहिता का व्यापक पुनर्विलोकन किया गया और इसकी सिफारिशों को विशेषकर गिरफ्तारी, अभिरक्षा और प्रतिप्रेषण, समन और वारंट मामलों में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया, अपराधों का शमन और महिलाओं की बाबत विशेष संरक्षण तथा विकृत चित्त व्यक्तियों की जांच और विचारण से संबंधित उपबंधों के संबंध में दंड प्रक्रिया संहिता को संशोधित करने में बहुत उचित पाया गया । इसके अतिरिक्त विधि आयोग ने अपनी रिपोर्ट में मामले के सुसंगत पहलू अर्थात् यह कि पीड़ित अपराध से सर्वाधिक विपदग्रस्त है और उनका न्यायालय की कार्यवाहियों में अधिक भूमिका नहीं होती, का उल्लेख किया । उन्हें कतिपय अधिकार और प्रतिकर दिए जाने की आवश्यकता है जिससे कि आपराधिक न्याय प्रणाली का कोई विकृति न हो । विधि आयोग की उक्त रिपोर्ट में अपराध विज्ञानी, दंड विज्ञानी और आपराधिक न्याय प्रणाली के सुधारकों के मतों का विस्तार से उल्लेख किया है और अपराध पीड़ित शास्त्र, उत्पीड़न नियंत्रण और अपराध के पीड़ितों के संरक्षण तथा उनके पक्ष में दिए जाने वाले प्रतिकर के मुद्दों पर अधिक ध्यान दिया । अतः संसद् ने विधि आयोग की पूर्वोक्त रिपोर्ट जो पीड़ित के बारे में है, के आधार पर दंड प्रक्रिया के कतिपय

उपबंधों को संशोधित किया और उस संशोधन में दंड प्रक्रिया की धारा 372 के परंतुक को जोड़ा गया जो पीड़ित को उच्च न्यायालय के समक्ष दोषमुक्ति के आदेश या अभियुक्त को कम अपराध के लिए दोषसिद्ध करने वाले आदेश या अपर्याप्त प्रतिकर अधिरोपित करने वाले आदेश के विरुद्ध अपील करने का कानूनी अधिकार प्रदान करता है ।

11. दिल्ली उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 2(यक) और 372 के परंतुक के सुसंगत उपबंधों की उनके विधायी इतिहास के आलोक में परीक्षा करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया कि धारा 372 के परंतुक के आधार पर पीड़ित या पीड़ित के नातेदारों को प्रदत्त अपील करने का अधिकार एक स्वतंत्र कानूनी अधिकार है अतः, यह अभिनिर्धारित किया गया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 2(यक) के अधीन परिभाषा के निबंधनों में पीड़ित को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 372 के परंतुक के अधीन अपील फाइल करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378 की उपधारा (3) के अधीन यथापेक्षित उच्च न्यायालय की इजाजत लेने की कोई आवश्यकता नहीं है । उच्च न्यायालय का उक्त मत इस कारण से विधितः सही नहीं है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 372 का अधिष्ठायी उपबंध स्पष्टतः यह उपबंध करता है कि दंड प्रक्रिया संहिता द्वारा यथा उपबंधित के सिवाय किसी दंड न्यायालय के किसी निर्णय और आदेश से कोई अपील नहीं की जाएगी । इसके अतिरिक्त दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378 की उपधारा (3) में यह उपबंध है कि दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध उच्च न्यायालय ने अपील करने के लिए उसकी इजाजत अभिप्राप्त करना आवश्यक है । हमें यह पता लगाने के लिए कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 372 के परंतुक का क्या प्रभाव है कानूनी निर्वचन के नियमों को निर्दिष्ट करना होगा, यह सुस्थापित है कि कानून के परंतुक का अधिनियमनकारी उपबंध के विषय-वस्तु तक सीमित निर्वचन करना चाहिए । **द्वारका प्रसाद** बनाम **द्वारका दास सर्राफ**[1] वाले मामले में चार न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा दिए गए इस न्यायालय के विनिश्चय का अवलंब लिया गया जिसका सुसंगत पैरा 18 इस प्रकार है :–

> "18. परंतुक अधिनियमन करने वाले खंड की विषय-वस्तु तक सीमित रहना चाहिए । यह निर्वचन का एक स्थिर नियम है कि परंतुक का अध्ययन प्रथमदृष्ट्या उस मुख्य विषय के संबंध में किया

[1] [1976] 4 उम. नि. प. 1275 = (1976) 1 एस. सी. सी. 128.

जाना चाहिए जिसका कि वह परंतुक है और उसी रूप में उस पर विचार करना चाहिए । वह कोई पृथक् या स्वतंत्र अधिनियमिति नहीं होती है, 'शब्द मुख्य अधिनियमनकारी शब्दों पर निर्भर करते हैं जिसके साथ के परंतुक के रूप में जोड़े गए हों । उनका अर्थ उनके संदर्भ से विच्छिन्न रूप से नहीं किया जा सकता है' थामसन **बनाम** डिबदिन (1912 ए. सी. 533) । यदि निर्वचन का नियम यह हो कि प्रथमदृष्ट्या किसी परंतुक को उसके प्रवर्तन के संबंध में अधिनियमन करने वाले खंड की विषय-वस्तु तक सीमित रखा जाना चाहिए तो जो दृष्टिकोण हमने अपनाया है वह सही है । ऐसे अधिनियमन करने वाले खंड में विस्तार करना जिसमें कि परंतुक जोड़ा गया हो अर्थान्वयन के मूल नियम के विरुद्ध होगा कि परंतुक पर विचार उस मुख्य विषय के संबंध में ही किया जाना चाहिए जिसके साथ वह परंतुक के रूप में संलग्न है । साधारणतौर पर परंतुक तो केवल परंतुक ही होता हालांकि स्वर्णिम नियम यह है कि समस्त धारा का पठन, परंतुक को अंतर्विष्ट करते हुए किया जाए, और वह ऐसी रीति में किया जाना चाहिए कि वे परस्पर एक दूसरे पर प्रकाश डालें और परिणामस्वरूप सामंजस्यपूर्ण अर्थान्वयन किया जाए।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

12. इसके अतिरिक्त **एस. सुन्दरम पिल्लई** बनाम **बी. आर. पट्टाबीरमन**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने 2:1 के बहुमत द्वारा धारा के अधिष्ठायी उपबंध के परंतुक की व्याप्ति और इसके निर्वचन के नियमों की सुस्पष्ट परीक्षा की । सुसंगत पैराग्राफों को यहां दोहराया जा रहा है :–

"30. सारथी ने 'इंटरप्रटेशन आफ स्टेट्यूट्स' में पृष्ठ 294-295 पर परंतुक के संबंध में निम्नलिखित सिद्धांतों को एकत्रित किया है –

(क) जब कोई व्यक्ति किसी धारा में कोई परंतुक पाता है, तो नैसर्गिक उपधारणा यह है कि परंतुक के बिना धारा का अधिनियमन-भाग परंतुक की विषय-वस्तु को सम्मिलित कर लेता है ।

(ख) परंतुक का अर्थान्वयन उस खंड के पूर्व भागों के

---

[1] [1985] 2 उम. नि. प. 142 = (1985) 1 एस. सी. सी. 591.

निर्देश में किया जाना चाहिए, जिसके साथ यह संलग्न है ।

(ग) जहां कि परंतुक प्रत्यक्षतः धारा के विरुद्ध है, तो परंतुक रहेगा और धारा का निरसन माना जाना चाहिए क्योंकि परंतुक बनाने वाले के बाद के आशय को बतलाता है ।

(घ) जहां कि धारा संदेहयुक्त है, परंतुक को इसका निर्वचन करने के लिए मार्गदर्शन के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है किंतु जब यह स्पष्ट हो तो परंतुक उन शब्दों के अस्तित्व को विवक्षित नहीं करता जिनका कि धारा में कोई पता नहीं है ।

(ङ) परंतुक मुख्य धारा का अधीनस्थ है ।

(च) परंतुक बाध्यकर कारणों के सिवाय अधिनियमिति को विस्तारित नहीं करता ।

(छ) कभी-कभी अनावश्यक परंतुक काफी सतर्कता के साथ अंतःस्थापित कर दिया जाता है ।

(ज) परंतुक का किया गया अर्थान्वयन, जो धारा के शब्दों में सामान्य संगति लाता है, अभिभावी होना चाहिए ।

(झ) जबकि कोई परंतुक अधिनियमन करने वाले भाग के विरुद्ध हो, तो परंतुक पश्चात्वर्ती अधिनियम के आत्यंतिक शब्दों पर अभिभावी नहीं होगा जो पूर्व अधिनियम के अनुपूरक के रूप में पढ़े जाने के लिए निर्दिष्ट हों ।

(ञ) परंतुक में कभी-कभी मुख्य उपबंध अंतर्विष्ट होता है ।"

*   *   *   *   *

32. ईश्वरलाल ठाकुरलाल अलमौला **बनाम** मोतीभाई नागजीभाई, (1966) ए. आई. आर. 459 = 1966 एस. सी. आर. (1) 367 वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि परंतुक का मुख्य उद्देश्य मात्र मुख्य अधिनियमिति को विशेषित करना होता है । मद्रास एंड सदर्न मराठा रेलवे कंपनी लिमिटेड **बनाम** बेजवाड़ा म्युनिसिपैलिटी के मामले में लार्ड मैकमिल्लन ने इस प्रकार मत व्यक्त किया –

'परंतुक का सही कार्य ऐसे मामले का अपवाद करना और उस पर चर्चा करना है जो अन्यथा मुख्य अधिनियमिति की

सामान्य भाषा के भीतर आता हो और इसका प्रभाव उस मामले तक परिरुद्ध है ।'

33. उपरोक्त मामला इस न्यायालय द्वारा आयकर आयुक्त **बनाम** मर्कैण्टाइल बैंक लिमिटेड, (1945) 47 बाम्बे एल. आर. 587 वाले मामले में अनुमोदित किया गया था जहां न्यायाधिपति कपूर ने यह अभिनिर्धारित किया कि परंतुक का सही कार्य मात्र मुख्य अधिनियमिति की सामान्यता को अपवाद का उपबंध करके और मुख्य अधिनियमिति से, जैसाकि वे थीं, एक भाग को लेकर, जो परंतुक के बिना मुख्य अधिनियमिति के भीतर आते, विशेषित करना है । शाह भोजराज कुंवरजी आयल मिल्स एंड गिन्निग फैक्टरी **बनाम** सुभाष चन्द्र योगराज सिन्हा (1959) ए. आई. आर. 713 वाले मामले में न्यायाधिपति हिदायतुल्ला ने, जैसेकि वे तब थे, बहुमत युक्ततः और संक्षिप्ततः परंतुक की समष्टि को इस प्रकार उपदर्शित किया –

'सामान्य नियम के रूप में परंतुक किसी अधिनियमिति को सृजित विशेषित करने या उस बात में अपवाद सृजित करने के लिए जो अधिनियमिति में जोड़ा जाता है और सामान्यतः परंतुक का निर्वचन इस प्रकार से नहीं किया जाता जैसाकि सामान्य नियम के बारे में कहा जाता है ।'

*   *   *   *   *

36. परंतुक का निर्वचन करते समय इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि यह सामान्य अधिनियमिति से विशेष मामलों को हटाने के लिए और उनका पृथक्तः उपबंध करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है ।

37. संक्षेप में, सामान्यतः किसी परंतुक का आशय अधिनियमित उपबंध को सीमित करना होता है जिससे कि ऐसी किसी बात को अपवादित किया जा सके जो अन्यथा इसके भीतर होती या कुछ हद तक अधिनियमित किए गए खंड को उपांतरित करना है । कभी-कभी कोई परंतुक मुख्य उपबंध में सन्निहित होता है और उसका अभिन्न अंग बन जाता है जिससे कि यह उसका प्रमुख उपबंध हो जाता है ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

इस प्रकार पूर्वोक्त निर्दिष्ट मामालों में इस न्यायालय द्वारा अधिकथित पूर्वोक्त विधिक स्थित को पढ़ने से, यह पर्याप्त स्पष्ट है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 372 के परंतुक को इसके मुख्य अधिनियमिति अर्थात् स्वयं धारा 372 और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378 की उपधारा (3) के साथ पढ़ा जाए । अन्यथा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 372 का अधिस्थायी उपबंध निरर्थक हो जाएगा क्योंकि इसमें स्पष्टतः उल्लेख है कि किसी दंड न्यायालय के किसी निर्णय या आदेश से दंड प्रक्रिया संहिता द्वारा यथा उपबंधित के सिवाय कोई अपील नहीं की जाएगी ।

13. इस प्रकार, विधिक मुद्दे का निष्कर्ष निकालते हुए :–

> "क्या इसमें मृतका का पिता होते हुए अपीलार्थी को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378 की उपधारा (3) के अधीन यथापेक्षित उच्च न्यायालय की इजाजत अभिप्राप्त किए बिना दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 372 के परंतुक के अधीन दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील करने का कानूनी अधिकार है । इस न्यायालय का मत है कि उच्च न्यायालय को अपील पर दोषमुक्ति के निर्णय और आदेश की शुद्वता को प्रश्नगत करने का अधिकार धारा 372 के परंतुक के अधीन दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 2(यक) के अधीन यथा परिभाषित विधिक वारिस और अन्य सहित पीड़ित को प्रदत्त है । किंतु यह उच्च न्यायालय की इजाजत अभिप्राप्त करने के पश्चात् ही है जैसा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378 की उपधारा (3) के अधीन यथापेक्षित है । मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय आक्षेप निर्णय और आदेश पारित करते समय मामले के इस महत्वपूर्ण विधिक पहलू पर विचार करने में असफल रहा ।"

14. साक्ष्य के पुनर्मूल्यांकन के संबंध में उच्च न्यायालय की ओर से असफलता के बारे में अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल की एक अन्य दलील पर विचार करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश के परिशीलन से यह स्पष्ट है कि विधिक दलीलों और अभिलेख के साक्ष्य पर विचार किए बिना उसने अपील पर बहुत सरसरी और नैमित्तिक ढंग से विचार किया । उच्च न्यायालय ने बहुत यंत्रवत् ढंग से यह कहा कि अभिलेख पर साक्ष्य के परिशीलन के पश्चात् उसे विचारण न्यायालय के विनिश्चय में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं मिला क्योंकि अभियोजन

युक्तियुक्त संदेह से परे अभियुक्त के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को साबित करने में असफल रहा और उसने एक गूढ़ आदेश पारित कर अपील को खारिज कर दिया । इस न्यायालय का यह मत है कि अपील न्यायालय होते हुए उच्च न्यायालय को अभियुक्त के विरुद्ध लगाए गए आरोपों की गंभीर प्रकृति को ध्यान में रखते हुए अपनी अपीली अधिकारिता का प्रयोग करना चाहिए । उच्च न्यायालय विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई अपील में उचित रूप से अपनी अपीली अधिकारिता का प्रयोग करने में असफल रहा ।

15. अतः उच्च न्यायालय का आक्षेपित निर्णय और आदेश विधि की दृष्टि से संधार्य नहीं है और यह इस न्यायालय द्वारा अपास्त किए जाने योग्य है और मामले को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378 की उपधारा (3) के अधीन यथापेक्षित अपीलार्थी द्वारा अपील फाइल करने की इजाजत देने पर विचार करने के लिए उच्च न्यायालय को प्रतिप्रेषित किए जाने और इसके पश्चात् मामले में आगे कार्यवाही किए जाने की अपेक्षा है ।

16. पूर्वोक्त कारणों से यह अपील उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय और आदेश को अपास्त करते हुए मंजूर की जाती है । मामला अपील फाइल करने के लिए इजाजत दिए जाने के बारे में अपीलार्थी की सुनवाई करने के लिए उच्च न्यायालय को प्रतिप्रेषित किया जाता है क्योंकि अपीलार्थी दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 2(यक) के अधीन यथा परिभाषित पीड़ित का विधिक वारिस है और यथा संभव शीघ्र इस आदेश में किए गए मताभिव्यक्तियों के आलोक में विधि के अनुसार अपील का निपटान किया जाए ।

अपील मंजूर की गई ।

पा.

येल्लापु उमा महेश्वरी और एक अन्य

बनाम

बुधा जगदीशवरराव और अन्य

8 अक्तूबर, 2015

न्यायमूर्ति रंजन गोगोई और न्यायमूर्ति एन. वी. रमण

रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 (1908 का 16) – धारा 17 और 49 – दस्तावेजों का अनिवार्य रजिस्ट्रीकरण और साक्ष्य में ग्राह्यता – स्थावर संपत्ति के विभाजन के संबंध में पूर्व कौटुम्बिक व्यवस्थापन – करार और ज्ञापन-विलेख का निष्पादन – दस्तावेजों के परिवर्णनों से संपत्ति में अधिकार और अंशों का त्यजन दर्शित होना – दस्तावेजों का रजिस्ट्रीकरण न कराया जाना – दस्तावेज का दिया गया नाम निश्चायक पहलू नहीं होता है अपितु संव्यवहार की प्रकृति और सार का अवधारण दस्तावेजों के निबंधनों के प्रतिनिर्देश करके किया जाना चाहिए और किसी दस्तावेज की ग्राह्यता संपूर्ण रूप से उस दस्तावेज में अंतर्विष्ट परिवर्णनों पर निर्भर करती है ।

रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 – धारा 17 और 49 – दस्तावेजों का अनिवार्य रजिस्ट्रीकरण और साक्ष्य में ग्राह्यता – स्थावर संपत्ति के विभाजन के संबंध में पूर्व कौटुम्बिक व्यवस्थापन – करार और ज्ञापन-विलेख का निष्पादन – विभाजन के लिए वाद फाइल किया जाना – दस्तावेजों की साक्ष्य में ग्राह्यता – जहां दस्तावेजों को संपूर्ण रूप से पढ़ने से यह स्पष्ट होता हो कि स्थावर संपत्ति की बाबत अधिकार का त्यजन ऐसे दस्तावेज के द्वारा किया गया है जो अनिवार्य रूप से रजिस्ट्रीकरणीय है, वहां दस्तावेज अरजिस्ट्रीकृत होने के कारण पक्षकारों के बीच हुए विभाजन के तथ्य को साबित करने के प्रयोजन के लिए साक्ष्य में ग्राह्य नहीं हैं ।

प्रथम प्रत्यर्थी/वादी ने अपीलार्थियों और अन्य के विरुद्ध ज्येष्ठ सिविल न्यायाधीश, अंकापाले के न्यायालय में वाद में अनुसूचित संपत्तियों के मद सं. 1 में एक चौथाई हिस्से और मद सं. 2 में आधे हिस्से का दावा करते हुए विभाजन के अनुतोष के लिए मूल वाद फाइल किया । प्रथम

प्रत्यर्थी/वादी का यह विनिर्दिष्ट पक्षकथन था कि जग्गय्या, जो कि वादी का पोषक पिता है, ने अपने जीवनकाल के दौरान कई संपत्तियां अर्जित की थीं और अपनी स्थावर संपत्तियों को स्वस्थ और व्ययन करने की मानसिक स्थिति में अपनी पत्नी महालक्ष्म्मा के पक्ष में जीवनपर्यंत के लिए संपदा देते हुए वादी/प्रत्यर्थी तथा प्रथम प्रतिवादी/अपीलार्थी सं. 1 के पक्ष में वसीयत करके तारीख 22 मई, 1964 को एक रजिस्ट्रीकृत विल निष्पादित की और उक्त महालक्ष्म्मा की तारीख 20 मई, 2001 को मृत्यु हो गई, इसलिए वादी/प्रत्यर्थी सं. 1 तथा प्रतिवादी/अपीलार्थी सं. 1 और 2 वादपत्र में अनुसूचित संपत्तियों के एक समान अंशों के हकदार हो गए । वादी के मांग करने पर जब प्रतिवादी उसे उसका विधिसम्मत अधिकार देते हुए संपत्तियों का विभाजन करने में असफल रहे, तो उसने उपरोक्त वाद फाइल करके न्यायालय में समावेदन किया । इस अपील में अपीलार्थियों (प्रतिवादी सं. 1 और 2) ने वादी/प्रत्यर्थी सं. 1 के अभिवाक् का विरोध करते हुए यह लिखित कथन फाइल किया कि अपीलार्थी सं. 1 महालक्ष्म्मा की बहिन की पुत्री है और वादी/प्रत्यर्थी सं. 1 जो कि स्वर्गीय जग्गय्या की बहिन का पुत्र है, उनको पोषक पुत्री और पुत्र के रूप में समझा गया क्योंकि जग्गय्या की कोई संतान नहीं थी । वर्ष 1969 में पक्षकारों के बीच संपत्तियों का विभाजन हुआ था । वादी/प्रत्यर्थी सं. 1 का संपत्तियों में उसका हिस्सा होने के बावजूद अपीलार्थी सं. 1 के भोलेपन और लाचारी का फायदा उठाकर वे अन्य संपत्तियां ले लीं जो कि उसे आबंटित नहीं की गईं और कोई रास्ता न होते हुए वह (अपीलार्थी सं. 1) चुप रही । प्रतिवादी/अपीलार्थियों के अनुसार, विभाजन के पश्चात् वे अपने-अपने हिस्से में आई संपत्तियों का उपभोग कर रहे हैं । तारीख 5 जून, 1975 को वादी/प्रत्यर्थी सं. 1 तथा प्रथम प्रतिवादी/अपीलार्थी सं. 1 ने पूर्ववर्ती विभाजन का ज्ञापन-विलेख निष्पादित किया । वादी/प्रत्यर्थी सं. 1 तथा प्रथम प्रतिवादी/अपीलार्थी सं. 1 दोनों को उनके हिस्से में आई संपत्तियों की बाबत पट्टादार पासबुक और हक विलेख दिए गए और वास्तव में, वादी/प्रत्यर्थी सं. 1 ने अपनी कुछ संपत्तियों का अन्यसंक्रामण कर दिया । महालक्ष्म्मा ने स्वस्थ और व्ययन करने की मानसिक हालत में सभी संपत्तियों की प्रतिवादी/अपीलार्थी सं. 1 के पक्ष में वसीयत करते हुए तारीख 27 मार्च, 1999 को एक रजिस्ट्रीकृत विल निष्पादित की । इसके अतिरिक्त, महालक्ष्म्मा ने अपनी जीवनपर्यंत संपदा अपीलार्थी/प्रतिवादी सं. 1 तथा वादी/प्रत्यर्थी सं. 1 को दी । इसलिए,

यह अभिवाक् किया गया है कि क्योंकि संपत्तियों का वर्ष 1969 में पहले ही विभाजन हो गया था, इसलिए संपत्तियों का पुनः विभाजन करने का प्रश्न उद्भूत नहीं होता और वाद को खारिज करने की ईप्सा की । अपीलार्थी/प्रतिवादी सं. 1 ने अपनी मुख्य परीक्षा का शपथपत्र फाइल किया और प्रदर्श बी-1 से बी-48 चिन्हित करने की ईप्सा की । वादी/प्रत्यर्थी सं. 1 ने प्रदर्श बी-21 और बी-22 की ग्राह्यता के बारे में आक्षेप किया । प्रतिवादी/अपीलार्थी के अनुसार तारीख 5 जून, 1975 का प्रदर्श बी-21 वादी/प्रत्यर्थी सं. 1 तथा प्रतिवादी/अपीलार्थी सं. 1 के बीच हुए पूर्व विभाजन को साक्षित करने वाला ज्ञापन-विलेख है । प्रदर्श बी-22 स्वर्गीय महालक्ष्म्मा, वादी/प्रत्यर्थी सं. 1 और प्रतिवादी/अपीलार्थी सं. 1 के बीच तारीख 4 जून, 1975 को हुआ करार है । वादी/प्रत्यर्थी सं. 1 ने प्रदर्श बी-21 और बी-22 की ग्राह्यता के बारे में इस आधार पर आक्षेप किया कि तारीख 5 जून, 1975 के ज्ञापन में निर्दिष्ट अंतर्वस्तुओं से यह प्रकट होता है कि इसके द्वितीय पक्षकार ने उक्त दस्तावेजों के माध्यम से अपना अधिकार त्याग दिया था । इसलिए तारीख 4 जून, 1975 के करार और तारीख 5 जून, 1975 के ज्ञापन का अर्थान्वयन त्यजन विलेखों के रूप में किया जाना चाहिए । त्यजन विलेख रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 17(ख) के अधीन अनिवार्य रूप से रजिस्ट्रीकरणीय दस्तावेज है और इसलिए अरजिस्ट्रीकृत दस्तावेज साक्ष्य में ग्राह्य नहीं है । प्रतिवादियों का यह अभिवाक् है कि उक्त दस्तावेज के परिवर्णनों से संपत्ति के विभाजन के संबंध में हुआ भूतपूर्व संव्यवहार प्रकट होता है और इसके अतिरिक्त इससे संपत्तियों का हिस्सा बांटने के लिए एक अलग करार करने का पक्षकारों का आशय भी प्रकट होता है और इसमें के निबंधन भविष्य में कार्यान्वित होने थे । विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय दोनों ने वादी/प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा किए गए आक्षेप को मान्य ठहराया और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि दोनों परिवर्णनों अर्थात् प्रदर्श बी-1 और प्रदर्श बी-22 से भूतपूर्व संव्यवहार साक्षित नहीं होता है, किंतु उनसे प्रथमदृष्ट्या संपत्ति के विभाजन और पक्षकारों में से एक पक्षकार द्वारा अधिकारों के त्यजन की बात प्रकट होती है । इसलिए दोनों दस्तावेजों पर भारतीय स्टांप अधिनियम, 1899 के अधीन स्टांप शुल्क और रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 के अधीन रजिस्ट्रीकरण होना अपेक्षित है । क्योंकि प्रदर्श बी-21 और बी-22 अरजिस्ट्रीकृत और अस्टांपित दस्तावेज हैं, वे साक्ष्य में ग्राह्य नहीं हैं । विचारण न्यायालय ने यह

विनिर्दिष्ट निष्कर्ष निकाला कि यहां तक कि दोनों प्रदर्श सांपार्श्विक प्रयोजन के लिए भी ग्राह्य नहीं है । प्रतिवादी/अपीलार्थियों ने उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील भागतः मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रतिवादी सं. 1 प्रदर्श बी-21 और बी-22 चिन्हित कराना चाहती थी, उसके अनुसार, ये दोनों दस्तावेज करार और ज्ञापन हैं जो कि अरजिस्ट्रीकृत और अस्टांपित दस्तावेज हैं और इनका रजिस्ट्रीकरण अपेक्षित नहीं है । इस न्यायालय ने प्रदर्श बी-21 और बी-22, जो प्रस्तुत किए गए हैं, को देखा । तारीख 4 जून, 1975 का प्रदर्श बी-22, इसके परिवर्णनों के अनुसार, वादी/प्रत्यर्थी सं. 1, प्रतिवादी/अपीलार्थी सं. 1 तथा स्वर्गीय महालक्ष्म्मा के बीच हुआ एक करार है । करार के खंड 1 में वादी/प्रत्यर्थी सं. 1 और प्रतिवादी/अपीलार्थी सं. 1 के पक्ष में महालक्ष्म्मा के अधिकारों के त्यजन के बारे में उल्लेख है और खंड 4 में विनिर्दिष्ट है कि महालक्ष्म्मा की जीवनपर्यंत संपदा वादी/प्रत्यर्थी सं. 1 और प्रतिवादी/अपीलार्थी सं. 1 को एकसमान रूप में न्यायगत होनी है । आगे यह विनिर्दिष्ट किया गया है कि दुकान की 50,000/- रुपए की स्टाक रकम महालक्षम्मा को दी गई और शेष रकम का वादी/प्रत्यर्थी सं. 1 और प्रतिवादी/अपीलार्थी सं. 1 के बीच विभाजन होगा और आगे यह भी सहमति हुई कि महालक्षम्मा उसी मकान में रहने की हकदार है जहां वह रह रही है । वह वादी/प्रत्यर्थी सं. 1 के मकान में रहने के लिए स्वतंत्र है और वादी/प्रत्यर्थी सं. 1 तथा प्रतिवादी/अपीलार्थी सं. 1 इस बात पर कोई विवाद नहीं करेंगे । तारीख 5 जून, 1975 के प्रदर्श बी-1 पर आते हैं जो कि महालक्षम्मा, वादी/प्रत्यर्थी सं. 1 और प्रतिवादी/अपीलार्थी सं. 1 के बीच हुआ करार है जिसमें खंड 4 और 6 में के परिवर्णन करार के पक्षकारों के बीच अंशों के त्यजन से संबंधित हैं । ज्ञापन, प्रदर्श बी-22 में यह उल्लेख है कि संपत्तियों का विभाजन होने पर उनमें से प्रत्येक अच्छी और बुरी गुणवत्ता वाली अपनी-अपनी संपत्तियों, जो उनके हिस्से में आई है, का उपभोग कर रहे हैं और इसके सबूत के रूप में ज्ञापन-विलेख निष्पादित किया जाता है । विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने इस न्यायालय का ध्यान इन दोनों दस्तावेजों के परिवर्णनों की ओर दिलाकर, विनिर्दिष्ट रूप से प्रदर्श-21 की अंतिम कुछ पंक्तियों के द्वारा इस न्यायालय को इस बात के लिए अत्यधिक प्रभावित करने की कोशिश की कि ये दस्तावेज विभाजन हुए उस भूतपूर्व संव्यवहार के साक्ष्य हैं, किंतु पक्षकारों को इन दस्तावेजों के माध्यम से रजिस्ट्रीकरण

अधिनियम की धारा 17 के अधीन परिकल्पित अनुसार स्थावर संपत्ति में कोई अधिकार प्रोद्भूत नहीं हुआ है और इससे ये दस्तावेज रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 49 की परिधि से बाहर हो जाते हैं । (पैरा 16)

यह सुस्थिर है कि दस्तावेज का दिया गया नाम निश्चायक पहलू नहीं है अपितु संव्यवहार की प्रकृति और सार का अवधारण दस्तावेजों के निबंधनों के प्रति निर्देश करके किया जाना चाहिए और किसी दस्तावेज की ग्राह्यता संपूर्ण रूप से उस दस्तावेज में अंतर्विष्ट परिवर्णनों पर निर्भर करती है न कि उस पक्षकार द्वारा किए गए अभिवाकों पर जो प्रश्नगत दस्तावेज को पुरःस्थापित करने की ईप्सा करता है । प्रदर्श बी-1 और बी-2 दोनों को संपूर्ण रूप से पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि स्थावर संपत्ति की बाबत अधिकार का त्यजन ऐसे दस्तावेज के द्वारा किया गया है जो अनिवार्य रूप से रजिस्ट्रीकरणीय दस्तावेज है और यदि इसे रजिस्ट्रीकृत नहीं कराया जाता है, तो यह रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 49 के अधीन परिकल्पित अनुसार अग्राह्य दस्तावेज हो जाता है । इसलिए प्रदर्श बी-1 और बी-2 ऐसे दस्तावेज हैं जो पूर्ण रूप से रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 17(i)(ख) की परिधि के अंतर्गत आते हैं और इसलिए अनिवार्य रूप से रजिस्ट्रीकरणीय दस्तावेज हैं तथा पक्षकारों के बीच हुए विभाजन के तथ्य को साबित करने के प्रयोजन के लिए साक्ष्य में अग्राह्य हैं । इस न्यायालय की यह सुविचारित राय है कि प्रदर्श बी-1 और बी-22 विभाजन के प्राथमिक प्रयोजन को साबित करने के प्रयोजन के लिए साक्ष्य में ग्राह्य नहीं हैं । इसके पश्चात् अगला प्रश्न जिस पर विचार किया जाना है, यह है कि क्या ये दस्तावेज किसी सांपार्श्विक प्रयोजन के लिए प्रयुक्त किए जा सकते हैं या नहीं । विभाजन के वाद में, अरजिस्ट्रीकृत दस्तावेजों का सांपार्श्विक प्रयोजन के लिए अर्थात् हक के पृथक्करण, विभिन्न हिस्सों के कब्जे की प्रकृति के लिए अवलंब लिया जा सकता है, किंतु प्राथमिक प्रयोजन अर्थात् संयुक्त संपत्तियों का माप और सीमांकन करके विभाजन के प्रयोजन के लिए नहीं । कोई अरजिस्ट्रीकृत दस्तावेज सांपार्श्विक प्रयोजन के लिए भी तब तक साक्ष्य में ग्राह्य नहीं है जब तक कि उसे परिबद्ध नहीं किया जाता है । इसलिए यदि अपीलार्थी/प्रतिवादी इन दस्तावेजों को सांपार्श्विक प्रयोजन के लिए चिन्हित कराना चाहते हैं तो वे इस बात के लिए स्वतंत्र हैं कि वे शास्ति के साथ-साथ स्टांप शुल्क का संदाय करें और दस्तावेज को परिबद्ध कराएं तथा विचारण न्यायालय प्रदर्श बी-21 और बी-22 को सबूत और सुसंगतता के अधीन रहते हुए सांपार्श्विक प्रयोजन के लिए चिन्हित करने के लिए स्वतंत्र है । (पैरा 17 और 18)

अवलंबित निर्णय

पैरा

[1969] ए. आई. आर. 1969 आंध्र प्रदेश 242 :
चिन्नप्पा रेड्डी गरी मुथयाला रेड्डी बनाम
चिन्नप्पा रेड्डी गरी वेंकट रेड्डी । 18

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2015 की सिविल अपील सं. 8441.

2013 की सिविल पुनरीक्षण अर्जी सं. 3419 में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय, हैदराबाद के तारीख 27 दिसम्बर, 2013 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री वी. वी. एस. राव, ज्येष्ठ अधिवक्ता, गुंटुर प्रभाकर, अंबाती श्रीनिवास, विजयश्री और जी. प्रमोद कुमार

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री जी. वी. आर. चौधरी, के. शिवराज चौधरी, (सुश्री) ए. चन्द्र शेखर और पी. एस. कुमार

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एन. वी. रमण ने दिया ।

न्या. रमण – इजाजत दी गई ।

2. यह अपील 2013 की सिविल पुनरीक्षण अर्जी सं. 3419 में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 27 दिसम्बर, 2013 को पारित किए गए आदेशों से व्यथित होकर फाइल की गई है और जिसके द्वारा विद्वान् न्यायाधीश ने अपीलार्थियों/प्रतिवादी सं. 1 और 2 द्वारा फाइल की गई पुनरीक्षण अर्जी को, 2004 के मूल वाद सं. 10 में प्रधान ज्येष्ठ सिविल न्यायाधीश, अंकापाले की फाइल पर तारीख 8 जुलाई, 2013 को पारित किए गए आदेशों की पुष्टि करते हुए, खारिज कर दिया ।

3. वर्तमान अपील में अंतर्वलित विवाद का न्यायनिर्णयन करने के लिए आवश्यक संक्षिप्त तथ्य निम्नलिखित हैं ।

4. प्रथम प्रत्यर्थी/वादी ने अपीलार्थियों और अन्य के विरुद्ध ज्येष्ठ सिविल न्यायाधीश, अंकापाले के न्यायालय में वाद में अनुसूचित संपत्तियों

के मद सं. 1 में एक चौथाई हिस्से और मद सं. 2 में आधे हिस्से का दावा करते हुए विभाजन के अनुतोष के लिए 2004 का मूल वाद सं. 10 फाइल किया ।

5. प्रथम प्रत्यर्थी/वादी का यह विनिर्दिष्ट पक्षकथन है कि जग्गय्या, जो कि वादी का पोषक पिता है, ने अपने जीवनकाल के दौरान कई संपत्तियां अर्जित की थीं और अपनी स्थावर संपत्तियों को स्वस्थ और व्ययन करने की मानसिक स्थिति में अपनी पत्नी महालक्षम्मा के पक्ष में जीवनपर्यंत के लिए संपदा देते हुए वादी/प्रत्यर्थी तथा प्रथम प्रतिवादी/अपीलार्थी सं. 1 के पक्ष में वसीयत करके तारीख 22 मई, 1964 को एक रजिस्ट्रीकृत विल निष्पादित की और उक्त महालक्षम्मा की तारीख 20 मई, 2001 को मृत्यु हो गई, इसलिए वादी/प्रत्यर्थी सं. 1 तथा प्रतिवादी/अपीलार्थी सं. 1 और 2 वादपत्र में अनुसूचित संपत्तियों के एक समान अंशों के हकदार हो गए । वादी के मांग करने पर जब प्रतिवादी उसे उसका विधिसम्मत अधिकार देते हुए संपत्तियों का विभाजन करने में असफल रहे, तो उसने उपरोक्त वाद फाइल करके न्यायालय में समावेदन किया ।

6. इस अपील में अपीलार्थियों (प्रतिवादी सं. 1 और 2) ने वादी/प्रत्यर्थी सं. 1 के अभिवाक् का विरोध करते हुए यह लिखित कथन फाइल किया कि अपीलार्थी सं. 1 महालक्षम्मा की बहिन की पुत्री है और वादी/प्रत्यर्थी सं. 1 जो कि स्वर्गीय जग्गय्या की बहिन का पुत्र है, उनको पोषक पुत्री और पुत्र के रूप में समझा गया क्योंकि जग्गय्या की कोई संतान नहीं थी । वर्ष 1969 में पक्षकारों के बीच संपत्तियों का विभाजन हुआ । वादी/प्रत्यर्थी सं. 1 का संपत्तियों में उसका हिस्सा होने के बावजूद अपीलार्थी सं. 1 के भोलेपन और लाचारी का फायदा उठाकर वे अन्य संपत्तियां ले लीं जो कि उसे आबंटित नहीं की गई हैं और कोई रास्ता न होते हुए वह (अपीलार्थी सं. 1) चुप रही । प्रतिवादी/अपीलार्थियों के अनुसार, विभाजन के पश्चात् वे अपने-अपने हिस्से में आई संपत्तियों का उपभोग कर रहे हैं । उनका आगे यह पक्षकथन है कि तारीख 5 जून, 1975 को वादी/प्रत्यर्थी सं. 1 तथा प्रथम प्रतिवादी/अपीलार्थी सं. 1 ने पूर्ववर्ती विभाजन का ज्ञापन-विलेख निष्पादित किया । वादी/प्रत्यर्थी सं. 1 तथा प्रथम प्रतिवादी/अपीलार्थी सं. 1 दोनों को उनके हिस्से में आई संपत्तियों की बाबत पट्टादार पासबुक और हक विलेख दिए गए और वास्तव में, वादी/प्रत्यर्थी सं. 1 ने अपनी कुछ संपत्तियों का अन्यसंक्रामण

किया है । महालक्ष्म्मा ने स्वस्थ और व्ययन करने की मानसिक हालत में सभी संपत्तियों की प्रतिवादी/अपीलार्थी सं. 1 के पक्ष में वसीयत करते हुए तारीख 27 मार्च, 1999 को एक रजिस्ट्रीकृत विल निष्पादित की । इसके अतिरिक्त, महालक्ष्म्मा ने अपनी जीवनपर्यंत संपदा अपीलार्थी/प्रतिवादी सं. 1 तथा वादी/प्रत्यर्थी सं. 1 को दी । इसलिए, यह अभिवाक् किया गया है कि क्योंकि संपत्तियों का वर्ष 1969 में पहले ही विभाजन हो गया था, इसलिए संपत्तियों का पुनः विभाजन करने का प्रश्न उद्भूत नहीं होता और वाद को खारिज करने की ईप्सा की ।

7. अपीलार्थी/प्रतिवादी सं. 1 ने अपनी मुख्य परीक्षा का शपथपत्र फाइल किया और प्रदर्श बी-1 से बी-48 चिन्हित करने की ईप्सा की । वादी/प्रत्यर्थी सं. 1 ने प्रदर्श बी-21 और बी-22 की ग्राह्यता के बारे में आक्षेप किया । प्रतिवादी/अपीलार्थी के अनुसार तारीख 5 जून, 1975 का प्रदर्श बी-21 वादी/प्रत्यर्थी सं. 1 तथा प्रतिवादी/अपीलार्थी सं. 1 के बीच हुए पूर्व विभाजन को साक्षित करने वाला ज्ञापन-विलेख है । प्रदर्श बी-22 स्वर्गीय महालक्ष्म्मा, वादी/प्रत्यर्थी सं. 1 और प्रतिवादी/अपीलार्थी सं. 1 के बीच तारीख 4 जून, 1975 को हुआ करार है ।

8. वादी/प्रत्यर्थी सं. 1 ने प्रदर्श बी-21 और बी-22 की ग्राह्यता के बारे में इस आधार पर आक्षेप किया कि तारीख 5 जून, 1975 के ज्ञापन में निर्दिष्ट अंतर्वस्तुओं से यह प्रकट होता है कि इसके द्वितीय पक्षकार ने उक्त दस्तावेजों के माध्यम से अपना अधिकार त्याग दिया था । इसलिए तारीख 4 जून, 1975 के करार और तारीख 5 जून, 1975 के ज्ञापन का अर्थान्वयन त्यजन विलेखों के रूप में किया जाना चाहिए । त्यजन विलेख रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 17(ख) के अधीन अनिवार्य रूप से रजिस्ट्रीकरणीय दस्तावेज है और इसलिए अरजिस्ट्रीकृत दस्तावेज साक्ष्य में ग्राह्य नहीं है । प्रतिवादियों का यह अभिवाक् है कि उक्त दस्तावेज के परिवर्णनों से संपत्ति के विभाजन के संबंध में हुआ भूतपूर्व संव्यवहार प्रकट होता है और इसके अतिरिक्त इससे संपत्तियों का हिस्सा बांटने के लिए एक अलग करार करने का पक्षकारों का आशय भी प्रकट होता है और इसमें के निबंधन भविष्य में कार्यान्वित होंगे ।

9. विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय दोनों ने वादी/प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा किए गए आक्षेप को मान्य ठहराया और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि

दोनों परिवर्णनों अर्थात् प्रदर्श बी-1 और प्रदर्श बी-22 से भूतपूर्व संव्यवहार साक्षित नहीं होता है, किंतु उनसे प्रथमदृष्ट्या संपत्ति के विभाजन और पक्षकारों में से एक पक्षकार द्वारा अधिकारों के त्यजन की बात प्रकट होती है । इसलिए दोनों दस्तावेजों पर भारतीय स्टांप अधिनियम, 1899 के अधीन स्टांप शुल्क और रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 के अधीन रजिस्ट्रीकरण होना अपेक्षित है । क्योंकि प्रदर्श बी-21 और बी-22 अरजिस्ट्रीकृत और अस्टांपित दस्तावेज हैं, वे साक्ष्य में ग्राह्य नहीं हैं । विचारण न्यायालय ने यह विनिर्दिष्ट निष्कर्ष निकाला कि यहां तक कि दोनों प्रदर्श सांपार्श्विक प्रयोजन के लिए भी ग्राह्य नहीं है ।

10. हमने अपीलार्थी/प्रतिवादी सं. 1 और 2 की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल तथा प्रत्यर्थी/वादियों की ओर से विद्वान् काउंसेल को सुना ।

11. विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री वी. वी. एस. राव द्वारा यह दलील दी गई कि प्रदर्श बी-21 और बी-22 साक्ष्य में साक्ष्य हैं क्योंकि दोनों दस्तावेज भूतपूर्व संव्यवहार के साक्ष्य हैं जिसका किसी प्रकार का रजिस्ट्रीकरण अपेक्षित नहीं है और दोनों निचले न्यायालयों ने दस्तावेजों की प्रकृति की अनदेखी करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुंचने में गलती की है कि प्रदर्श बी-21 और बी-22 का रजिस्ट्रीकरण आवश्यक है । यह दलील दी है गई कि रजिस्ट्रीकरण अधिनियम में वर्ष 1986 में जो संशोधन किया गया है, उसके द्वारा भूतपूर्व संव्यवहार भी रजिस्ट्रीकरणीय बन जाते हैं, और यह संशोधन प्रदर्श बी-21 और बी-22 पर लागू नहीं होता है । विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल द्वारा आगे यह दलील दी गई कि यदि यह मान भी लिया जाए कि प्रदर्श बी-21 और बी-22 का रजिस्ट्रीकरण आवश्यक है, फिर भी अरजिस्ट्रीकृत दस्तावेज सांपार्श्विक प्रयोजन के लिए साक्ष्य में ग्राह्य हैं ।

12. दूसरी ओर, विद्वान् काउंसेल श्री जी. वी. आर. चौधरी ने प्रत्यर्थियों की ओर से उपसंजात होते हुए यह दलील दी कि निचले न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचने में पूरी तरह से ठीक हैं कि प्रदर्श बी-21 और बी-22 अनिवार्य रूप से रजिस्ट्रीकरणीय दस्तावेज हैं और वाद को खारिज करने का अनुरोध किया ।

13. अब जिस विवाद्यक पर विचार किया जाना है, वह यह है :–

(1) क्या निचले न्यायालयों ने यह अभिनिर्धारित करके ठीक किया है कि प्रदर्श बी-21 और बी-22 साक्ष्य में ग्राह्य नहीं हैं क्योंकि

वे अनिवार्य रूप से रजिस्ट्रीकरणीय दस्तावेज हैं ?

(2) क्या प्रदर्श बी-21 और बी-22 सांपार्श्विक प्रयोजन के लिए साक्ष्य में ग्राह्य हैं ?

14. मामले के गुणागुण पर विचार करने से पूर्व, हम रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 के सुसंगत उपबंधों को उद्धृत करना उचित समझते हैं :–

रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 17

दस्तावेजें जिनका रजिस्ट्रीकरण अनिवार्य है – (1) निम्नलिखित दस्तावेजों की रजिस्ट्री करनी होगी यदि वह संपत्ति, जिससे उनका संबंध है, ऐसे जिले में स्थित हैं, जिसमें और यदि वे दस्तावेजें उस तारीख को या के पश्चात् निष्पादित हुई हैं, जिसको, 1864 का ऐक्ट संख्यांक 16 या इंडियन रजिस्ट्रेशन ऐक्ट, 1866 (1866 का 20) या इंडियन रजिस्ट्रेशन ऐक्ट, 1871 (1871 का 8) या इंडियन रजिस्ट्रेशन ऐक्ट, 1877 (1877 का 3) या यह अधिनियम प्रवर्तन में आया था या आता है, अर्थात् –

(क) स्थावर संपत्ति के दान की लिखत;

(ख) अन्य निर्वसीयती लिखत जिनसे यह तात्पर्यित हो या जिनका प्रवर्तन ऐसा हो कि वे स्थावर संपत्ति पर या स्थावर संपत्ति में एक सौ रुपए या उससे अधिक के मूल्य का कोई अधिकार, हक या हित, चाहे वह निहित, चाहे समाश्रित हो, चाहे वर्तमान में, चाहे भविष्य में, सृजित, घोषित, समनुदेशित, परिसीमित या निर्वापित करती हो;

(ग) ऐसी निर्वसीयती लिखत, जो ऐसे किसी अधिकार, हक या हित के सृजन, घोषणा, समनुदेशन, परिसीमा या निर्वापन के मद्धे किसी प्रतिफल की प्राप्ति या संदाय अभिस्वीकार करती हो;

(घ) स्थावर संपत्ति के पट्टे ;

(ङ) न्यायालय की किसी डिक्री या आदेश का, या किसी पंचाट का अंतरण या समनुदेशन करने वाली निर्वसीयती लिखत जबकि ऐसी डिक्री या आदेश, या पंचाट से यह तात्पर्यित हो या उसका प्रवर्तन ऐसा हो कि वह स्थावर संपत्ति पर या स्थावर संपत्ति में एक सौ रुपए या उससे अधिक मूल्य का कोई अधिकार, हक या हित, चाहे वह

निहित, चाहे समाश्रित हो, चाहे वर्तमान में, चाहे भविष्य में सृजित, घोषित, समनुदेशित, परिसीमित या निर्वापित होता हो ;

(च) किसी सिविल न्यायालय द्वारा प्रतिवादियों की सहमति पर या पारिस्थितिक साक्ष्य के आधार पर किंतु वादी द्वारा प्रस्तुत की गई रजिस्ट्रीकृत हक विलेख जैसी ऐसी किसी लिखत के आधार पर नहीं जो भारतीय स्टांप अधिनियम, 1899 (1899 का 2) की धारा 35 के अधीन साक्ष्य में ग्राह्य है, पारित कोई डिक्री या आदेश या पंचाट या उसकी कोई प्रति, जहां ऐसी डिक्री या आदेश, या पंचाट से यह तात्पर्यित हो या उसका प्रवर्तन ऐसा हो कि वह स्थावर संपत्ति पर या स्थावर संपत्ति में एक सौ रुपए या उससे अधिक मूल्य का कोई अधिकार, हक या हित, चाहे वह निहित, चाहे समाश्रित हो, चाहे वर्तमान में, चाहे भविष्य में सृजित, घोषित, समनुदेशित, परिसीमित या निर्वापित होता हो ; और

(छ) एक सौ रुपए या उससे अधिक मूल्य की स्थावर संपत्ति के विक्रय का करार :

परन्तु राज्य सरकार किसी भी जिले या जिले के भाग में निष्पादित किन्हीं भी पट्टों को, जिनके द्वारा अनुदत्त पट्टा-अवधियां पांच वर्ष से अनधिक हैं और जिनके द्वारा आरक्षित वार्षिक भाटक पचास रुपए से अनधिक है, शासकीय राजपत्र में प्रकाशित आदेश द्वारा इस उपधारा के प्रवर्तन से छूट दे सकेगी ।

रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 49

जिन दस्तावेजों का रजिस्ट्रीकरण अपेक्षित है उनके अरजिस्ट्रीकरण का परिणाम – कोई भी दस्तावेज जो धारा 17 द्वारा या संपत्ति अधिनियम, 1882 (1882 का 4) के किसी भी उपबंध द्वारा रजिस्ट्रीकृत किए जाने के लिए अपेक्षित है, जब तक कि उसका रजिस्ट्रीकरण न हो गया हो, –

(क) उसमें समाविष्ट किसी भी स्थावर संपत्ति पर प्रभाव नहीं डालेगी ;

(ख) दत्तकग्रहण की कोई भी शक्ति प्रदत्त न करेगी ; अथवा

(ग) ऐसी संपत्ति पर प्रभाव डालने वाले या ऐसी शक्ति को प्रदत्त

करने वाले किसी भी संव्यवहार के साक्ष्य के रूप में ली जाएगी :

परन्तु स्थावर संपत्ति पर प्रभाव डालने वाली और इस अधिनियम या संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 (1882 का 4) द्वारा रजिस्ट्रीकृत किए जाने के लिए अपेक्षित अरजिस्ट्रीकृत दस्तावेज स्पेसिफिक रिलीफ ऐक्ट, 1877 (1877 का 1) के अध्याय 2 के अधीन विनिर्दिष्ट पालन के वाद में संविदा के साक्ष्य के तौर पर या किसी ऐसे सांपार्श्विक संव्यवहार के साक्ष्य के तौर पर, जो रजिस्ट्रीकृत लिखत द्वारा लिए जाने के लिए अपेक्षित न हो, ली जा सकेगी ।

15. रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 17(1)(ख) में यह आज्ञापक है कि कोई दस्तावेज जिसका किसी स्थावर संपत्ति की बाबत अधिकार सृजित करने और वापस लेने का आशय है, उसका रजिस्ट्रीकृत होना आवश्यक है और अधिनियम की धारा 49 में अरजिस्ट्रीकृत दस्तावेज की ग्राह्यता पर वर्जन अधिरोपित किया गया है और उन दस्तावेजों के संबंध में है जो अधिनियम की धारा 17 के अधीन रजिस्ट्रीकृत किए जाने आवश्यक हैं ।

16. प्रस्तुत मामले के तथ्यों पर आते हैं । प्रतिवादी सं. 1 प्रदर्श बी-21 और बी-22 चिन्हित कराना चाहती थी, उसके अनुसार, ये दोनों दस्तावेज करार और ज्ञापन हैं जो कि अरजिस्ट्रीकृत और अस्टांपित दस्तावेज हैं और इनका रजिस्ट्रीकरण अपेक्षित नहीं है । हमने प्रदर्श बी-21 और बी-22, जो हमारे समक्ष प्रस्तुत किए गए हैं, को देखा । तारीख 4 जून, 1975 का प्रदर्श बी-22, इसके परिवर्णनों के अनुसार, वादी/प्रत्यर्थी सं. 1, प्रतिवादी/अपीलार्थी सं. 1 तथा स्वर्गीय महालक्ष्म्मा के बीच हुआ एक करार है । करार के खंड 1 में वादी/प्रत्यर्थी सं. 1 और प्रतिवादी/अपीलार्थी सं. 1 के पक्ष में महालक्ष्म्मा के अधिकारों के त्यजन के बारे में उल्लेख है और खंड 4 में विनिर्दिष्ट है कि महालक्ष्म्मा की जीवनपर्यंत संपदा वादी/प्रत्यर्थी सं. 1 और प्रतिवादी/अपीलार्थी सं. 1 को एकसमान रूप में न्यायगत होनी है । आगे यह विनिर्दिष्ट किया गया है कि दुकान की 50,000/- रुपए की स्टाक रकम महालक्ष्म्मा को दी गई और शेष रकम का वादी/प्रत्यर्थी सं. 1 और प्रतिवादी/अपीलार्थी सं. 1 के बीच विभाजन होगा और आगे यह भी सहमति हुई कि महालक्ष्म्मा उसी मकान में रहने की हकदार है जहां वह रह रही है । वह वादी/प्रत्यर्थी सं. 1 के मकान में रहने के लिए स्वतंत्र है और वादी/प्रत्यर्थी सं. 1 तथा प्रतिवादी/अपीलार्थी सं. 1 इस बात पर कोई

विवाद नहीं करेंगे । तारीख 5 जून, 1975 के प्रदर्श बी-1 पर आते हैं जो कि महालक्षम्मा, वादी/प्रत्यर्थी सं. 1 और प्रतिवादी/अपीलार्थी सं. 1 के बीच हुआ करार है जिसमें खंड 4 और 6 में के परिवर्णन करार के पक्षकारों के बीच अंशों के त्यजन से संबंधित हैं । ज्ञापन, प्रदर्श बी-22 में यह उल्लेख है कि संपत्तियों का विभाजन होने पर उनमें से प्रत्येक अच्छी और बुरी गुणवत्ता वाली अपनी-अपनी संपत्तियों, जो उनके हिस्से में आई है, का उपभोग कर रहे हैं और इसके सबूत के रूप में ज्ञापन-विलेख निष्पादित किया जाता है । विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने हमारा ध्यान इन दोनों दस्तावेजों के परिवर्णनों की ओर दिलाकर, विनिर्दिष्ट रूप से प्रदर्श-21 की अंतिम कुछ पंक्तियों के द्वारा इस न्यायालय को इस बात के लिए अत्यधिक प्रभावित करने की कोशिश की कि ये दस्तावेज विभाजन हुए उस भूतपूर्व संव्यवहार के साक्ष्य हैं, किंतु पक्षकारों को इन दस्तावेजों के माध्यम से रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 17 के अधीन परिकल्पित अनुसार स्थावर संपत्ति में कोई अधिकार प्रोद्भूत नहीं हुआ है और इससे ये दस्तावेज रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 49 की परिधि से बाहर हो जाते हैं ।

17. यह सुस्थिर है कि दस्तावेज का दिया गया नाम निश्चायक पहलू नहीं है अपितु संव्यवहार की प्रकृति और सार का अवधारण दस्तावेजों के निबंधनों के प्रति निर्देश से किया जाना चाहिए और किसी दस्तावेज की ग्राह्यता संपूर्ण रूप से उस दस्तावेज में अंतर्विष्ट परिवर्णनों पर निर्भर करती है न कि उस पक्षकार द्वारा किए गए अभिवाकों पर जो प्रश्नगत दस्तावेज को पुरःस्थापित करने की ईप्सा करता है । प्रदर्श बी-1 और बी-2 दोनों को संपूर्ण रूप से पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि स्थावर संपत्ति की बाबत अधिकार का त्यजन ऐसे दस्तावेज के द्वारा किया गया है जो अनिवार्य रूप से रजिस्ट्रीकरणीय दस्तावेज है और यदि इसे रजिस्ट्रीकृत नहीं कराया जाता है, तो यह रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 49 के अधीन परिकल्पित अनुसार अग्राह्य दस्तावेज हो जाता है । इसलिए प्रदर्श बी-1 और बी-2 ऐसे दस्तावेज हैं जो पूर्ण रूप से रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 17(i)(ख) की परिधि के अंतर्गत आते हैं और इसलिए अनिवार्य रूप से रजिस्ट्रीकरणीय दस्तावेज हैं तथा पक्षकारों के बीच हुए विभाजन के तथ्य को साबित करने के प्रयोजन के लिए साक्ष्य में अग्राह्य हैं । हमारी यह सुविचारित राय है कि प्रदर्श बी-1 और बी-22 विभाजन के प्राथमिक प्रयोजन को साबित करने के प्रयोजन के लिए साक्ष्य में ग्राह्य नहीं हैं ।

18. इसके पश्चात् अगला प्रश्न जिस पर विचार किया जाना है, यह है कि क्या ये दस्तावेज किसी सांपार्श्विक प्रयोजन के लिए प्रयुक्त किए जा सकते हैं या नहीं । **चिन्नप्पा रेड्डी गरी मुथयाला रेड्डी** बनाम **चिन्नप्पा रेड्डी गरी वेंकट रेड्डी**[1] वाले मामले में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की बृहत्त न्यायपीठ वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि विभाजन की समस्त प्रक्रिया में तीन अवस्थाएं अनुध्यात हैं अर्थात् प्रास्थिति का पृथक्करण, संयुक्त संपत्ति का माप और सीमांकन करके विभाजन और विभिन्न हिस्सों के कब्जे की प्रकृति । विभाजन के वाद में, अरजिस्ट्रीकृत दस्तावेजों का सांपार्श्विक प्रयोजन के लिए अर्थात् हक के पृथक्करण, विभिन्न हिस्सों के कब्जे की प्रकृति के लिए अवलंब लिया जा सकता है, किंतु प्राथमिक प्रयोजन अर्थात् संयुक्त संपत्तियों का माप और सीमांकन करके विभाजन के प्रयोजन के लिए नहीं । कोई अरजिस्ट्रीकृत दस्तावेज सांपार्श्विक प्रयोजन के लिए भी तब तक साक्ष्य में ग्राह्य नहीं है जब तक कि उसे परिबद्ध नहीं किया जाता है । इसलिए यदि अपीलार्थी/प्रतिवादी इन दस्तावेजों को सांपार्श्विक प्रयोजन के लिए चिन्हित कराना चाहते हैं तो वे इस बात के लिए स्वतंत्र हैं कि वे शास्ति के साथ-साथ स्टांप शुल्क का संदाय करें और दस्तावेज को परिबद्ध कराएं तथा विचारण न्यायालय प्रदर्श बी-21 और बी-22 को सबूत और सुसंगतता के अधीन रहते हुए सांपार्श्विक प्रयोजन के लिए चिन्हित करने के लिए स्वतंत्र है ।

19. तद्नुसार, यह सिविल अपील यह अभिनिर्धारित करते हुए भागतः मंजूर की जाती है कि प्रदर्श बी-21 और बी-22 सांपार्श्विक प्रयोजन के लिए स्टांप शुल्क, शास्ति के संदाय, सबूत और सुसंगतता के अधीन रहते हुए साक्ष्य में ग्राह्य हैं ।

अपील भागतः मंजूर की गई ।

जस.

---

[1] ए. आई. आर. 1969 आंध्र प्रदेश 242.

[2016] 1 उम. नि. प. 105

मकसूद

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

9 अक्तूबर, 2015

न्यायमूर्ति रंजन गोगोई और न्यायमूर्ति एन. वी. रमण

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 325 और 304 भाग-II – घोर उपहति – दोनों पक्षकारों द्वारा घेर (खाली भूमि) के स्वामित्व और कब्जे के अपने-अपने अधिकार के प्राख्यान में आपसी लड़ाई के अनुक्रम में घोर उपहति कारित की गई जिसके परिणामस्वरूप एक व्यक्ति की मृत्यु हुई अतः मामले के तथ्यों और परिस्थितियों, चिकित्सा साक्ष्य और अभिलेख की अन्य सामग्री से यह प्रतीत होता है कि अभियुक्तों की धारा 325 के अधीन दोषसिद्धि और दंडादेश न्यायोचित और तर्कसंगत है ।

अभियोजन का यह पक्षकथन है कि दोनों पक्षकार विवादित घेर (खाली भूमि) पर अपने-अपने स्वामित्व और कब्जे के लिए आपस में कहासुनी की और फिर लड़ाई की । लड़ाई के दौरान लोगों को चोटें आईं मामले का विचारण किया गया और इसके पश्चात् उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय ने समवर्ती रूप से यह अभिनिर्धारित किया है कि मुशर्रफ और अमीर अहमद को जो क्षतियां पहुंची हैं, वे आपस में हुई लड़ाई के दौरान अभियुक्तों द्वारा कारित की गई हैं । तथ्यों के उक्त निष्कर्ष का समर्थन अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य और सामग्री से भी होता है । अतः, इस न्यायालय के समक्ष अन्य किसी प्रतिकूल निष्कर्ष पर पहुंचने की कोई गुंजाइश नहीं है । उपरोक्त बातों से यह निष्कर्ष निकलता है कि अभियुक्तों को उनके द्वारा कारित किए गए अपराधों और उनके परिणामस्वरूप मुशर्रफ और अमीर अहमद को पहुंची क्षतियों के लिए जिम्मेदार ठहराया जाना चाहिए । न्यायालय ने अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य पर विचार किया है जिससे यह दर्शित होता है कि मुशर्रफ के शरीर में अस्थिभंग हुआ था जिससे उसको पहुंची क्षति "घोर उपहति" अभिव्यक्ति के अंतर्गत आएगी, जैसाकि दंड संहिता की धारा 320 में

उल्लेख किया गया है । अतः, उक्त अपराध के लिए दंड, दंड संहिता की धारा 325 के अधीन आएगा जिसमें जुर्माने के साथ 7 वर्ष तक की अवधि का कारावास अनुध्यात किया गया है । उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय की राय में, उच्च न्यायालय द्वारा अधिरोपित एक वर्ष की अवधि का कारावास बहुत ही कम है, इसलिए यह न्यायोचित नहीं होगा कि न्यायालय इसमें कोई हस्तक्षेप करें । आहत मुशर्रफ और अमीर अहमद जिन्हें इस अपील के साथ सुनवाई की जा रही अपील (2011 की दांडिक अपील सं. 208) में दर्शाया गया है, प्रश्नगत अपराध का शमन किए जाने के इच्छुक नहीं हैं । न्यायालय की यह भी सुविचारित राय है कि वर्तमान मामले में कोई भी ऐसी विशेष परिस्थिति नहीं है जिसके आधार पर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 320 के उपबंधों का अवलंब लिया जा सके या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 के उपबंधों का अवलंब लेते हुए अपीलार्थियों को प्रोबेशन पर छोड़ा जा सके । राज्य की ओर से दी गई उपरोक्त दलील को विनिश्चित करने के लिए न्यायालय के लिए यह आवश्यक नहीं है कि न्यायालय दंड देने की शक्ति की प्रकृति और उसका प्रयोग किए जाने के सिद्धांतों तथा मानकों के संबंध में अनुचित दंड दिए जाने को लेकर विस्तृत रूप से चर्चा करें । इस बात पर विचार किया जाना चाहिए कि यद्यपि उच्च न्यायालय के आदेश में विशेष रूप से उल्लेख नहीं किया गया है फिर भी यह स्पष्ट है कि यह घटना वर्ष 1997 में घटित हुई थी और यह कि आपस में लड़ाई होने के दौरान मृत्यु कारित हुई थी । शिकायतकर्ता पक्ष का विचारण भी उन क्षतियों के लिए किया गया है जो वर्तमान मामले के अभियुक्तों को कारित हुई थीं और शिकायतकर्ता पक्ष को दोषी पाया गया है और दंड संहिता की धारा 325 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया है और इसी दोषसिद्धि तथा अधिरोपित दंडादेश (एक वर्ष का कठोर कारावास) को 2011 की दांडिक अपील सं. 207 में चुनौती दी गई है जो अपील सं. 208 के साथ संबद्ध है । सभी उक्त तथ्यों और लंबा समय बीत जाने को ध्यान में रखते हुए न्यायालय का यह मत है कि उच्च न्यायालय द्वारा अधिरोपित दंडादेश में कोई भी हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता । तदनुसार, न्यायालय यह अपील खारिज करता है और उच्च न्यायालय के आदेश की पुष्टि करता है । (पैरा 6, 7 और 11)

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2011 की दांडिक अपील सं. 207 और 208.

2007 की अपील सं. 6665 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तारीख 21 मई, 2010 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री सिद्धार्थ दवे

प्रत्यर्थी की ओर से श्री रत्नाकर दास (ज्येष्ठ अधिवक्ता)

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति रंजन गोगोई ने दिया ।

न्या. गोगोई – यह अपील 8 अपीलार्थियों ने फाइल की है जिसमें उन्होंने अन्य बातों के साथ इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तारीख 21 मई, 2010 को पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 235 के अधीन की गई दोषसिद्धि को चुनौती दी है और इन 8 अपीलार्थियों में से इस अपील के लंबित रहने के दौरान अपीलार्थी सं. 2 (शकील) और अपीलार्थी सं. 6 (हनीफ) की मृत्यु हो चुकी है । अतः, हम हमारे समक्ष प्रस्तुत शेष अपीलार्थियों के मामले पर ही विचार करेंगे ।

2. विद्वान् विचारण न्यायालय ने दंड संहिता की धारा 308 सहित अनेक उपबंधों के अधीन अपीलार्थियों की दोषसिद्धि की थी और अभियुक्त-अपीलार्थियों को संहिता की उपर्युक्त धाराओं के अधीन 4 वर्ष की अवधि का कठोर कारावास भोगने के लिए दंडादिष्ट किया । (इस आदेश के विरुद्ध) अपील किए जाने पर उच्च न्यायालय ने, छोटे अपराधों के लिए अधिनिर्णीत की गई दोषसिद्धि और दंडादेश को कायम रखते हुए दंड संहिता की धारा 308/149 के अधीन की गई दोषसिद्धि को दंड संहिता की धारा 325/149 के अधीन परिवर्तित कर दिया । 4 वर्ष की अवधि के कठोर कारावास को भी घटाकर एक वर्ष कर दिया । अपीलार्थियों ने वर्तमान अपील उच्च न्यायालय के इसी आदेश के विरुद्ध फाइल की है ।

3. हमने अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल श्री सिद्धार्थ दवे और प्रत्यर्थियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री रत्नाकर दास को सुना है ।

4. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने दृढ़तापूर्वक यह दलील दी है कि अभियुक्त-अपीलार्थियों ने अपनी प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का प्रयोग करते हुए कृत्य किए हैं क्योंकि शिकायतकर्ता पक्ष, जिसमें कुल मिलाकर 8 व्यक्ति थे, घेर पर अपना अधिकार दर्शाने आए थे जिसके स्वामित्व और कब्जे को लेकर पक्षकारों के बीच विवाद चल रहा था । उक्त आधार पर

यह दलील दी गई है कि अभियुक्तों को उनके द्वारा किए गए कृत्यों के आधार पर किसी भी अपराध के लिए आरोपित नहीं किया जा सकता है क्योंकि अभियुक्तों ने ये कृत्य आत्म प्रतिरक्षा के अधिकार का प्रयोग करते हुए किए हैं । अनुकल्पतः, यह दलील दी गई है कि यदि इस न्यायालय को यही अभिनिर्धारित करना है कि अभियुक्त-अपीलार्थी प्रश्नगत अपराध कारित करने के दोषी हैं, तब उक्त अपराधों का शमन किया जा सकता है और अभियुक्तों को यह निदेश दिया जा सकता है कि वे आहतों को प्रतिकर का संदाय करे । इसके अतिरिक्त यह भी दलील दी गई है कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 360 के उपबंधों का अवलंब लिया जा सकता है और अभियुक्तों की दोषसिद्धि कायम रखते हुए उन्हें अच्छे आचरण के आधार पर प्रोबेशन पर छोड़ा जा सकता है ।

5. राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने अपीलार्थियों की ओर से दी गई दलीलों का विरोध करते हुए यह तर्क दिया है कि अभियुक्तों को प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का फायदा नहीं दिया जा सकता क्योंकि दोनों पक्षकार विवादित घेर पर आए थे और दोनों गुटों के बीच आपस में कहासुनी और अंधाधुंध लड़ाई हुई । उपरोक्त तथ्य ऐसा तथ्य है जो विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित किया गया है और उसकी पुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा की गई है । प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि वर्तमान मामले के तथ्यों को दृष्टिगत करते हुए, दंड संहिता की धारा 325 के अधीन अपराध गंभीर होने और उच्च न्यायालय द्वारा अधिरोपित एक वर्ष के कठोर कारावास का दंडादेश पर्याप्त रूप से कम होने के कारण न तो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 320 और न ही धारा 360 के उपबंधों का अवलंब लिया जाना चाहिए ।

6. हमने पक्षकारों की ओर से दी गई दलीलों पर विचार किया है । हमने अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य और सामग्री का भी मूल्यांकन किया है । विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय ने समवर्ती रूप से यह अभिनिर्धारित किया है कि मुशर्रफ (अभि. सा. 2) और अमीर अहमद (अभि. सा. 1) को जो क्षतियां पहुंची हैं, वे आपस में हुई लड़ाई के दौरान अभियुक्तों द्वारा कारित की गई हैं । तथ्यों के उक्त निष्कर्ष का समर्थन अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य और सामग्री से भी होता है । अतः, इस न्यायालय के समक्ष अन्य किसी प्रतिकूल निष्कर्ष पर पहुंचने की कोई गुंजाइश नहीं है । उपरोक्त बातों से यह निष्कर्ष निकलता है कि अभियुक्तों को उनके द्वारा कारित किए गए अपराधों और उनके परिणामस्वरूप मुशर्रफ

(अभि. सा. 2) और अमीर अहमद (अभि. सा. 1) को पहुंची क्षतियों के लिए जिम्मेदार ठहराया जाना चाहिए ।

7. हमने अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य पर विचार किया है जिससे यह दर्शित होता है कि मुशर्रफ (अभि. सा. 2) के शरीर में अस्थिभंग हुआ था जिससे उसको पहुंची क्षति "घोर उपहति" अभिव्यक्ति के अंतर्गत आएगी, जैसाकि दंड संहिता की धारा 320 में उल्लेख किया गया है । अतः, उक्त अपराध के लिए दंड, दंड संहिता की धारा 325 के अधीन आएगा जिसमें जुर्माने के साथ 7 वर्ष तक की अवधि का कारावास अनुध्यात किया गया है । उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए, हमारी राय में, उच्च न्यायालय द्वारा अधिरोपित एक वर्ष की अवधि का कारावास बहुत ही कम है, इसलिए यह न्यायोचित नहीं होगा कि हम इसमें कोई हस्तक्षेप करें । आहत मुशर्रफ (अभि. सा. 2) और अमीर अहमद (अभि. सा. 1) जिन्हें इस अपील के साथ सुनवाई की जा रही अपील (2011 की दांडिक अपील सं. 208) में दर्शाया गया है, प्रश्नगत अपराध का शमन किए जाने के इच्छुक नहीं हैं । हमारी यह भी सुविचारित राय है कि वर्तमान मामले में कोई भी ऐसी विशेष परिस्थिति नहीं है जिसके आधार पर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 320 के उपबंधों का अवलंब लिया जा सके या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 के उपबंधों का अवलंब लेते हुए अपीलार्थियों को प्रोबेशन पर छोड़ा जा सके ।

8. उपर्युक्त कारणों के आधार पर, हमें इस अपील में कोई गुणता दिखाई नहीं देती है । परिणामतः यह अपील खारिज की जाती है और उच्च न्यायालय के निर्णय की पुष्टि की जाती है ।

2011 की अपील सं. 208

9. यह अपील दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित धारा 302 के अधीन की गई अभियुक्त-प्रत्यर्थियों की दोषसिद्धि को धारा 149 के साथ पठित धारा 304 भाग-II में किए जाने और आजीवन कारावास को कम करके अभियुक्त द्वारा अभिरक्षा में पहले से भोगे गए लगभग 2½ वर्ष के कारावास जितना किए जाने के विरुद्ध राज्य द्वारा फाइल की गई है । दंड संहिता के अधीन कतिपय अन्य अपराध भी हैं जिनके अधीन अभियुक्तों को दोषी पाया गया है और तदनुसार दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया गया है । तथापि, वे अपराध अधिक महत्वपूर्ण नहीं हैं और दंड संहिता की धारा 304 भाग-II के अधीन की गई दोषसिद्धि और अधिरोपित दंडादेश को ही मूल अपराध माना जाएगा ।

10. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री रत्नाकर दास ने यह दलील दी है कि राज्य वर्तमान अपील के विस्तार को न्यून किया है और दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित धारा 302 के अधीन की गई दोषसिद्धि को दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित धारा 304 भाग-॥ में परिवर्तित किए जाने की शुद्धता पर प्रश्न नहीं उठाया है । अतः, यह दलील दी गई है कि अभियुक्त-प्रत्यर्थियों पर अधिरोपित दंडादेश की शुद्धता को लेकर प्रश्न शेष रह जाता है जिसके अंतर्गत उनकी दोषसिद्धि को धारा 304 भाग-॥ में परिवर्तित करते हुए पहले से भोगे गए कारावास की अवधि जितना किया गया है । श्री दास ने यह दलील दी है कि अभियुक्त-प्रत्यर्थी ने अभिरक्षा में लगभग 2½ वर्ष की अवधि का कारावास भोगा है और चूंकि धारा 304 भाग-॥ के अधीन अधिरोपित अधिकतम दंड 10 वर्ष है, इसलिए अधिनिर्णीत दंड अत्यंत अनुचित है ।

11. राज्य की ओर से दी गई उपरोक्त दलील को विनिश्चित करने के लिए हमारे लिए यह आवश्यक नहीं है कि हम दंड देने की शक्ति की प्रकृति और उसका प्रयोग किए जाने के सिद्धांतों तथा मानकों के संबंध में अनुचित दंड दिए जाने को लेकर विस्तृत रूप से चर्चा करें । इस बात पर विचार किया जाना चाहिए कि यद्यपि उच्च न्यायालय के आदेश में विशेष रूप से उल्लेख नहीं किया गया है फिर भी यह स्पष्ट है कि यह घटना वर्ष 1997 में घटित हुई थी और यह कि आपस में लड़ाई होने के दौरान मृत्यु कारित हुई थी । शिकायतकर्ता पक्ष का विचारण भी उन क्षतियों के लिए किया गया है जो वर्तमान मामले के अभियुक्तों को कारित हुई थीं और शिकायतकर्ता पक्ष को दोषी पाया गया है और दंड संहिता की धारा 325 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया है और इसी दोषसिद्धि तथा अधिरोपित दंडादेश (एक वर्ष का कठोर कारावास) को 2011 की दांडिक अपील सं. 207 में चुनौती दी गई है जो अपील सं. 208 के साथ संबद्ध है । सभी उक्त तथ्यों और लंबा समय बीत जाने को ध्यान में रखते हुए हमारा यह मत है कि उच्च न्यायालय द्वारा अधिरोपित दंडादेश में कोई भी हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता । तदनुसार, हम यह अपील खारिज करते हैं और उच्च न्यायालय के आदेश की पुष्टि करते हैं ।

अपील खारिज की गई ।

अस.

प्रकाश और अन्य

बनाम

फूलवती और अन्य

16 अक्तूबर, 2015

न्यायमूर्ति अनिल आर. दवे और न्यायमूर्ति आदर्श कुमार गोयल

हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 (1956 का 30) – धारा 6 [सपठित हिंदू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2005 की धारा 6] – सहदायिकी संपत्ति में हित का न्यागमन – तारीख 9 सितंबर, 2005 को जीवित सहदायिकी की जीवित पुत्रियों को संशोधन के अधिकार लागू होंगे किंतु विभाजन सहित व्ययन या अन्यसंक्रामण जो तारीख 24 सितंबर, 2004 के पूर्व लागू विधि के अनुसार हुए हैं, पर संशोधित अधिनियम का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 14, 15 और 21 – महिला का अधिकार – लिंग विभेद – संविधान के अधीन महिलाओं को समानता तथा गरिमा का अधिकार दिए जाने के बावजूद महिलाओं विशेषकर मुस्लिम महिला के साथ विवाह-विच्छेद और दूसरे विवाह के संबंध में उन्हें अधिकारों से वंचित किया जाता है, ऐसा विभेद महिलाओं के आधारभूत संवैधानिक अधिकारों का अतिक्रमण करता है ।

वादी-प्रत्यर्थी ने वादान्तर्गत संपत्तियों के विभाजन और कब्जे के लिए अपर सिविल न्यायाधीश, बेलगाम के न्यायालय में वाद फाइल किया । वादी के पक्षकथन के अनुसार वाद संपत्तियों का अर्जन उसके मृत पिता अपनी दत्तकग्राही माता से विरासत द्वारा किया गया था । तारीख 18 फरवरी, 1988 को वादी के अर्जित पिता की मृत्यु के पश्चात् उसने यथा दावाकृत संपत्ति में अंश अर्जित किया । मुख्यतः इस अभिवाक् के साथ वाद का प्रतिवाद किया गया कि वादी केवल अपने मृत पिता की स्वअर्जित संपत्ति में ही अंश का दावा कर सकती है न कि संपूर्ण संपत्ति में । वाद के विचाराधीन रहने के दौरान वादी ने वाद पत्र का संशोधन किया जिससे कि वह 2005 के संशोधन अधिनियम सं. 39 के अनुसार अंश का दावा कर सके । विचारण न्यायालय ने वादी के पिता की मृत्यु पर सैद्धांतिक विभाजन के आधार पर कतिपय संपत्तियों में 1/28वें अंश के विस्तार तक और संपत्ति

के कुछ मदों पर कोई अंश न देते हुए वाद में भागतः डिक्री पारित की । प्रत्यर्थी-वादी ने इस शिकायत के साथ उच्च न्यायालय के समक्ष प्रथम अपील की कि वादी 2005 के संशोधन अधिनियम सं. 39 के अधीन सहदायिकी हो गई थी और अपने भाइयों के समान सहदायिकी संपत्ति को विरासत में लेने की हकदार हो गई है । प्रतिवादियों-अपीलार्थियों का यह आधार था कि वादी संयुक्त कुटुम्ब के सदस्यों की स्वअर्जित संपत्ति में किसी अंश का दावा नहीं कर सकती और यह कि वादी के दावे पर 2005 के अधिनियम सं. 39 द्वारा संशोधन के पूर्व यथा विद्यमान हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 6 के अधीन ही विचार किया जाना चाहिए । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि चाहे उपबंध भविष्यलक्षी था फिर भी यह लंबित कार्यवाहियों को निश्चित रूप से लागू होता है । प्रतिवादी-अपीलार्थियों ने उच्च न्यायालय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा इसी विषय से संबंधित अन्य अपीलों के साथ इस अपील का निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – हिंदू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2005 के संशोधन पाठ में ही स्पष्ट रूप से यह उपबंध किया गया है कि "सहदायिकी की पुत्री" को प्रदत्त अधिकार हिंदू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2005 के प्रारंभ से है । धारा 6(3) संशोधन के लागू होने के पश्चात् हुई मृत्यु के बारे में है । कानून की स्पष्ट भाषा को ध्यान में रखते हुए संशोधन के पाठ द्वारा इंगित से भिन्न निर्वचन की कोई गुंजाइश नहीं है । किसी अधिष्ठायी उपबंध का संशोधन हमेशा भविष्यलक्षी होता है जब तक अभिव्यक्त रूप से या आवश्यक आशय द्वारा यह भूतलक्षी न हो । इस मामले में संशोधित उपबंध का भूतलक्षी प्रभाव देने का न तो कोई अभिव्यक्त उपबंध है न ही उस आशय का कोई अर्थान्वयन है । ऐसा विभाजन जो विधि के प्रवर्तन द्वारा हुआ है, की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए विभाजन को रजिस्ट्रीकृत करने की अपेक्षा को संशोधित उपबंध के अनुसार उत्तराधिकार के उद्भूत होने पर कानूनी सैद्धांतिक विभाजन को लागू नहीं किया जा सकता । संशोधन के आशय और प्रभाव पर बाद में विचार किया जाएगा । इस निष्कर्ष पर उच्च न्यायालय के मत को कायम नहीं रखा जा सकता । प्रत्यर्थियों की यह दलील कि संशोधन को सामाजिक विधान के भाग के रूप में भूतलक्षी प्रभाव से पढ़ा जाए, स्वीकार नहीं की जा सकती । इस प्रकार उपबंधित या विधायिका द्वारा इस प्रकार आशयित के बिना ऐसे सामाजिक विधान को भूतलक्षी प्रभाव नहीं दिया जा सकता । वर्तमान मामले में, विधायिका ने संशोधन को अभिव्यक्त रूप से इसके प्रारंभ से ही

और केवल यदि प्रश्नगत सहदायिकी की मृत्यु संशोधन के पश्चात् हुई है, को लागू किया है । इस प्रकार कानून की अभिव्यक्त भाषा को ध्यान में रखते हुए, कोई भिन्न निर्वचन संभव नहीं है । तारीख 20 दिसंबर, 2004 के पूर्व व्ययन या अन्यसंक्रामण या विभाजन से संबंधित उपबंध को अप्रभावित रखने वाले परंतुक से भी यह निष्कर्ष नहीं निकल सकता है कि पुत्री अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व से सहदायिकी हो सकती है । परंतुक का केवल यह अभिप्राय है कि तब तक न हुए संव्यवहार सहदायिकी संपत्ति के विस्तार को प्रभावित नहीं करेंगे जो उस समय उपलब्ध हों जब मुख्य उपबंध लागू हुआ । इसी प्रकार तारीख 20 दिसंबर, 2004 के पश्चात् हुए विभाजन के संव्यवहार तक सीमित रखते हुए धारा 6(5) के अधिष्ठायी उपबंध के साथ स्पष्टीकरण को सामंजस्यपूर्ण ढंग से पढ़ा जाना चाहिए । अपनी प्रकृति से ही सैद्धांतिक विभाजन परंतुक के अधीन या उपधारा (5) के अधीन या स्पष्टीकरण के अधीन नहीं आता है । किसी उपबंध का निर्वचन पाठ और संदर्भ पर निर्भर करता है । सामान्य नियम के अनुसार किसी कानून के शब्दों का साधारण अर्थ निकाला जाना है । संदिग्धता की दशा में, तार्किक अर्थ निकाला जाना चाहिए । प्रकट विरोध की दशा में विधायिका के उद्देश्य और आशय को पूरा करने के लिए सामंजस्यपूर्ण अर्थ निकाला जाना चाहिए । ऐसे कई अवसर उद्भूत हुए जब किसी परंतुक या स्पष्टीकरण का निर्वचन का विषय सामने प्रस्तुत किया गया । पाठ, संदर्भ और प्रयोजन के आधार पर निर्वचन के भिन्न-भिन्न नियम लागू किए गए । सामान्य नियम यह है कि परंतुक ऐसी अधिनियमिति से कुछ बात छोड़ देता है जो अन्यथा अधिनियमिति की परिधि के भीतर है किंतु यदि पाठ, संदर्भ या प्रयोजन इस प्रकार अपेक्षा करता है तो भिन्न नियम लागू किया जा सकेगा । इसी प्रकार स्पष्टीकरण धारा के शब्दों के अर्थ स्पष्ट करने के लिए है किंतु यदि भाषा या प्रयोजन इस प्रकार अपेक्षा करती है तो स्पष्टीकरण का ऐसा निर्वचन किया जा सकता है । कानून के निर्वचन के नियम उपयोगी अनुचर हैं किंतु कठिन अधिपति । निर्वचन का उद्देश्य विधायिका के आशय का पता लगाना है । इस पृष्ठभूमि में न्यायालय यह पाता है कि धारा 6(1) का परंतुक और धारा 6 की उपधारा (5) का आशय स्पष्टतः उसमें निर्दिष्ट संव्यवहारों को अपवर्जित करना है, जो तारीख 20 दिसंबर, 2004 जिस तारीख को विधेयक पुरःस्थापित किया गया के पूर्व किए गए हों । स्पष्टीकरण ऐसे विभाजनों को पुनः खोलने की अनुज्ञा नहीं दे सकता जो उस समय विधिमान्य थे जब प्रभावी हुए । तारीख 20 दिसंबर, 2004 के पूर्व संव्यवहारों को अंतिमतः देने का उद्देश्य किसी भी

दशा में मुख्य उपबंध को भूतलक्षी बनाना नहीं है । उद्देश्य यह है कि जाली संव्यवहारों द्वारा विधेयक के पुरःस्थापन पर उपलब्ध संपत्ति को न लिया जाए और तब उपलब्ध रहे जब कानून द्वारा प्रदत्त अधिकार उपलब्ध हो और प्रवृत्त किया जाए । धारा 6(1) और (3) के संशोधन का मुख्य उपबंध का आशय किसी भी तरह से प्रभावित करना नहीं है बल्कि इस तरह से मजबूत करना है । अपीलार्थियों द्वारा अवलंबित ऐसे संव्यवहारों को लागू करने वाले स्थिर सिद्धांतों का आशय तारीख 20 दिसंबर, 2004 के पूर्व अवधि के लिए दूर करना नहीं है । किसी भी दशा में तारीख 20 दिसंबर, 2004 के पूर्व भी कानूनी सैद्धांतिक विभाजन को प्रश्नगत स्पष्टीकरण या परंतुक द्वारा समाहित नहीं किया जा सकता । तदनुसार, न्यायालय यह अभिनिर्धारित करता है कि संशोधन के अधीन अधिकार इस बात की परवाह किए बिना कि ऐसी पुत्रियों का जन्म कब हुआ, तारीख 9 सितंबर, 2005 को जीवित सहदायिकियों की जीवित पुत्रियों को लागू हों । व्ययन या अन्यसंक्रामण जिसके अंतर्गत विभाजन है जो उक्त तारीख के पूर्व लागू विधि के अनुसार तारीख 20 दिसंबर, 2004 के पहले हुए हैं, अप्रभावित बने रहेंगे । इसके पश्चात् हुए विभाजन के किसी संव्यवहार को स्पष्टीकरण लागू होगा । (पैरा 17, 18, 19, 20, 21, 22 और 23)

लिंग विभेद का एक महत्वपूर्ण विवाद्यक जो यद्यपि इस अपील में प्रत्यक्षतः अंतर्वलित नहीं है, पक्षकारों के कुछ विद्वान् काउंसेलों द्वारा उठाया गया है जो मुस्लिम महिला के अधिकारों के बारे में है । लिंग विभेद पर चर्चा से यह मुद्दा भी उभरता है । यह इंगित किया गया कि संविधान की प्रत्याभूति के बावजूद मुस्लिम महिलाएं विभेद से ग्रस्त हैं । प्रथम विवाह के दौरान अपने पति के मनमाने विवाह-विच्छेद और दूसरे विवाह के विरुद्ध कोई सुरक्षोपाए नहीं है जिससे उसकी गरिमा और सुरक्षा का हनन होता है । यद्यपि यह मुद्दा अहमदाबाद वुमेन एक्सन ग्रुप (ए. डब्ल्यू. ए. जी.) बनाम भारत संघ वाले मामले में इस न्यायालय के समक्ष उठाया गया । इस न्यायालय ने इस मताभिव्यक्ति के साथ विभेद के गुणदोष पर विचार नहीं किया कि मुद्दे में राज्य की नीति अंतर्वलित है जिस पर विधायिका द्वारा विचार किया जाना है । यह मत व्यक्त किया गया कि मुस्लिम महिला (विवाह-विच्छेद पर अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 1986 की चुनौती संविधान न्यायपीठ के समक्ष लंबित है और ऐसे मुद्दे पर कार्यवाहियों को बढ़ाने का कोई कारण नहीं है । यह इंगित किया गया कि मामले पर इस न्यायालय द्वारा विचार किए जाने की आवश्यकता है क्योंकि मुद्दा न केवल नीतिगत विषय से संबंधित है किंतु अनुच्छेद 14, 15 और 21 के अधीन

और अंतरराष्ट्रीय कन्वेंशन और प्रसंविदाओं के अधीन महिलाओं के मूल अधिकारों से भी संबंधित है । न्यायालय के लिए मामले पर विचार न करने के कारणों में से एक कारण संविधान न्यायपीठ के समक्ष मुद्दे की विचाराधीनता है जो डैनियल लतीफी बनाम भारत संघ वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा विनिश्चित किया गया है । संविधान न्यायपीठ ने उक्त मुद्दे पर विचार नहीं किया किंतु न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अनुच्छेद 30 के अंतर्गत गरिमा के साथ जीने का अधिकार सम्मिलित है जो इस अभिवाक् का समर्थन करता है कि मुस्लिम महिला ऐसे मामलों में मूल अधिकारों का अवलंब ले सकती है । जाबेद बनाम हरियाणा राज्य वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने यह मत व्यक्त किया कि बहु-विवाह की प्रथा सार्वजनिक नैतिकता के लिए हानिकर है और "सती" की प्रथा की तरह राज्य द्वारा इसका अधिक्रमण किया जा सकता है । आगे यह मत व्यक्त किया गया कि धर्म की परवाह किए बिना एक विवाह का उपबंध करने वाले आचरण नियम विधिमान्य हैं और मुसलमानों की स्वीय विधि के अतिलंघन के आधार पर अभिखंडित नहीं किया जा सकता । जॉन बल्लामेटम बनाम भारत संघ वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया कि पूर्त प्रयोजन के लिए बिल बनाने हेतु क्रिश्चियनों के अधिकार को निर्बंधित करने वाली भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 118 का कोई तार्किक आधार नहीं था और क्रिश्चियनों के विरुद्ध विभेदकारी थी और अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण करती थी । विवाह और उत्तराधिकार से संबंधित विधियां धर्म के भाग नहीं हैं । विधि का समय के साथ-साथ परिवर्तन करना चाहिए । किसी उपबंध की विधिमान्यता और युक्तियुक्तता की परीक्षा के लिए अंतरराष्ट्रीय परिसंविदाओं और संधियों को निर्दिष्ट किया जा सकता है । चारु खुराना बनाम भारत संघ वाले मामले में इस न्यायालय ने फिल्म उद्योग में "सिनेमा पोसाक सजावट कलाकार और केश सजावट संगम" की सदस्यता के इनकार के मामले में लिंग विभेद के मुद्दे पर विचार किया । यह अभिनिर्धारित किया गया कि ऐसा विभेद आधारभूत संवैधानिक अधिकारों का अतिक्रमण करता है । इस प्रकार यह निवेदन किया गया कि मामले के इस पहलू पर लोकहित बाद (पी आई एल) के रूप में मामले को रजिस्ट्रीकृत करके पृथक्तः विचार किया जाना चाहिए । न्यायालय का यह मत है कि इस न्यायालय के पूर्व विनिश्चयों को ध्यान में रखते हुए सुझाव पर विचार किए जाने की आवश्यकता है । इस विषय पर प्रेस में लिखे गए हाल ही के लेखों में भी मुद्दे को उजागर किया गया है । (पैरा 27, 28, 29 और 30)

विनिर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2015]	(2015) 1 एस. सी. सी. 192 : **चारु खुराना** बनाम **भारत संघ** ;	29
[2014]	ए. आई. आर. 2014 बम्बई 151 (पैरा 40-57) : **बद्रीनारायण शंकर भंडारी** बनाम **ओम प्रकाश शंकर भंडारी** ;	26
[2013]	(2013) 10 एस. सी. सी. 211 (पैरा 18) : **वी. के. सुरेन्द्र** बनाम **वी. के. थिम्मइया** ;	25
[2012]	ए. आई. आर. 2012 बम्बई 101 (पैरा 13 से 37) : **वैशाली सतीश गनोरकर** बनाम **सतीश केशव राव गनोरकर** ;	26.2
[2011]	(2011) 9 एस. सी. सी. 788 : **गांदूरी कोटेश्वरम्मा** बनाम **चाकिरी यनादी** ;	25
[2011]	(2011) 6 एस. सी. सी. 462 : **प्रेमा** बनाम **नानजे गौडा** ;	25
[2009]	आई. एल. आर. 2009 कर्नाटक 3612 : **एम पृथ्वीराज** बनाम **नीलम्मा एन.** ;	7
[2009]	(2009) 6 एस. सी. सी. 99 (पैरा 30) : **जी. शेखर** बनाम **गीता** ;	26
[2006]	(2006) 8 एस. सी. सी. 581 : **शीला देवी** बनाम **लालचंद** ;	26
[2005]	ए. आई. आर. 2005 मद्रास 250 : **बगीरथी** बनाम **एस. मनीवानन** ;	26
[2003]	(2003) 6 एस. सी. सी. 611 : **जॉन बल्लामेटम** बनाम **भारत संघ** ;	28
[2003]	(2003) 8 एस. सी. सी. 369 : **जाबेद** बनाम **हरियाणा राज्य** ;	28
[2002]	(2002) 2 एस. सी. सी. 645 : **पश्चिमी उत्तर प्रदेश चीनी मिल संगम** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ;	25.8

[2001] (2001) 7 एस. सी. सी. 740 :
डैनियल लतीफी बनाम **भारत संघ** ; 28

[2001] (2001) 7 एस. सी. सी. 358 :
जिला खान अधिकारी बनाम **टाटा लौह और इस्पात कंपनी** ; 19

[2001] (2001) 3 एस. सी. सी. 179 (पैरा 15) :
संतोष हजारी बनाम **पुरुषोत्तम तिवारी** ; 26.3

[1997] (1997) 3 एस. सी. सी. 573 :
अहमदाबाद वुमेन एक्सन ग्रुप (ए.डब्ल्यू.ए.जी.) बनाम **भारत संघ** ; 27

[1996] (1996) 5 एस. सी. सी. 125 :
मधुकेश्वर बनाम **बिहार राज्य** ; 27

[1996] (1996) 5 एस. सी. सी. 60 :
राजस्थान राज्य बनाम **मांगी लाल पिन्डवाल** ; 25.8

[1995] (1995) 3 एस. सी. सी. 635 :
सरला मुदगल बनाम **भारत संघ** ; 27

[1995] (1995) 2 (सप्ली.) एस. सी. सी. 428 (पृष्ठ 430) :
दिगम्बर आधार पाटिल बनाम **देवराम गिरधर पाटिल** ; 26.3

[1994] (1994) 6 एस. सी. सी. 342 (पैरा 7) :
श्यामा देवी बनाम **मंजू शुक्ला** ; 26.1

[1991] (1991) 3 एस. सी. सी. 647 :
एस साई रेड्डी बनाम **एस. नारायण रेड्डी** ; 25

[1990] (1990) 2 एस. सी. सी. 231 :
केशवजी रावजी एंड कंपनी बनाम **सी. आई. टी.** ; 21

[1988] (1988) 3 एस. सी. सी. 609 :
केहर सिंह बनाम **राज्य** ; 19

[1987] (1987) 1 एस. सी. सी. 424 (पैरा 33) :
आर. बी. आई. बनाम **पियरलेस** ; 19

[1985] (1985) 1 एस. सी. सी. 591 :
एस. सुन्दरम पिल्लै बनाम **आर. पट्टाबिरामन** ; 20

[1985]	(1985) 2 एस. सी. सी. 321 (पैरा 8 से 10) : **महाराष्ट्र राज्य** बनाम **नारायण राव** ;	25
[1985]	(1985) 1 एस. सी. सी. 270 : **लक्ष्मी नारायण गुईं** बनाम **निरंजन मोदक** ;	25
[1978]	(1978) 3 एस. सी. सी. 383 (पैरा 6, 11 और 13) : **गुरुपद खन्दप्पा मग्दूम** बनाम **हीराबाई खन्दप्पा मग्दूम** ;	26.1
[1976]	(1976) 3 एस. सी. सी. 119 (पैरा 9) : **काले** बनाम **उप चकबंदी अधिकारी** ;	26.3
[1974]	(1974) 2 एस. सी. सी. 363 : **अमरजीत कौर** बनाम **प्रीतम सिंह** ;	25
[1969]	1969 (2) एम. एल. जे. 277 : **कन्नाइयन** बनाम **सहायक केंद्रीय उत्पाद कलेक्टर** ;	26.4
[1966]	[1966] 3 एस. सी. आर. 275 : **दयावती** बनाम **इंदरजीत** ;	25
[1965]	[1965] 2 एस. सी. आर. 100 : **सी. आई. टी. गुजरात** बनाम **केश्वलाल लल्लूभाई पटेल** ;	26.4
[1963]	[1963] 3 एस. सी. आर. 858 : **राम सरुप** बनाम **मुंशी** ;	25
[1954]	ए. आई. आर. 1954 बम्बे 47 (पैरा 4) : **शिवप्पा लक्ष्मण** बनाम **येल्लवा शिवप्पा शिवगान्नावर** ;	26.4
[1945]	ए. आई. आर. 1945 एफ. सी. 25 [31(घ) पर] : **उमयाल अची** बनाम **लक्ष्मी अची** ।	26.4

अनुसरित निर्णय

[2006]	(2006) 8 एस. सी. सी. 656 (पैरा 10,11) : **अनार देवी** बनाम **परमेश्वरी देवी** ;	26.1
[2001]	(2001) 8 एस. सी. सी. 24 (पैरा 22 से 27) : **श्याम सुन्दर** बनाम **राम कुमार** ।	14, 17

अपीली (सिविल) अधिकारिता : **2013 की सिविल अपील सं. 7217 के साथ 2008 की विशेष इजाजत याचिका (सिविल) सं. 21814, 2010 की 18744, 2010 की 28702-28703, 2011 की 28471, 2012 की 4217-4218, 2013 की 1299-1300, 2013 की 17577-17578, 2014 की 19816, 2015 की 5619, 2008 की 3805, 2015 की 9390, 2015 की 5680, 2011 की 35209 और 2015 की 15557-15558 तथा 2015 की एस. एल. पी. (सी.) सं. 15560.**

2007 की नियमित प्रथम अपील संख्या 743 में कर्नाटक उच्च न्यायालय के धारवार सर्किट न्यायपीठ के खंड न्यायपीठ के तारीख 16 अप्रैल, 2010 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री आर. बसंत, आर. वेंकटरमनी, हुजेफा अहमदी, ज्येष्ठ अधिवक्ता, एन. एन. भाटी, रवि पन्वार, डी. पी. चतुर्वेदी, सुशील करंजकार, कार्तिक अशोक, (के. एन. राय की ओर से), अल्जो के. जोसेफ, (सुश्री) नीलम सिंह, शेल्ना के., रोहन शर्मा, यशराज बुंदेला, (श्रीमती सुधा गुप्ता की ओर से), अजीम ए. कलेबुद्दे, अंकोलेकर गुरुदत्त, चारुदत्त महिन्द्राकर, ए. सेल्वीन राजा, (अनिरुद्धा पी. माई की ओर से), पी. आर. कोवीलन पुंगकुंतरण, नंद किशोर, गिरीश अनंथामुर्ति, (श्रीमती वैजयंती गिरीश की ओर से), (श्रीमती) एस. उषा रेड्डी, राजेश महल, राघवेन्द्र एस.

श्रीवत्स, पी. आर. रामासेश और जी. बालाजी

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री बासवा प्रभू एस. पाटिल, सुशील कुमार जैन, पी. विश्वनाथ शेट्टी, ज्येष्ठ अधिवक्ता, बी. सुब्रह्मण्या प्रसाद, अनिरुद्ध संगनेरिया, चिन्मय देशपांडे, अमजीद मकबूल, एस. एम. जाधव, पुनीत जैन, (सुश्री) आस्था दीप, अनीश आर. शाह, (सुश्री) अंकिता गुप्ता, मनू महेश्वरी, अभिनव गुप्ता, अश्विन कोतेमथ, (मैसर्स एस. एम. जाधव एंड कंपनी की ओर से), महेश ठाकुर, दीपक एस. शेट्टी, (जी. एन. रेड्डी की ओर से), टी. एन. रघुपती, जी. वी. चंद्रशेखर, अलख आलोक श्रीवास्तव, केदार नाथ त्रिपाठी, मंजूनाथ मेलेद, अनिल कुमार, (सुश्री) निवेदिता शर्मा, (सुश्री गरिमा प्रसाद की ओर से) एम. वाई. देशमुख, मानू मृदुल, (सुश्री) प्रियम्बदा शर्मा, (सूर्यकांत की ओर से) मयंक के. श्रीसागर, बालाजी श्रीनिवासन, (सुश्री) वैशनवी सुब्रहमनयम, (सुश्री) सृष्टि गोविल, विरेन्द्र शर्मा, तुषार सिंह, अलोक कृष्णा अग्रवाल, मयंक बुघानी, टी. महिपाल, रॉफ रहीम, शशीभूषण पी. अदगांकर, सोमिरन शर्मा, सुमित लाल, राजिन्द्र माथुर, शंकर दिवाते, (श्रीमती) के. सारदा देवी, अशोक कुमार गुप्ता और (सुश्री) ई. आर. सुमथी, अधिवक्ता

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति आदर्श कुमार गोयल ने दिया ।

न्या. गोयल – इन मामलों में केवल यह मुद्दा उठाया गया है कि क्या हिंदू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2005 (संक्षेप में "संशोधन अधिनियम") भूतलक्षी प्रभाव से लागू होगा । **फूलवती** बनाम **प्रकाश**[1] वाले मामले में के आदेशित निर्णय में, भूतलक्षिता के अभिवाक् को प्रत्यर्थियों के पक्ष में अभिनिर्धारित किया गया है जिससे अपीलार्थी व्यथित हैं ।

2. इस न्यायालय में संबद्ध मामलों को मुख्यतः उक्त विधिक मुद्दे के कारण ग्रहण किया गया है, विशेषकर जब उच्च न्यायालयों के मत भिन्न-भिन्न हैं जिससे यह आवश्यक है कि इस मुद्दे का विनिश्चय इस न्यायालय द्वारा किया जाए । विभिन्न अन्य मुद्दों पर निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों की शुद्धता या व्यक्तिगत मामले के तथ्य पर विचार करना आवश्यक नहीं है । सुनवाई के दौरान यह स्पष्ट किया गया कि विधिक मुद्दे पर विनिश्चय करने के पश्चात् सभी अन्य पहलुओं का विनिश्चय इस न्यायालय के निर्णय के आलोक में पृथक्तः किया जा सकेगा ।

3. उक्त विधिक प्रश्न का विनिश्चय करने के प्रयोजन के लिए ही हम 2013 की सिविल अपील सं. 7217 के तथ्यों का संक्षेप में उल्लेख करते हैं । प्रत्यर्थी-वादी फूलवती ने अनुसूची "क" जिसमें 1/28वें भाग की मांग की गई थी, में वर्णित सी.टी.ए. सं. 3241 की संपत्ति के सिवाय अनुसूची "क" से अनुसूची "छ" की वाद संपत्ति में सातवें अंश के विस्तार तक विभाजन और पृथक् कब्जा के लिए अपर सिविल न्यायाधीश (सीनियर डिवीजन) के समक्ष मूल वाद सं. 12/1992 का वाद फाइल किया ।

4. वादी के पक्षकथन के अनुसार वाद संपत्तियों का अर्जन उसके मृत पिता यशवंत चंद्रकांत उपाध्याय द्वारा अपनी दत्तकग्राही माता श्रीमती सुनंदाबाई से विरासत द्वारा प्राप्त किया गया था । तारीख 18 फरवरी, 1988 को उसके पिता की मृत्यु के पश्चात् उसने यथा दावाकृत संपत्ति में अंश अर्जित किया ।

5. मुख्यतः इस अभिवाक् के साथ वाद का प्रतिवाद किया गया कि वादी केवल अपने मृत पिता की स्वअर्जित संपत्ति में ही अंश का दावा कर सकती है न कि संपूर्ण संपत्ति में । वाद के विचाराधीनता के दौरान वादी ने वाद पत्र का संशोधन किया जिससे कि वह 2005 के संशोधन अधिनियम

---

[1] ए. आई. आर. 2011 कर्नाटक 78.

सं. 39 के अनुसार अंश का दावा कर सके । विचारण न्यायालय ने भागतः उसके पिता की मृत्यु पर सैद्धांतिक विभाजन के आधार पर कतिपय संपत्तियों में 1/28वें अंश के विस्तार तक और संपत्ति के कुछ मदों पर कोई अंश नहीं दिया गया जबकि विचारण न्यायालय के निर्णय में वर्णन के अनुसार कुछ अन्य संपत्तियों में 1/7वें अंश तक वाद की डिक्री की ।

6. प्रत्यर्थी-वादी ने इस शिकायत के साथ उच्च न्यायालय के समक्ष प्रथम अपील की कि वादी 2005 के संशोधन अधिनियम सं. 39 के अधीन सहदायिकी हो गई और संपत्ति के कुछ मदों में व्यक्तिगत दावे पर आधारित दलीलों के अलावा अपने भाइयों के समान सहदायिकी संपत्ति को विरासत में लेने की हकदार हो गई ।

7. प्रतिवादियों-अपीलार्थियों का यह आधार था कि वादी संयुक्त कुटुम्ब के सदस्यों की स्वअर्जित संपत्ति में किसी अंश का दावा नहीं कर सकती और यह कि वादी के दावे पर 2005 के अधिनियम सं. 39 द्वारा संशोधन के पूर्व यथा विद्यमान हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 6 के अधीन ही विचार किया जाना चाहिए । प्रतिवादियों ने यह अधिकथित करने वाले **एम. पृथ्वीराज** बनाम **नीलम्मा एन.**[1] वाले मामले में उच्च न्यायालय के खंड न्यायपीठ के निर्णय का अवलंब लिया कि यदि वादी के पिता की मृत्यु 2005 के अधिनियम सं. 39 के प्रारंभ के पूर्व हो गई थी तो संशोधित उपबंध लागू नहीं हो सकते । यह उत्तराधिकार आरंभ होने की तारीख को ही लागू होगी जब यह विधि प्रवृत्त हुई ।

8. उच्च न्यायालय ने इस पहलू पर विचार के लिए निम्नलिखित प्रश्न विरचित किया :–

> "(ii) क्या वादी 2005 के अधिनियम सं. 39 द्वारा यथासंशोधित हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 6 के निबंधनानुसार अंश का हकदार है ?"

9. यह अभिनिर्धारित किया गया कि संशोधन लंबित कार्यवाहियों को भी लागू है, चाहे यह भविष्य प्रभावी हो । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया :–

> "61. इस बाबत विधि जी. शेखर **बनाम** गीता और अन्य, [(2009) 6 एस. सी. सी. 99 वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के

---

[1] आई. एल. आर. 2009 कर्नाटक 3612.

निर्णय के निबंधनानुसार सुस्थिर है । विधि का कोई विकास अनिवार्यतः लंबित कार्यवाही को भी लागू होता है और वस्तुतः इसे विधि के भूतलक्षी प्रभाव होने के रूप में नहीं लिया जाना चाहिए किंतु ऐसी विधि जो लागू होने की तारीख को अस्तित्व में है ।

62. निःसंदेह वाद वर्ष 1999 में संस्थित किया गया था और यदि यह माना जाए तो यह यशवंत चंद्रकांत उपाध्याय की मृत्यु के चार वर्ष पश्चात् था । ऐसी स्थिति 2005 के अधिनियम सं. 39 द्वारा यथा संशोधित धारा 6 के निबंधनानुसार जहां तक पक्षकारों का संबंध है, जो संयुक्त कुटुम्ब के सदस्य हैं, यह है कि महिला सदस्य संशोधित उपबंध के निबंधनानुसार सृजित विधि की कल्पना द्वारा सहदायिकी हो जाती है और जन्म से संयुक्त कुटुम्ब संपत्ति में संपत्ति की हकदार है । वह सभी पुरुष सदस्यों के समान सहदायिकी संपत्ति की अंश सदस्यता के प्रापक हैं । जब विभाजन होता है तो सहदायिकी समान मापमान में संपत्ति प्राप्त करते हैं । 2005 के अधिनियम सं. 39 द्वारा यथासंशोधित हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 6 के निबंधनानुसार और **जी. एस. शेखर** (पूर्वोक्त) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा यथा घोषित यही विधिक स्थिति है । 2005 के अधिनियम सं. 39 द्वारा यथासंशोधित हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 6 की उपयोज्यता और प्रवर्तन का एक ही अपवाद है कि जहां ऐसी स्थिति या तथ्यात्मक स्थिति हो कि कोई विभाजन था जो रजिस्ट्रीकृत विभाजन विलेख या न्यायालय की डिक्री द्वारा प्रभावी हुआ था जो धारा 6 की उपधारा (5) के निबंधनानुसार तारीख 20 दिसंबर, 2004 के पूर्व अंतिमतः प्राप्त कर ली है ।

63. वर्तमान मामले में ऐसी तथ्यात्मक स्थिति न होने के कारण, धारा 6 की उपधारा (5) के अधीन उपलब्ध अपवाद को प्रतिवादियों द्वारा सहायता के लिए अवलंब नहीं लिया जा सकता अतः संशोधित उपबंधों के निबंधनानुसार दायित्व प्रवर्तित रहता है । हमारे लिए पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों द्वारा न्यायालय के समक्ष निर्दिष्ट और अवलंबित अन्य निर्णयों की गहराई में जाने या चर्चा करके निर्णय को विस्तृत करना आवश्यक नहीं है, क्योंकि जब उच्चतम न्यायालय का एक ही निर्णय विवाद्यक पर लागू होता है तब हमारे लिए आबद्धकर नजीर के रूप में वह विधि लागू करें और उस सुनाए गए निर्णय के अनुसार मामले का निपटान करना और भी

बेहतर है ।"

10. प्रत्यर्थी वादी को तदनुसार अनुसूची "क" से "घ" के सभी मदों में सातवें अंश का हकदार ठहराया गया । अनुसूची "च" की बाबत पहला मद वादी द्वारा छोड़ दिया गया । अन्य दो मदों में से, उसे मद सं. 2 में सातवें अंश और मद सं. 3 में 40% स्वामित्व के सातवें अंश का हकदार ठहराया गया ।

11. प्रतिवादी अपीलार्थियों ने इस दलील के साथ उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश को प्रश्नगत किया है कि धारा 6 का संशोधित उपबंध वर्तमान मामले में लागू नहीं होता है । वादी के पिता की मृत्यु तारीख 18 फरवरी, 1988 को हुई, इस प्रकार वह संशोधित अधिनियम के प्रारंभ की तारीख को सहदायिकी नहीं थी । वादी अधिनियम के प्रारंभ की तारीख को "सहदायिकी की पुत्री" होने का दावा नहीं कर सकती जो फायदे का दावा करने की आवश्यक शर्त थी । तारीख 18 फरवरी, 1988 को वादी के पिता की मृत्यु पर सैद्धांतिक विभाजन हुआ और वारिसों के अंश स्पष्ट किए गए जिससे पक्षकारों में निहित अधिकार सृजित हुआ । ऐसे निहित अधिकार को व्यक्त उपबंध या उस प्रभाव के आवश्यक आशय के अभाव में पश्चात्वर्ती संशोधन द्वारा छीना नहीं जा सकता । तथापि, स्वयं संशोधनकारी उपबंध संशोधन अधिनियम के प्रारंभ अर्थात् तारीख 9 सितंबर, 2005 "को और से" से अभिव्यक्ततः लागू था । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि चाहे उपबंध भविष्यलक्षी था फिर भी यह लंबित कार्यवाहियों को निश्चित रूप से लागू हो सकता है जैसा यह इस न्यायालय के कुछ विनिश्चयों में अभिनिर्धारित किया गया है । यह इंगित किया गया कि संशोधन केवल तभी लंबित कार्यवाहियों को लागू हो सकता है, यदि संशोधन लागू होता है ।

12. प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त पूर्ण रूप से किए गए मत का समर्थन किया ।

13. हमने इस अपील और परस्पर विरोधी मत जिसका उल्लेख हम इसके पश्चात् करेंगे के लिए संबद्ध मामले के पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुना ।

14. अपीलार्थियों और उक्त मत का समर्थन करने वाले विद्वान् काउंसेल की ओर से उठाई गई दलील यह है कि 2005 संशोधन पुत्री के

दावे को लागू नहीं होता जब उसका पिता जो संयुक्त हिंदू कुटुम्ब का सहदायिकी था की मृत्यु तारीख 9 सितंबर, 2005 के पूर्व हो गई थी । यह निवेदन कानून की स्पष्ट भाषा और स्थापित सिद्धांत पर आधारित है कि व्यक्त उपबंध या प्रतिकूल विवक्षित आशय के अभाव में, अधिष्ठायी अधिकार से संबंधित संशोधन का भविष्यलक्षी प्रभाव है और निहित अधिकारों को प्रभावित नहीं करता (**श्याम सुन्दर** बनाम **राम कुमार**[1] वाला मामला देखें) । यदि ऐसे सहदायिकी की मृत्यु संशोधन अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व हो गई थी तो उत्तराधिकार, उत्तराधिकार विधि के लागू उपबंध के अनुसार मृत्यु की तारीख को प्रारंभ होता है और वारिसों के अधिकार स्पष्ट हो जाते हैं चाहे माप और सीमांकन द्वारा विभाजन न हुआ हो । यह इंगित किया गया कि धारा 6(5) की स्पष्टीकरण और उक्त धारा के प्रकट परस्पर प्रतिकूल उपबंध को मुख्य उपबंध से सौहार्दपूर्ण अर्थान्वयन किए जाने की अपेक्षा थी । स्पष्टीकरण को मुख्य उपबंध से प्रतिकूल नहीं कहा जा सकता । धारा 6(1) का मुख्य उपबंध सहदायिकी का पुत्री को अधिकार केवल अधिनियम के प्रारंभ से प्रदान करता है न कि उससे पूर्व किसी अवधि से । धारा 6(1) का उपबंध तभी लागू होता है जहां धारा 6(5) का मुख्य परंतुक लागू होता है । चूंकि धारा 6(5) तारीख 20 दिसंबर, 2004 के पश्चात् हुए विभाजन को लागू होती है । इसलिए उक्त परंतुक और स्पष्टीकरण भी तभी लागू होता है जब धारा 6(1) लागू होती है । यह भी निवेदन किया गया है कि स्पष्टीकरण मात्र साक्ष्य का नियम है न कि पक्षकारों के अधिकारों को अवधारित करने का अधिष्ठायी उपबंध । पुत्री का सहदायिकी होने की तारीख अधिनियम के प्रारंभ से ही है । तारीख 20 दिसंबर, 2004 के पूर्व हुआ विभाजन व्यक्त उपबंध के अनुसार अप्रभावित रहा है । स्पष्टीकरण विभाजन को रजिस्ट्रीकृत विलेख द्वारा या न्यायालय की डिक्री द्वारा प्रभावी बनाए गए विभाजन के रूप में परिभाषित करता है । इसका आशय उक्त तारीख के पूर्व विधिक या विधिमान्य विभाजन को निपटाना नहीं है । किंतु इसका अभिकथन करने वाले पक्षकार पर ऐसे विभाजन की असलियत को साबित करने का भार डालना है । किसी भी दशा में कानूनी सैद्धांतिक विभाजन विधिमान्य और प्रभावी बना रहता है ।

15. प्रतिकूलतः, प्रत्यर्थियों की ओर से यह पक्षकथन है कि विधि आयोग की 174वीं रिपोर्ट के आलोक में महिलाओं के विरुद्ध विभेद को दूर करने के लिए सामाजिक विधान का एक भाग होते हुए इस संशोधन को

---

[1] (2001) 8 एस. सी. सी. 24 (पैरा 22 से 27).

भूतलक्षी प्रभाव से पढ़ा जाना चाहिए जैसा आक्षेपित निर्णय में उच्च न्यायालय द्वारा निर्वचन किया गया है । पुत्री ने जन्म से अधिकार अर्जित किया और यदि उसका पिता जो सहदायिकी था की मृत्यु संशोधन के प्रवृत्त होने के पूर्व हुई हो तो पक्षकारों के अंशों को पुनर्निधारित किए जाने की अपेक्षा है । यह निवेदन किया गया कि कोई विभाजन जो तारीख 20 दिसंबर, 2004 के पूर्व भी किया गया हो, की अनदेखी किए जाने योग्य है जब तक यह विभाजन विलेख द्वारा रजिस्ट्रीकृत या न्यायालय की डिक्री द्वारा न की गई हो । यदि कोई रजिस्ट्रीकृत विभाजन न हुआ हो तो पुत्री के अंश की वृद्धि संशोधन के आधार पर हो जाएगी ।

16. हमने परस्पर प्रतिकूल निवेदनों पर सम्यक् विचार किया । हम 2005 संशोधन के पूर्व के हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 6 और यथा संशोधित उपबंध को निर्दिष्ट करते हैं :–

हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 6	**हिंदू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2005 के प्रारंभ से धारा 6**
6. सहदायिकी संपत्ति में के हित का न्यागमन – जबकि कोई हिंदू पुरुष अपनी मृत्यु के समय मिताक्षरा संपत्ति में हित रखते हुए इस अधिनियम के प्रारंभ के पश्चात् मरे तब उस संपत्ति में उसका हित सहदायिकी के उत्तरजीवी सदस्यों पर उत्तरजीविता के आधार पर न्यागत होगा, इस अधिनियम के अनुसार नहीं : परंतु यदि मृतक अनुसूची (1) में विनिर्दिष्ट किसी नारी संबंधिनी को या उस वर्ग में विनिर्दिष्ट ऐसे किसी पुरुष संबंधी को जो ऐसी संबंधिनी के माध्यम से दावा करता हो, अपना उत्तरजीवी छोड़े तो मिताक्षरा सहदायिकी संपत्ति में मृतक का हित इस अधिनियम के	**6. सहदायिकी संपत्ति में के हित का न्यागमन** – (1) हिंदू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2005 के प्रारंभ से ही मिताक्षरा विधि द्वारा शासित किसी संयुक्त हिंदू कुटुम्ब में किसी सहदायिक की पुत्री, – (क) जन्म से ही अपने स्वयं के अधिकार से उसी रीति से सहदायिक बन जाएगी जैसे पुत्र होता है; (ख) सहदायिकी संपत्ति में उसे वही अधिकार प्राप्त होंगे जो उसे तब प्राप्त हुए होते जब वह पुत्र होती ; (ग) उक्त सहदायिकी संपत्ति के संबंध में पुत्र के समान ही दायित्वों

अधीन, यथास्थिति, वसीयती या निर्वसीयती उत्तराधिकार द्वारा न्यागत होगा, उत्तरजीविता द्वारा नहीं । **स्पष्टीकरण 1** – इस धारा के प्रयोजनों के लिए हिंदू मिताक्षरा सहदायिक का हित संपत्ति में का वह अंश समझा जाएगा जो उसे बांट में मिलता यदि उसकी अपनी मृत्यु से अव्यवहित पूर्व संपत्ति का विभाजन किया गया होता, इस बात का विचार किए बिना कि वह विभाजन का दावा करने का हकदार था या नहीं । **स्पष्टीकरण 2** – इस धारा के परंतुक में अंतर्विष्ट किसी बात का यह अर्थ न लगाया जाएगा कि वह उस व्यक्ति को जिसने मृतक की मृत्यु से पूर्व सहदायिकी से अपने को पृथक् कर लिया हो, उसे या उसके किन्हीं वारिसों को निर्वसीयती की दशा में उस हित में अंश पाने का दावा करने के लिए योग्य बनाती है जिसके प्रति उस परंतुक में निर्देश किया गया है ।	के अधीन होगी, और हिंदू मिताक्षरा सहदायिक के प्रति किसी निर्देश से यह समझा जाएगा कि उसमें सहदायिक की पुत्री के प्रति कोई निर्देश सम्मिलित है : परंतु इस उपधारा की कोई बात किसी व्ययन या अन्य संक्रामण को, जिसके अंतर्गत संपत्ति का ऐसा कोई विभाजन या वसीयती व्यय भी है, जो तारीख 20 दिसंबर, 2004 से पूर्व किया गया था प्रभावित या अविधिमान्य नहीं करेगी । (2) कोई संपत्ति, जिसके लिए कोई हिंदू नारी उपधारा (1) के आधार पर हकदार बन जाती है, उसके द्वारा सहदायिकी स्वामित्व की प्रसंगतियों सहित धारित की जाएगी और, इस अधिनियम या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी वसीयती व्ययन द्वारा उसके द्वारा व्ययन किए जाने योग्य संपत्ति के रूप में समझी जाएगी । (3) जहां किसी हिंदू की, हिंदू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2005 के प्रारंभ के पश्चात् मृत्यु हो जाती है, वहां मिताक्षरा विधि द्वारा शासित किसी संयुक्त हिंदू कुटुम्ब की संपत्ति में उसका हित, यथास्थिति, इस अधिनियम के

	अधीन वसीयती या निर्वसीयती उत्तराधिकार द्वारा न्यागत हो जाएगा परंतु उत्तरजीविता के आधार पर नहीं और सहदायिकी संपत्ति इस प्रकार विभाजित की गई समझी जाएगी मानो विभाजन हो चुका था, और – (क) पुत्री को वही अंश आबंटित होगा जो पुत्र को आबंटित किया गया है ; (ख) पूर्व मृत पुत्र या किसी पूर्व मृत पुत्री का अंश, जो उन्हें तब प्राप्त हुआ होता यदि वे विभाजन के समय जीवित होते, ऐसे पूर्व मृत पुत्र या ऐसी पूर्व मृत पुत्री की उत्तरजीवी संतान को आबंटित किया जाएगा ; और (ग) किसी पूर्व मृत पुत्र या किसी पूर्व मृत पुत्री की पूर्व मृत संतान का अंश, जो उस संतान ने उस रूप में प्राप्त किया होता यदि वह विभाजन के समय जीवित होती, यथास्थिति, पूर्व मृत पुत्र या किसी पूर्व मृत पुत्री की पूर्व मृत संतान की संतान को आबंटित किया जाएगा । **स्पष्टीकरण** – इस धारा के प्रयोजनों के लिए हिंदू मिताक्षरा सहदायिक का हित संपत्ति में का वह अंश समझा जाएगा जो उसे आबंटित किया गया होता यदि उसकी अपनी मृत्यु से अव्यवहित

	पूर्व संपत्ति का विभाजन किया गया होता, इस बात का विचार किए बिना कि वह विभाजन का दावा करने का हकदार था या नहीं । (4) हिंदू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2005 के प्रारंभ के पश्चात् कोई न्यायालय किसी पुत्र, पौत्र या प्रपौत्र के विरुद्ध उसके पिता, पितामह, या प्रपितामह से शोध्य किसी ऋण की वसूली के लिए हिंदू विधि के अधीन पवित्र बाध्यता के आधार पर ही ऐसे किसी ऋण को चुकाने के लिए ऐसे पुत्र, पौत्र या प्रपौत्र के विरुद्ध कार्यवाही करने के किसी अधिकार को मान्यता नहीं देगा : परंतु हिंदू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2005 के प्रारंभ से पूर्व लिए गए ऋण की दशा में इस उपधारा में अंतर्विष्ट कोई बात निम्नलिखित को प्रभावित नहीं करेगी, – (क) यथास्थिति, पुत्र, पौत्र या प्रपौत्र के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए किसी ऋणदाता का अधिकार ; या (ख) किसी ऐसे ऋण के संबंध में या उसके चुकाए जाने के लिए किया गया कोई संक्रामण और कोई ऐसा अधिकार या संक्रामण पवित्र बाध्यता के नियम के अधीन वैसी ही रीति में और उसी सीमा

	तक प्रवर्तनीय होगा जैसाकि उस समय प्रवर्तनीय होता जबकि हिंदू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2005 अधिनियमित न किया गया होता । **स्पष्टीकरण** – खंड (क) के प्रयोजनों के लिए "पुत्र", "पौत्र" या "प्रपौत्र" पद से यह समझा जाएगा कि वह यथास्थिति, ऐसे पुत्र, पौत्र या प्रपौत्र के प्रतिनिर्देश है, जो हिंदू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2005 के प्रारंभ के पूर्व पैदा हुआ था या दत्तक ग्रहण किया गया था । (5) इस धारा में अंतर्विष्ट कोई बात ऐसे विभाजन को लागू नहीं होगी जो तारीख 20 दिसंबर, 2004 से पूर्व किया गया है । **स्पष्टीकरण** – इस धारा के प्रयोजनों के लिए "विभाजन" से रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, कोई विभाजन या किसी न्यायालय की किसी डिक्री द्वारा किया गया विभाजन अभिप्रेत है ।

17. स्वयं संशोधन का पाठ स्पष्टतः यह उपबंध करता है कि "सहदायिकी की पुत्री" को प्रदत्त अधिकार हिंदू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2005 के प्रारंभ से है । धारा 6(3) संशोधन के लागू होने के पश्चात् हुई मृत्यु के बारे में है । कानून की स्पष्ट भाषा को ध्यान में रखते हुए संशोधन के पाठ द्वारा इंगित से भिन्न निर्वचन की कोई गुंजाइश नहीं है । किसी अधिष्ठायी उपबंध का संशोधन हमेशा तब तक भविष्यलक्षी होता है जब तक अभिव्यक्त रूप से या आवश्यक आशय द्वारा यह भूतलक्षी (**श्याम**

सुन्दर बनाम **राम कुमार**[1] वाला मामला देखें) न हो । इस मामले में संशोधित उपबंध का भूतलक्षी प्रभाव देने का न तो कोई व्यक्त उपबंध है न ही उस आशय का कोई अर्थान्वयन है । ऐसा विभाजन जो विधि के प्रवर्तन द्वारा हुआ है, की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए विभाजन को रजिस्ट्रीकृत करने की अपेक्षा को संशोधित उपबंध के अनुसार उत्तराधिकार के उद्भूत होने पर कानूनी सैद्धांतिक विभाजन को लागू नहीं किया जा सकता । संशोधन के आशय और प्रभाव पर बाद में विचार किया जाएगा । इस निष्कर्ष पर उच्च न्यायालय के मत को कायम नहीं रखा जा सकता ।

18. प्रत्यर्थियों की यह दलील कि संशोधन को सामाजिक विधान के भाग के रूप में भूतलक्षी प्रभाव से पढ़ा जाए, स्वीकार नहीं किया जा सकता । इस प्रकार उपबंधित या विधायिका द्वारा इस प्रकार आशयित के बिना ऐसे सामाजिक विधान को भूतलक्षी प्रभाव नहीं दिया जा सकता । विधायिका ने व्यक्ततः इसके प्रारंभ से ही संशोधन और यदि प्रश्नगत सहदायिकी की मृत्यु संशोधन के पश्चात् है, को लागू बनाया है । इस प्रकार कानून की व्यक्त भाषा को ध्यान में रखते हुए कोई भिन्न निर्वचन संभव नहीं है । तारीख 20 दिसंबर, 2004 के पूर्व व्ययन या अन्यसंक्रामण या विभाजन से संबंधित उपबंध को अप्रभावित रखने वाले परंतुक से भी यह निष्कर्ष नहीं निकल सकता है कि पुत्री अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व सहदायिकी हो सकती है । परंतुक का केवल यह अभिप्राय है कि तब तक न हुए संव्यवहार सहदायिकी संपत्ति के विस्तार को प्रभावित नहीं करेंगे जो उस समय उपलब्ध हों जब मुख्य उपबंध लागू हुआ । इसी प्रकार तारीख 20 दिसंबर, 2004 के पश्चात् हुए विभाजन के संव्यवहार तक सीमित रखते हुए धारा 6(5) के अधिष्ठायी उपबंध के साथ स्पष्टीकरण को सामंजस्यपूर्ण ढंग से पढ़ा जाना चाहिए । अपनी प्रकृति से ही सैद्धांतिक विभाजन परंतुक के अधीन या उपधारा (5) के अधीन या स्पष्टीकरण के अधीन नहीं आता है ।

19. किसी उपबंध का निर्वचन पाठ और संदर्भ पर निर्भर करता है (**आर. बी. आई.** बनाम **पियरलेस**[2] वाला मामला देखें) । सामान्य नियम साधारण अर्थ में किसी कानून के शब्दों से निकाला जाना है । संदिग्धता की दशा में, तार्किक अर्थ निकाला जाना चाहिए (**केहर सिंह** बनाम **राज्य**[3] वाला

---

[1] (2001) 8 एस. सी. सी. 24 (पैरा 22-27).

[2] (1987) 1 एस. सी. सी. 424 (पैरा 33).

[3] (1988) 3 एस. सी. सी. 609.

मामला देखें) । प्रकट विरोध की दशा में विधायिका के उद्देश्य और आशय को पूरा करने के लिए सामंजस्यपूर्ण अर्थ निकाला जाना चाहिए (**जिला खान अधिकारी** बनाम **टाटा लौह और इस्पात कंपनी**[1] वाला मामला देखें) ।

20. ऐसे कई अवसर उद्‌भूत हुए जब किसी परंतुक या स्पष्टीकरण का निर्वचन का विषय सामने प्रस्तुत किया गया । पाठ, संदर्भ और प्रयोजन के आधार पर निर्वचन के भिन्न-भिन्न नियम लागू किए गए (**एस. सुन्दरम पिल्लै** बनाम **आर. पट्टाबिरामन**[2] वाला मामला देखें) ।

21. सामान्य नियम यह है कि परंतुक ऐसी अधिनियमिति से कुछ बात छोड़ देता है जो अन्यथा अधिनियमिति की परिधि के भीतर है किंतु यदि पाठ, संदर्भ या प्रयोजन इस प्रकार अपेक्षा करता है तो भिन्न नियम लागू किया जा सकेगा । इसी प्रकार स्पष्टीकरण धारा के शब्दों के अर्थ स्पष्ट करने के लिए है किंतु यदि भाषा या प्रयोजन इस प्रकार अपेक्षा करती है तो स्पष्टीकरण का ऐसा निर्वचन किया जा सकता है । कानून के निर्वचन के नियम उपयोगी अनुचर हैं किंतु कठिन अधिपति (**केशवजी रावजी एंड कंपनी** बनाम **सी. आई. टी.**[3] वाला मामला देखें) । निर्वचन का उद्देश्य विधायिका के आशय का पता लगाना है ।

22. इस पृष्ठभूमि में हम यह पाते हैं कि धारा 6(1) का परंतुक और धारा 6 की उपधारा (5) का आशय स्पष्टतः उसमें निर्दिष्ट संव्यवहारों को अपवर्जित करना है, जो तारीख 20 दिसंबर, 2004 जिस तारीख को विधेयक पुरःस्थापित किया गया के पूर्व किए गए हों । स्पष्टीकरण ऐसे विभाजनों को पुनः खोलने की अनुज्ञा नहीं दे सकता जो उस समय विधिमान्य थे जब प्रभावी हुए । तारीख 20 दिसंबर, 2004 के पूर्व संव्यवहारों को अंतिमतः देने का उद्देश्य किसी भी दशा में मुख्य उपबंध को भूतलक्षी बनाना नहीं है । उद्देश्य यह है कि जाली संव्यवहारों द्वारा विधेयक के पुरःस्थापन पर उपलब्ध संपत्ति को न लिया जाए और तब उपलब्ध रहे जब कानून द्वारा प्रदत्त अधिकार उपलब्ध हो और प्रवृत्त किया जाए । धारा 6(1) और (3) के संशोधन का मुख्य उपबंध का आशय किसी भी तरह से प्रभावित करना नहीं है बल्कि इस तरह से मजबूत करना है । अपीलार्थियों द्वारा अवलंबित ऐसे संव्यवहारों को लागू करने वाले स्थिर सिद्धांतों का

---

[1] (2001) 7 एस. सी. सी. 358.

[2] (1985) 1 एस. सी. सी. 591.

[3] (1990) 2 एस. सी. सी. 231.

आशय तारीख 20 दिसंबर, 2004 के पूर्व अवधि के लिए दूर करना नहीं है । किसी भी दशा में तारीख 20 दिसंबर, 2004 के पूर्व भी कानूनी सैद्धांतिक विभाजन को प्रश्नगत स्पष्टीकरण या परंतुक द्वारा समाहित नहीं किया जा सकता ।

23. तदनुसार, हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि संशोधन के अधीन अधिकार इस बात की परवाह किए बिना कि ऐसी पुत्रियों का जन्म कब हुआ, तारीख 9 सितंबर, 2005 को जीवित सहदायिकियों की जीवित पुत्रियों को लागू हों । व्ययन या अन्यसंक्रामण जिसके अंतर्गत विभाजन है जो उक्त तारीख के पूर्व लागू विधि के अनुसार तारीख 20 दिसंबर, 2004 के पहले हुए हैं, अप्रभावित बने रहेंगे । इसके पश्चात् हुए विभाजन के किसी संव्यवहार को स्पष्टीकरण लागू होगा ।

24. उपरोक्त निर्वचन पर, 2013 की सिविल अपील सं. 7217 मंजूर की जाती है । उच्च न्यायालय का आदेश अपास्त किया जाता है । मामला विधि के अनुसार नए सिरे से विनिश्चय के लिए उच्च न्यायालय को प्रतिप्रेषित किया जाता है । सभी अन्य मामलों को अलग से विचार करने के लिए सुनवाई हेतु तारीख 24 नवंबर, 2015 को सूचीबद्ध किया जाए ।

25. मत जो हमने व्यक्त किया है, पूर्व किन्हीं विनिश्चयों से संगत है और प्रतिकूल भी नहीं है । हम पक्षकारों द्वारा उद्धृत विनिश्चयों को अब निर्दिष्ट करते हैं । प्रत्यर्थियों द्वारा उद्धृत मुख्य विनिश्चय इस प्रकार है – **प्रेमा** बनाम **नानजे गौडा**[1], **गांदूरी कोटेश्वरम्मा** बनाम **चाकिरी यनादी**[2], **वी. के. सुरेन्द्र** बनाम **वी. के. थिम्मइया**[3], **राम सरुप** बनाम **मुंशी**[4], **दयावती** बनाम **इंदरजीत**[5], **अमरजीत कौर** बनाम **प्रीतम सिंह**[6], **लक्ष्मी नारायण गुईं** बनाम **निरंजन मोदक**[7], **एस. साई रेड्डी** बनाम **एस. नारायण रेड्डी**[8] और **महाराष्ट्र राज्य** बनाम **नारायण राव**[9] । इन विनिश्चयों में कई विनिश्चय

---

[1] (2011) 6 एस. सी. सी. 462.
[2] (2011) 9 एस. सी. सी. 788.
[3] (2013) 10 एस. सी. सी. 211 (पैरा 18).
[4] [1963] 3 एस. सी. आर. 858.
[5] [1966] 3 एस. सी. आर. 275.
[6] (1974) 2 एस. सी. सी. 363.
[7] (1985) 1 एस. सी. सी. 270.
[8] (1991) 3 एस. सी. सी. 647.
[9] (1985) 2 एस. सी. सी. 321 (पैरा 8 से 10).

ऐसी स्थितियों के बारे में हैं जहां विधि में परिवर्तन को विशिष्ट विधि में विधायिका के आशय से संबंधित लंबित कार्यवाहियों को लागू ठहराया गया है । उक्त विनिश्चयों में अधिकथित प्रतिपादनाओं में कोई विवाद नहीं है । प्रश्न विशिष्ट संशोधनकारी विधि के आलोक में उक्त सिद्धांत के लागू करने के बारे में है । अवलंबित विनिश्चय प्रत्यर्थियों के पक्षकथन के समर्थन में इस मामले को लागू नहीं होते ।

25.1 **राम सरुप** (पूर्वोक्त) वाले मामले में विचारार्थ प्रश्न पंजाब अग्रक्रय अधिकार अधिनियम, 1930 का 1960 के पंजाब अधिनियम, 10 द्वारा अग्रक्रय अधिकार को निर्बंधित करने के संशोधन का था । संशोधन द्वारा अंतःस्थापित धारा 31 ऐसी डिक्री को पारित करने का प्रतिषेध करता था जो संशोधित उपबंधों से असंगत था । यह अभिनिर्धारित किया गया कि संशोधन भूतलक्षी था और उक्त उपबंधों में प्रयोग की गई भाषा को ध्यान में रखते हुए इसका भूतलक्षी प्रवर्तन था ।

25.2 **दयावती** (पूर्वोक्त) वाले मामले में पंजाब ऋणग्रस्तता राहत अधिनियम, 1956 की धारा 6 व्यक्ततः भूतलक्षी प्रभाव प्रदान करती थी और अधिनियम के प्रारंभ पर सभी लंबित वादों को इस कानून को लागू बनाती थी । अधिनियम में कतिपय विनिर्दिष्ट व्यक्तियों को ऋणग्रस्तता के विरुद्ध राहत प्रदान करने के लिए कतिपय संव्यवहारों में ब्याज की दर में कटौती की ईप्सा की गई थी ।

25.3 **लक्ष्मी नारायण गुईं** (पूर्वोक्त) वाले मामले में, प्रश्न पश्चिमी बंगाल परिसर किरायदारी अधिनियम, 1956 की धारा 13 की उपयोजिता का था जिसमें व्यक्ततः यह उपबंध किया गया था कि नई विधि की स्कीम के प्रतिकूल न्यायालय द्वारा कोई आदेश पारित नहीं किया जा सकेगा ।

25.4 **अमरजीत कौर** (पूर्वोक्त) वाले मामले में, पंजाब अग्रक्रय अधिकार (निरसन) अधिनियम, 1973 की धारा 3 पर विचार किया गया जो व्यक्ततः न्यायालय को अधिनियम के प्रारंभ के पश्चात् किसी अग्रक्रय अधिकार डिक्री को पारित करने से प्रतिषिद्ध करती थी ।

25.5 **वी. के. सुरेन्द्र** (पूर्वोक्त) वाले मामले में अधिकथित सिद्धांत में भी कोई विरोध नहीं है जो संयुक्त कुटुम्ब संपत्ति की प्रकृति और ऐसी संपत्ति को पृथक् होने का दावा करने वाले व्यक्ति पर सबूत का भार डालने की उपधारणा के बारे में है । उक्त विनिश्चय केवल साक्ष्य का नियम अधिकथित करता है ।

25.6 **एस. साई रेड्डी** (पूर्वोक्त) वाले मामले में, विचारार्थ प्रश्न यह था कि क्या विभाजन में अंश का अवधारण करने वाले किसी प्रारंभिक डिक्री के पारित किए जाने के पश्चात् भी, ऐसे अंशों में अंतिम डिक्री के पारित किए जाने के समय अंतर्वर्ती घटनाओं के कारण परिवर्तन हो सकता है । उक्त मामले में पुत्र द्वारा अपने पिता के विरुद्ध विभाजन वाद फाइल किया गया जिसमें पक्षकारों के अंश अवधारित करते हुए प्रारंभिक डिक्री पारित की गई थी । अंतिम डिक्री पारित किए जाने के पूर्व, अविवाहित पुत्रियों को अंश अनुज्ञात करते हुए हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम (आंध्र प्रदेश संशोधन अधिनियम, 1986 द्वारा) में संशोधन किया गया । तदनुसार अविवाहित पुत्रियों ने अपने अंशों के लिए न्यायालय में आवेदन किया जिनके अभिवाक् को कायम रखा गया । उक्त निर्णय वर्तमान मामले में अंतर्वलित मुद्दे के बारे में नहीं था । यह ऐसा मामला नहीं था जहां ऐसा सहदायिकी जिनकी अधिकार का दावा करने वाली पुत्री अधिनियम के प्रारंभ की तारीख को जीवित नहीं थी न ही ऐसा मामला था जहां पक्षकारों के अंश ऐसी विधि के प्रवर्तन द्वारा पहले ही नियत किए जा चुके थे जिनको संशोधनकारी विधि लागू नहीं थी । ऐसी स्थिति **प्रेमा और गुंदूरी** (पूर्वोक्त) वाले मामले में थी ।

25.7 **नारायण राव** (पूर्वोक्त) वाले मामले में, यह मत व्यक्त किया गया कि सैद्धांतिक विभाजन के पश्चात् भी संयुक्त कुटुम्ब बना रहता है । इस निर्णय में अधिकथित प्रतिपादना इसमें अंतर्वलित प्रश्न का विनिश्चय करने में भी सहायक नहीं है । स्वयं संशोधन का पाठ यह दर्शित करता है कि संशोधन द्वारा प्रदत्त अधिकार ऐसी "सहदायिक की पुत्री" को है जो सहदायिकी का सदस्य है और अधिनियम के प्रारंभ को जीवित है ।

25.8 हम **राजस्थान राज्य** बनाम **मांगी लाल पिन्डवाल**[1] और **पश्चिमी उत्तर प्रदेश चीनी मिल संगम** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[2] के विनिश्चयों और इसमें अंतर्वलित मुद्दे का विनिश्चय करने के अन्य समान विनिश्चयों में भी कोई सुसंगति नहीं पाते हैं । उक्त विनिश्चय उपबंध के निरसन के प्रभाव न कि भूतलक्षिता के मुद्दे के बारे में है जिस पर न्यायालय का इस मामले में संबंध है ।

26. अब हम अपीलार्थियों द्वारा अवलंबित विनिश्चयों पर आते हैं । **एम. पृथ्वीराज** (पूर्वोक्त) वाले मामले में, व्यक्त किया गया मत उससे

---

[1] (1996) 5 एस. सी. सी. 60.

[2] (2002) 2 एस. सी. सी. 645.

सुसंगत प्रतीत होता है जैसा ऊपर कहा गया है । यह प्रतीत होता है कि यह उच्च न्यायालय की न्यायपीठ के समक्ष आबद्धकारी पूर्व निर्णय था जिसने आक्षेपित आदेश पारित किया किंतु आक्षेपित निर्णय में निर्दिष्ट किया गया प्रतीत नहीं होता । **शीला देवी** बनाम **लालचंद**[1] और **जी. शेखर** बनाम **गीता**[2] वाले मामलों में इस न्यायालय के निर्णय और **बगीरथी** बनाम **एस. मनीवानन**[3] वाले मामले में मद्रास उच्च न्यायालय के निर्णय का उसमें अवलंब लिया गया है । **शीला देवी** (पूर्वोक्त) वाले मामले में, इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया :–

> "21. अधिनियम निर्विवादतः पुराने हिंदू विधि पर अभिभावी होगा । हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि संसद् ने संयुक्त कुटुम्ब संपत्ति के संबंध में भी महिला वारिसों को अधिकार प्रदान करने की दृष्टि से हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 2005 अधिनियमित किया । ऐसा उपबंध आंध्र प्रदेश राज्य द्वारा काफी पहले 1987 में अधिनियमित किया गया था । सुस्पष्टतः 1989 में उत्तराधिकार के उद्भूत होने के कारण संशोधन अधिनियम, 2005 के उपबंध कतई लागू नहीं हुए । अधिनियम की धारा 6 की उपधारा (1) वारिसों की दशा में सहदायिक की मृत्यु पर उत्तराधिकार से संबंधित विधि केवल पुरुष वंशजों को लागू होती है । किंतु अधिनियम की धारा 6 की उपधारा (1) से उपाबद्ध परंतुक एक अपवाद सृजित करता है । बाबू लाल का पहला पुत्र अर्थात् लालचंद इस प्रकार सहदायिक था । धारा 6 सामान्य नियम का अपवाद है । अतः यह दर्शित करने के लिए प्रत्यर्थी वादी की ओर से यह आबद्धकर था कि लालचंद के अलावा, सोहन लाल भी उसका फायदा प्राप्त करेगा । जहां तक दूसरे पुत्र, सोहनलाल का संबंध है यह दर्शित करने के लिए अभिलेख पर कोई साक्ष्य नहीं लाया गया है कि उसका जन्म हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 के प्रवृत्त होने के पूर्व हुआ था ।"

बद्रीनारायण शंकर भंडारी बनाम **ओम प्रकाश शंकर भंडारी**[4] वाले मामले में बम्बई उच्च न्यायालय का पूर्ण न्यायपीठ निर्णय भी इसमें उपरोक्त व्यक्त किए गए मत से संगत प्रतीत होता है ।

---

[1] (2006) 8 एस. सी. सी. 581.

[2] (2009) 6 एस. सी. सी. 99 (पैरा 30).

[3] ए. आई. आर. 2005 मद्रास 250.

[4] ए. आई. आर. 2014 बम्बई 151 (पैरा 40-57).

26.1 **गुरुपद खन्दप्पा मग्दूम** बनाम **हीराबाई खन्दप्पा मग्दूम**[1], **श्यामा देवी** बनाम **मंजू शुक्ला**[2] और **अनार देवी** बनाम **परमेश्वरी देवी**[3] वाले मामलों में इस न्यायालय ने हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम (2005 संशोधन के पूर्व) की धारा 6 के स्पष्टीकरण 1 का निर्वचन किया । यह अभिनिर्धारित किया गया कि सहदायिक की मृत्यु के ठीक पूर्व संपत्ति के विभाजन से संबंधित धारणा उपबंध को धारणा कल्पना को शामिल करने के उपबंध के निर्वचन के स्थिर सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए सम्यक् और पूर्ण प्रभाव दिया जाना चाहिए । **श्यामा देवी** और **अनार देवी** (पूर्वोक्त) वाले मामले में यही मत अपनाया गया था ।

26.2 **वैशाली सतीश गनोरकर** बनाम **सतीश केशव राव गनोरकर**[4] वाले मामले में बम्बई उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि संशोधन तब तक लागू नहीं होगा जब तक पुत्री का जन्म 2005 संशोधन के पश्चात् न हो । किंतु इस पहलू पर बाद में बृह्त न्यायपीठ के निर्णय में भिन्न मत व्यक्त किया गया है । हम यह अभिनिर्धारित करने के लिए कोई कारण नहीं पाते हैं कि संशोधन के पश्चात् पुत्री का जन्म इसकी उपयोज्यता के लिए आवश्यक शर्त है । कुल मिलाकर यह अपेक्षा है कि पुत्री जीवित हो और उसका पिता संशोधन की तारीख को भी जीवित होना चाहिए ।

26.3 **काले** बनाम **उप चकबंदी अधिकारी**[5] और **दिगम्बर आधार पाटिल** बनाम **देवराम गिरधर पाटिल**[6] वाले मामलों को भी यह प्रस्तुत करने के लिए उद्धृत किया गया है कि कुटुम्ब समझौते को रजिस्ट्रीकृत किए जाने की अपेक्षा नहीं है । **संतोष हजारी** बनाम **पुरुषोत्तम तिवारी**[7] वाला मामला यह अधिकथित करता है कि अपीली न्यायालय को विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को उलटते समय विचारण न्यायालय के कारणों पर विचार करना चाहिए ।

26.4 **कन्नाइयन** बनाम **सहायक केंद्रीय उत्पाद कलेक्टर**[8], **सी. आई.**

---

[1] (1978) 3 एस. सी. सी. 383 (पैरा 6, 11 और 13).
[2] (1994) 6 एस. सी. सी. 342 (पैरा 7).
[3] (2006) 8 एस. सी. सी. 656 (पैरा 10,11).
[4] ए. आई. आर. 2012 बम्बई 101 (पैरा 13 से 37).
[5] (1976) 3 एस. सी. सी. 119 (पैरा 9).
[6] (1995) 2 (सप्ली.) एस. सी. सी. 428 (पृष्ठ 430).
[7] (2001) 3 एस. सी. सी. 179 (पैरा 15).
[8] 1969 (2) एम. एल. जी. 277.

टी. गुजरात बनाम **केश्वलाल लल्लूभाई पटेल**[1], **उमयाल अची** बनाम **लक्ष्मी अची**[2] और **शिवप्पा लक्ष्मण** बनाम **येल्लवा शिवप्पा शिवगान्नावर**[3] वाले मामलों को यह पक्षपोषित करने के लिए उद्धृत किया गया है कि विभाजन पूर्व विद्यमान अधिकारों की मान्यता थी और यह नए अधिकारों को सृजित नहीं करता ।

26.5 यह सामान्यतः पैरा 24 के प्रवर्तनशील भाग वाले हमारे आदेश को अंतिम रूप देता है जो 2013 की सिविल अपील संख्या 7217 का निपटान करता है और अन्य मामलों को अलग से विचार किए जाने के लिए सूचीबद्ध किए जाने का निदेश देता है । तथापि, मुस्लिम महिला के विरुद्ध लिंग विभेद से संबंधित एक और पहलू जो विचारार्थ है पर, इस आदेश के दूसरे भाग में विचार किए जाने की आवश्यकता है ।

भाग-II

27. लिंग विभेद का एक महत्वपूर्ण विवाद्यक जो यद्यपि इस अपील में प्रत्यक्षतः अंतर्वलित नहीं है, पक्षकारों के कुछ विद्वान् काउंसेलों द्वारा उठाया गया है जो मुस्लिम महिला के अधिकारों के बारे में चिंतित है । लिंग विभेद पर चर्चा से यह मुद्दा भी उभरता है । यह इंगित किया गया कि संविधान की प्रत्याभूति के बावजूद मुस्लिम महिलाएं विभेद से ग्रस्त हैं । प्रथम विवाह के दौरान अपने पति के मनमाने विवाह-विच्छेद और दूसरे विवाह के विरुद्ध कोई सुरक्षोपाय नहीं है जिससे उसकी गरिमा और सुरक्षा का हनन होता है । यद्यपि यह मुद्दा **अहमदाबाद वुमेन एक्सन ग्रुप (ए. डब्ल्यू. ए. जी.)** बनाम **भारत संघ**[4] वाले मामले में इस न्यायालय के समक्ष उठाया गया, इस न्यायालय ने इस मताभिव्यक्ति के साथ विभेद के गुणदोष पर विचार नहीं किया कि मुद्दे में राज्य की नीति अंतर्वलित है जिस पर विधायिका द्वारा विचार किया जाना है । इस न्यायालय ने **सरला मुदगल** बनाम **भारत संघ**[5] वाले मामले में न्यायमूर्ति सहाय की इस मताभिव्यक्ति को निर्दिष्ट किया कि समान आचार संहिता बनाने के लिए वातावरण बनाए जाने की आवश्यकता है । **मधुकिश्वर** बनाम **बिहार राज्य**[6] वाले मामले में की गई मताभिव्यक्तियों के प्रति भी इस आशय का निर्देश किया गया कि

---

[1] [1965] 2 एस. सी. आर. 100.

[2] ए. आई. आर. 1945 एफ.सी. 25, 31(घ) पर.

[3] ए. आई. आर. 1954 बाम्बे 47, (पैरा 4).

[4] (1997) 3 एस. सी. सी. 573.

[5] (1995) 3 एस. सी. सी. 635.

[6] (1996) 5 एस. सी. सी. 125.

न्यायालय सक्रिय भूमिका निभाने की बजाय अधिक से अधिक समस्या पर परामर्श दे सकता है और ध्यान केंद्रित कर सकता है । यह मत व्यक्त किया गया कि मुस्लिम महिला (विवाह विच्छेद पर अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 1986 की चुनौती संविधान न्यायपीठ के समक्ष लंबित है और ऐसे मुद्दे पर कार्यवाहियों को बढ़ाने का कोई कारण नहीं है ।

28. यह इंगित किया गया कि मामले पर इस न्यायालय द्वारा विचार किए जाने की आवश्यकता है क्योंकि मुद्दा न केवल नीतिगत विषय से संबंधित है किंतु अनुच्छेद 14, 15 और 21 के अधीन और अंतरराष्ट्रीय कन्वेंशन और प्रसंविदाओं के अधीन महिलाओं के मूल अधिकारों से भी संबंधित है । न्यायालय के लिए मामले पर विचार न करने के कारणों में से एक कारण संविधान न्यायपीठ के समक्ष मुद्दे की विचाराधीनता है जो **डैनियल लतीफी** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा विनिश्चित किया गया है । संविधान न्यायपीठ ने उक्त मुद्दे पर विचार नहीं किया किंतु न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अनुच्छेद 30 के अंतर्गत गरिमा के साथ जीने का अधिकार सम्मिलित है जो इस अभिवाक् का समर्थन करता है कि मुस्लिम महिला ऐसे मामलों में मूल अधिकारों का अवलंब ले सकती है । न्यायालय ने निर्णय के पैरा 33 में निम्नलिखित मत व्यक्त किया है :–

> "33. ……….. इस न्यायालय ने ओलगा टेलीस **बनाम** बम्बई नगर निगम (1985) 3 एस. सी. सी. 545 और मेनका गांधी **बनाम** भारत संघ (1978) 1 एस. सी. सी. 248 वाले मामलों में यह अभिनिर्धारित किया कि संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन गारंटीकृत 'प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार' की अवधारणा 'गरिमा के साथ जीवन जीने का अधिकार' सम्मिलित करती है । अधिनियम के पूर्व ऐसी मुस्लिम महिला जिसका तलाक उसके पति द्वारा दिया गया था को अपने पति से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के उपबंधों के अधीन भरणपोषण का अधिकार मंजूर किया गया था जब तक वह पुनर्विवाह नहीं करती और ऐसे अधिकार से यदि वंचित किया जाता है तो यह युक्तिसंगत, ऋजु और उचित नहीं होगा । इस प्रकार अपने पति से भरणपोषण के ऐसे अधिकार की तलाकशुदा मुस्लिम महिला को वंचित करने वाले और केवल इद्दत की अवधि तक अपने पूर्व पति

---

[1] (2001) 7 एस. सी. सी. 740.

द्वारा अपना भरणपोषण दिए जाने वाले और इसके पश्चात् एक के बाद दूसरे नातेदारों की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान को जाना और अंततः वक्फ बोर्ड के दरवाजे खटखटाने वाले अधिनियम के उपबंध युक्तिसंगत और उचित प्रतीत नहीं होते जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के उपबंधों के स्थान पर है । दंड प्रक्रिया संहिता के लाभकारी उपबंधों के अधीन अपने पूर्व पति से भरणपोषण के उनके अधिकार से तलाकशुदा मुस्लिम महिला का ऐसा वंचितीकरण जो अन्यथा भारत के सभी अन्य महिलाओं को उपलब्ध है, को युक्तियुक्त अधिकार तथा ऋजु और उचित विधि द्वारा प्रभावित हुआ नहीं कहा जा सकता और यदि ये उपबंध दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय 9 के उपबंधों से कम फायदा का नहीं है तो तलाकशुदा मुस्लिम महिला के साथ निश्चित ही अयुक्तियुक्ततः विभेद किया गया है और संहिता के अधीन यथा उपदर्शित सामान्य विधि के उपबंधों के संरक्षण से बाहर रखा गया है जो हिंदू, बुद्ध, जैन, पारसी, क्रिश्चियन महिलाओं या किसी अन्य समुदाय की महिलाओं को उपलब्ध हैं । अतः उपबंध प्रथमदृष्ट्या संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमणकारी प्रतीत होते हैं जो सभी व्यक्तियों को अन्यथा समरूप स्थिति वाले व्यक्तियों को समता और विधि के समान संरक्षण का अधिदेश देता है और संविधान के अनुच्छेद 15 के भी अतिक्रमणकारी हैं जो धर्म के आधार पर किसी विभेद का प्रतिषेध करता है जो कि अधिनियम सुस्पष्टतः केवल मुस्लिम तलाकशुदा महिला और एक मात्र उसके मुस्लिम धर्म के होने के आधार पर ही लागू होता है ।"

जाबेद बनाम **हरियाणा राज्य**[1] वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने यह मत व्यक्त किया कि बहु-विवाह की प्रथा सार्वजनिक नैतिकता के लिए हानिकर है और "सती" की प्रथा की तरह राज्य द्वारा इसका अधिक्रमण किया जा सकता है । आगे यह मत व्यक्त किया गया कि धर्म की परवाह किए बिना एक विवाह का उपबंध करने वाले आचरण नियम विधिमान्य हैं और मुसलमानों की स्वीय विधि के अतिलंघन के आधार पर अभिखंडित नहीं किया जा सकता । **जॉन बल्लामेटम** बनाम **भारत संघ**[2] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया कि पूर्त प्रयोजन के लिए बिल बनाने हेतु क्रिश्चियनों के अधिकार को निर्बंधित करने वाली भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 118 का कोई तार्किक आधार

---

[1] (2003) 8 एस. सी. सी. 369 (पैरा 46, 54 से 59).

[2] (2003) 6 एस. सी. सी. 611(पैरा 28, 29, 33 से 36, 30 से 32).

नहीं था और क्रिश्चियनों के विरुद्ध विभेदकारी थी और अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण करती थी । विवाह और उत्तराधिकार से संबंधित विधियां धर्म के भाग नहीं हैं । विधि का समय के साथ-साथ परिवर्तन करना चाहिए । किसी उपबंध की विधिमान्यता और युक्तियुक्तता की परीक्षा के लिए अंतरराष्ट्रीय परिसंविदाओं और संधियों को निर्दिष्ट किया जा सकता है ।

29. **चारु खुराना** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने फिल्म उद्योग में "सिनेमा, पोसाक, सजावट, कलाकार और केश सजावट संगम" की सदस्यता के इनकार के मामले में लिंग विभेद के मुद्दे पर विचार किया । यह अभिनिर्धारित किया गया कि ऐसा विभेद आधारभूत संवैधानिक अधिकारों का अतिक्रमण करता है ।

30. इस प्रकार यह निवेदन किया गया कि मामले के इस पहलू पर लोकहित बाद (पीआईएल) के रूप में मामले को रजिस्ट्रीकृत करके पृथक् से पृथक्तः विचार किया जाना चाहिए । हमारा यह मत है कि इस न्यायालय के पूर्व विनिश्चयों को ध्यान में रखते हुए सुझाव पर विचार किए जाने की आवश्यकता है । इस विषय पर प्रेस में लिखे जाने वाले हाल ही के लेखों में मुद्दे को भी उजागर किया गया है (बंदना शुक्ला द्वारा "समता के लिए मुस्लिम महिलाओं की प्यास" "ट्रिब्यून" तारीख 24 सितंबर, 2015 और दीप्ति नागपाल डिसूजा द्वारा "उसके न्यायालय ने" "संडे एक्सप्रेस मैग्जीन" तारीख 4 अक्तूबर, 2015 देखें) ।

31. इस प्रयोजन के लिए पीआईएल को अलग से दर्ज किया जाए और भारत के माननीय मुख्य न्यायमूर्ति के आदेशों के अनुसार समुचित न्यायपीठ के समक्ष प्रस्तुत किया जाए ।

32. विद्वान् महान्यायवादी और राष्ट्रीय विधि सेवा प्राधिकरण नई दिल्ली को तारीख 23 नवंबर, 2015 तक नोटिस का उत्तर देने के लिए कहते हुए नोटिस जारी की जाए । हम मामले के इस पहलू पर न्यायालय की सहायता करने के लिए इस मामले में पहले से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउंसेल को छूट देते हैं, यदि वे अन्य दृष्टिकोण के साथ स्वयंसेवी के रूप में कार्य करना चाहें ।

अपील का निपटान किया गया ।

पा.

---

[1] (2015) 1 एस. सी. सी. 192.

[2016] 1 उम. नि. प. 142

लाल बाबू प्रियदर्शी

बनाम

अमरीतपाल सिंह

27 अक्तूबर, 2015

न्यायमूर्ति रंजन गोगोई और न्यायमूर्ति आर. के. अग्रवाल

व्यापार चिह्न अधिनियम, 1999 (1999 का 47) – धारा 9 – 'रामायण' शब्द का व्यापार चिह्न के रूप में रजिस्ट्रीकरण – पवित्र और धार्मिक ग्रंथों के अनन्य नाम का उपयोग किसी वस्तु के लिए व्यापार चिह्न के रूप में रजिस्ट्रीकृत करना अधिनियम के अधीन अनुज्ञेय नहीं है ।

व्यापार चिह्न अधिनियम, 1999 (1999 का 47) – धारा 9 – अपीलार्थी द्वारा अगरबत्ती, धूप आदि के लिए 'रामायण' शब्द का व्यापार चिह्न के रूप में रजिस्ट्रीकरण के लिए आवेदन – प्रत्यर्थी का 'बादशाह रामायण' शब्द के लिए व्यापार चिह्न का आवेदन लंबित होना – प्रत्यर्थी द्वारा अपीलार्थी के आवेदन का विरोध – सहायक रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकरण किया जाना – अपील बोर्ड द्वारा आदेश अपास्त किया जाना – अपीलार्थी द्वारा प्रत्यर्थी के कलात्मक चिह्न का समय के हिसाब से उसके चिह्न से पहले से उपयोग में होने की बात स्वीकार किया जाना – दोनों चिह्नों की कलात्मक कृति का डिजाइन, रंग, स्कीम तद्रूप होने से सामान्य क्रेता युक्तियुक्त रूप से इस गलत निष्कर्ष पर पहुंचेगा कि एक ब्रांड के अंतर्गत आने वाली वस्तु दूसरे ब्रांड के अंतर्गत आने वाली वस्तु है, इसलिए अपील बोर्ड द्वारा अपीलार्थी के पक्ष में किए गए रजिस्ट्रीकरण आदेश को अपास्त करके ठीक किया गया है ।

पटना में मैसर्स ओम पर्फ्यूमरी के रूप में व्यापार कर रहे श्री लाल बाबू प्रियदर्शी–इस मामले में अपीलार्थी ने व्यापार चिह्न रजिस्ट्रार के पास धूपबत्ती (अगरबत्ती, धूप) और सुगंधित सामग्री आदि की बाबत 'रामायण' नाम में क्राउन युक्ति के साथ एक व्यापार चिह्न श्रेणी 3 में रजिस्टर करने के लिए आवेदन किया । इस अपील में प्रत्यर्थी–श्री अमरीतपाल अपीलार्थी के उत्पादों के विक्रय का व्यौहारी था और पटना में ही मैसर्स बादशाह इंडस्ट्रीज़ के रूप में व्यापार भी कर रहा था । प्रत्यर्थी ने पूर्वोक्त व्यापार चिह्न के रजिस्ट्रीकरण का विरोध करने के लिए यह दावा करते हुए कि आक्षेपित चिह्न एक धार्मिक ग्रंथ का नाम होने

के कारण किसी व्यक्ति के लिए एकाधिकार की विषयवस्तु नहीं हो सकती है, व्यापार चिह्न अधिनियम, 1999 की धारा 9, 11(ख), 11(ग), 12(1), 12(3) और 18(1) के अधीन एक विरोध सूचना फाइल की । उसने 'बादशाह रामायण' व्यापार चिह्न का उपयोग अपीलार्थी से पूर्व करने का दावा किया । उसने यह भी कहा कि उसका इसी प्रकार के व्यापार चिह्न का तारीख 5 नवम्बर, 1985 से उपयोक्ता होने का दावा करते हुए रजिस्ट्रीकरण के लिए आवेदन लंबित है । यह तर्क देते हुए भी इस आवेदन का विरोध किया गया कि इसके साथ बहुत सारे लोगों की भावनाएं जुड़ी हुई हैं और इसलिए कोई व्यक्ति ऐसे किसी शब्द के उपयोग के एकमात्र अधिकार का दावा नहीं कर सकता है । सहायक रजिस्ट्रार, व्यापार चिह्न ने यह अभिनिर्धारित करते हुए कि आक्षेपित व्यापार चिह्न में क्राउन युक्ति समाविष्ट है और 'रामायण' शब्द माल में भेद करने में समर्थ है और अधिनियम के अधीन अरजिस्ट्रीकरणीय चिह्नों की सूची में सम्मिलित नहीं है, तारीख 31 मार्च, 2004 के आदेश द्वारा इस अपील में प्रत्यर्थी द्वारा फाइल किया गया आवेदन खारिज कर दिया । प्रत्यर्थी ने इस आदेश से व्यथित होकर बौद्धिक सम्पदा अपील बोर्ड के समक्ष अपील फाइल की । बोर्ड ने सहायक रजिस्ट्रार, व्यापार चिह्न द्वारा पारित आदेश को अपास्त कर दिया । अपीलार्थी ने उक्त आदेश से व्यथित होकर विशेष इजाजत लेकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – 'रामायण' शब्द महर्षि वाल्मीकि द्वारा लिखित एक ग्रंथ का शीर्षक है और हमारे देश में इसे हिन्दुओं का एक धार्मिक ग्रंथ माना जाता है । इस प्रकार, 'रामायण' ग्रंथ के नाम का अनन्य प्रयोग करते हुए इसे किसी वस्तु के लिए व्यापार चिह्न के रूप में रजिस्ट्रीकृत कराने के लिए अधिनियम के अधीन अनुज्ञेय नहीं हो सकता है । यदि 'रामायण' शब्द के साथ उपसर्ग या प्रत्यय के रूप में कोई अन्य शब्द जोड़ा जाता है और शब्दों का वर्ण या डिजाइन या लंबाई 'रामायण' शब्द जितनी है तब 'रामायण' शब्द का एक धार्मिक ग्रंथ के रूप में महत्व कम हो जाएगा और इस पर व्यापार चिह्न के रूप में रजिस्ट्रीकरण करने के लिए विचार किया जा सकता है । तथापि, वर्तमान मामले में इस न्यायालय ने यह पाया है कि अपीलार्थी ने 'रामायण' शब्द का व्यापार चिह्न के रूप में रजिस्ट्रीकरण करने के लिए आवेदन किया है । न्यायालय ने यह भी पाया है कि फोटोचित्रों में 'रामायण' शब्द के साथ सबसे ऊपर 'ओम' शब्द जोड़ने के पश्चात् 'ओम तथा रामायण' के मध्य में 'तीन उच्च श्रेणी की आमोद सुगंध' (थ्री टाप क्लास एरोमेटिक फ्रेगरेंस) वाक्य

भी लिखा गया है । इस प्रकार, यह ऐसा मामला नहीं है कि अपीलार्थी 'ओम-रामायण' शब्द का व्यापार चिह्न के रूप में रजिस्ट्रीकरण करने की ईप्सा कर रहा है । इसके अतिरिक्त, इस न्यायालय ने फोटोचित्रों में यह पाया है कि भगवान राम, सीता और लक्ष्मण के फोटोचित्रों को भी लेबल में दिखाया गया है जो इस बात का स्पष्ट संकेत है कि अपीलार्थी देवताओं और देवियों के नाम का लाभ उठा रहा है जो कि अन्यथा अनुज्ञात नहीं है । बहुत सारे पवित्र और धार्मिक ग्रंथ हैं जिनमें से कुछ क़ुरान, बाइबल, गुरु ग्रंथ साहिब, रामायण आदि हैं । इस प्रश्न का, कि क्या कोई व्यक्ति उसके द्वारा विपणित अपने माल या सेवाओं के लिए एक व्यापार चिह्न के रूप में किसी पवित्र या धार्मिक ग्रंथ के नाम का दावा कर सकता है, स्पष्ट उत्तर है 'नहीं' । इसके अतिरिक्त, अपीलार्थी यह सिद्ध नहीं कर सका है कि 'रामायण' शब्द ने, जिसके लिए उसने व्यापार चिह्न हेतु आवेदन किया है, बाजार में उपयोक्ता-ख्याति अर्जित कर ली है, क्योंकि इस न्यायालय ने यह पाया है कि शहर में 20 से अधिक और देश के भिन्न-भिन्न भागों में भी व्यापारी इसी प्रकार के उत्पादों के लिए 'रामायण' शब्द का चिह्न के रूप में उपयोग कर रहे हैं । (पैरा 15, 18 और 19)

इसके अतिरिक्त, इस अपील में प्रत्यर्थी ने यह दावा किया है कि यद्यपि वह वर्ष 1980 से कारबार कर रहा है, उसने कलात्मक कृति का विकास और प्रकाशन वर्ष 1986 में किया था और इस चिह्न का एक व्यापार चिह्न के रूप में भी उपयोग कर रहा है तथा वर्ष 1986 से इसका उपयोग का दावा किया है, जबकि इस अपील में अपीलार्थी ने व्यापार चिह्न का उपयोग वर्ष 1987 से करने का दावा किया है । तथापि, अपीलार्थी ने संबंधित प्राधिकारी के पास एक आवेदन फाइल करके वर्ष 1981 से इसका उपयोग करने का दावा किया है । इसके अतिरिक्त, प्रत्यर्थी द्वारा फाइल किए गए विभिन्न मुख्य वादों में किए गए अभिवचनों में, अपीलार्थी ने स्वीकार किया है कि प्रत्यर्थी के कलात्मक चिह्न का उपयोग और प्रकाशन उसके द्वारा चिह्न का उपयोग करने के दावे की तारीख अर्थात् 1987 के पूर्व से किया जा रहा है । इन तथ्यों से, यह स्पष्ट है कि प्रत्यर्थी कलात्मक चिह्न का उपयोग समय के हिसाब से अपीलार्थी से पहले से कर रहा है । पूर्वगामी चर्चा को ध्यान में रखते हुए, यह न्यायालय बोर्ड द्वारा तारीख 10 जनवरी, 2005 को पारित किए गए आदेश में कोई अनियमितता नहीं पाता है और परिणामस्वरूप यह अपील असफल होती है तथा तद्नुसार खारिज की जाती है । (पैरा 21 और 22)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2010] (2010) 10 एस. सी. सी. 422 :
मुम्बई इंटरनेशनल एयरपोर्ट प्राइवेट लिमिटेड बनाम
गोल्डन चेरियट एयरपोर्ट और एक अन्य ; 7

[1970] ए. आई. आर. 1970 एस. सी. 146 :
के. आर. चिन्ना कृष्ण चेट्टियार बनाम
श्री अंबल एंड कंपनी ; 7

[1970] (1970) 3 एस. सी. सी. 665 :
नेशनल बेल कंपनी बनाम **मेटल गुड्स मेन्यूफेक्चरिंग**
कंपनी (प्रा.) लिमिटेड और एक अन्य ; 10,16

[1960] [1960] 1 एस. सी. आर. 968 :
कॉर्न प्रोडक्ट्स रिफाइनिंग कंपनी बनाम
शंर्गिला फूड प्रोडक्ट्स लिमिटेड ; 8

[1955] ए. आई. आर. 1955 एस. सी. 558 :
व्यापार चिह्न रजिस्ट्रार बनाम **अशोक चन्द्र राखित** । 6

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2006 की सिविल अपील सं. 2138.

2004 की मूल अपील सं. 35 में बौद्धिक सम्पदा अपील बोर्ड द्वारा तारीख 10 जनवरी, 2005 को पारित किए गए आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री के. वी. मोहन

प्रत्यर्थी की ओर से श्री सोहन सिंह राणा और श्रीमती बिंद्रा राणा (मैसर्स एस. एस. राणा एंड कं. की ओर से)

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति आर. के. अग्रवाल ने दिया ।

न्या. अग्रवाल – यह अपील बौद्धिक सम्पदा अपील बोर्ड (संक्षेप में 'बोर्ड') द्वारा मूल अपील सं. 35/2004/टीएम/कोल में तारीख 10 जनवरी, 2005 को पारित किए गए उस आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा बोर्ड ने सहायक रजिस्ट्रार, व्यापार चिह्न द्वारा तारीख 31 मार्च, 2004 को पारित किए गए आदेश को अपास्त करते हुए इस अपील में प्रत्यर्थी

द्वारा फाइल की गई अपील मंजूर की गई ।

2. **संक्षिप्त तथ्य :**

(क) बाकेरगंज, दलदली रोड, पटना में मैसर्स ओम पर्फ्यूमरी के रूप में व्यापार कर रहे श्री लाल बाबू प्रियदर्शी-इस मामले में अपीलार्थी ने व्यापार चिह्न रजिस्ट्रार के पास धूपबत्ती (अगरबत्ती, धूप) और सुगंधित सामग्री आदि की बाबत 'रामायण' नाम में क्राउन युक्ति के साथ एक व्यापार चिह्न श्रेणी 3 में रजिस्टर करने के लिए आवेदन किया ।

(ख) इस अपील में प्रत्यर्थी-श्री अमरीतपाल अपीलार्थी के उत्पादों के विक्रय का व्यौहारी था और चिटकोहरा, पंजाबी कालोनी, पटना में मैसर्स बादशाह इंडस्ट्रीज़ के रूप में व्यापार भी कर रहा था । इस अपील में प्रत्यर्थी ने पूर्वोक्त व्यापार चिह्न के रजिस्ट्रीकरण का विरोध करने के लिए यह दावा करते हुए कि आक्षेपित चिह्न एक धार्मिक ग्रंथ का नाम होने के कारण किसी व्यक्ति के लिए एकाधिकार की विषयवस्तु नहीं हो सकती है, व्यापार और पण्य वस्तु चिह्न अधिनियम, 1958 [व्यापार चिह्न अधिनियम, 1999 (1999 का 47), जिसे संक्षेप में आगे अधिनियम कहा गया है, द्वारा निरसित] की धारा 9, 11(ख), 11(ग), 12(1), 12(3) और 18(1) के अधीन एक विरोध सूचना फाइल की ।

(ग) सहायक रजिस्ट्रार, व्यापार चिह्न ने यह अभिनिर्धारित करते हुए कि आक्षेपित व्यापार चिह्न में क्राउन युक्ति समाविष्ट है और 'रामायण' शब्द माल में भेद करने में समर्थ है और अधिनियम के अधीन अरजिस्ट्रीकरणीय चिह्नों की सूची में सम्मिलित नहीं है, तारीख 31 मार्च, 2004 के आदेश द्वारा इस अपील में प्रत्यर्थी द्वारा फाइल किया गया आवेदन खारिज कर दिया ।

(घ) प्रत्यर्थी ने तारीख 31 मार्च, 2004 के आदेश से व्यथित होकर बोर्ड के समक्ष मूल अपील सं. 35/2004/टीएम/कोल फाइल की । बोर्ड ने सहायक रजिस्ट्रार, व्यापार चिह्न द्वारा तारीख 31 मार्च, 2004 को पारित आदेश को तारीख 10 जनवरी, 2005 के आदेश द्वारा अपास्त कर दिया ।

(ङ) अपीलार्थी ने तारीख 10 जनवरी, 2005 के आदेश से व्यथित होकर विशेष इजाजत लेकर यह अपील फाइल की ।

3. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल सुश्री अनुराधा सल्होत्रा और प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री सुधीर चन्द्र को सुना ।

4. इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए एकमात्र प्रश्न यह है कि 'रामायण' हिन्दुओं का एक धार्मिक ग्रंथ होने के कारण क्या इस शब्द का व्यापार चिह्न के रूप में रजिस्ट्रीकरण व्यापार चिह्न अधिनियम, 1999 की धारा 9(2) के अधीन प्रतिषिद्ध है या नहीं ?

विरोधी दलीलें

5. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि अपीलार्थी वर्ष 1981 से अगरबत्तियों के विनिर्माण, व्यापार और विपणन का कारबार कर रहा था और प्रत्यर्थी अपीलार्थी का व्यौहारी था । उसके द्वारा विभिन्न साधनों के माध्यम से 'रामायण' व्यापार चिह्न के अधीन माल के विज्ञापन दिए गए, जिनमें समाचारपत्रों में चेतावनी सूचनाओं के विज्ञापन भी सम्मिलित हैं । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी कि उत्पादों के अत्यधिक उपयोग, व्यापक विज्ञापन और उत्कृष्ट गुणवत्ता के कारण 'रामायण' व्यापार चिह्न और वह कार्टन, जिसमें उत्पाद बेचे जाते हैं, ऐसी रीति में सुभिन्न हो गए हैं कि किसी अन्य व्यक्ति द्वारा वही या उसी प्रकार के व्यापार चिह्न या कार्टन का उपयोग करने से व्यापार में और जनता के बीच भ्रम और धोखा कारित करेगा । विक्रय व्यौहारियों और वितरकों के नेटवर्क के माध्यम से किया जाता था और प्रत्यर्थी अपीलार्थी का एक व्यौहारी था । विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि प्रत्यर्थी ने डीलरशिप के पर्यवसान के पश्चात् उसी स्टाइल और रीति में लिखे 'रामायण' व्यापार चिह्न के अधीन अगरबत्तियां बेचना आरंभ कर दिया ।

6. विद्वान् काउंसेल ने आगे यह दलील दी कि केवल यह तथ्य कि व्यापार चिह्न एक धार्मिक ग्रंथ का नाम है, अधिनियम की धारा 9(2) के अधीन रजिस्ट्रीकरण से इंकारी का पर्याप्त आधार नहीं हो सकता है और अभिलेख पर के ऐसे किसी साक्ष्य पर आधारित नहीं है कि इन अगरबत्तियों के उपयोग से हिन्दुओं के किसी वर्ग की भावनाएं आहत हुई हैं । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी कि सहायक रजिस्ट्रार, व्यापार चिह्न ने ठीक ही यह अभिनिर्धारित किया कि आक्षेपित व्यापार चिह्न में क्राउन युक्ति समाविष्ट है और यह शब्द अपीलार्थी के माल से भेद करने में समर्थ है और यह व्यापार चिह्न अधिनियम के अधीन अरजिस्ट्रीकरणीय चिह्नों की सूची में सम्मिलित नहीं है । विद्वान् काउंसेल ने यह दावा किया कि सहायक रजिस्ट्रार के न्यायालय के समक्ष पहले ही यह साबित किया जा

चुका है कि अपीलार्थी वर्ष 1981 से व्यापार चिह्न का उपयोग कर रहा है और इसलिए प्रत्यर्थी की तुलना में पूर्विक प्रयोक्ता है । विद्वान् काउंसेल के अनुसार, बोर्ड ने व्यापार चिह्न विधेयक, 1993 पर आठवीं रिपोर्ट में स्थायी समिति की मताभिव्यक्तियों का पूरी तरह से गलत अर्थान्वयन किया है । उक्त रिपोर्ट के खंड 13.3 का अवलंब लेते हुए यह दलील दी गई कि यद्यपि समिति ने यह मत व्यक्त किया है कि "धार्मिक देवताओं, देवियों, पूजा स्थलों से संबंधित किसी प्रतीक का साधारण तौर पर व्यापार चिह्न के रूप में रजिस्ट्रीकरण नहीं किया जाना चाहिए" तो भी उसे ऐसे चिह्नों का विनिर्दिष्ट रूप से रजिस्ट्रीकरण प्रतिषिद्ध करने से प्रविरत रहना चाहिए । आगे यह दलील दी गई कि बोर्ड ने **व्यापार चिह्न रजिस्ट्रार** बनाम **अशोक चन्द्र राखित**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का इस आधार पर कार्यवाही करते हुए गलत रूप से अवलंब लिया है कि उक्त मामला इस प्रश्न पर एक नज़ीर है कि सभी धार्मिक नाम या प्रतीक रजिस्ट्रीकृत किए जाने के लिए प्रतिषिद्ध हैं, जबकि वास्तविकता यह है कि इस न्यायालय ने केवल रजिस्ट्रार और उच्च न्यायालय के इस निष्कर्ष को मान्य ठहराया था कि 'श्री' शब्द किसी और व्यापारी के माल से भेद करने में असमर्थ है । उक्त मामला इस तथ्य के कारण भी विभेदकारी है कि व्यापार चिह्न कार्यालय की 'श्री' शब्द को रजिस्टर न करने की सतत परिपाटी रही है किंतु 'रामायण' शब्द के बारे में ऐसी बात नहीं है ।

7. **मुम्बई इंटरनेशनल एयरपोर्ट प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **गोल्डन चेरियट एयरपोर्ट और एक अन्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का अवलंब लेते हुए आगे यह दलील दी गई कि इस अपील में प्रत्यर्थी ने स्वयं तद्रूप चिह्न का उपयोग करने का दावा किया था और इसलिए वह अपने मुंह से अपीलार्थी के नाम में उक्त शब्द का रजिस्ट्रीकरण करने का विरोध नहीं कर सकता है । उसने आगे यह दलील दी कि बोर्ड को यह देखना चाहिए था कि ऐसे बहुत से मामले हैं जिनसे यह उपदर्शित होता है कि हिंदू देवी-देवताओं के नाम का व्यापार चिह्न के रूप में उपयोग करना एक सामान्य परिपाटी रही है और किसी व्यक्ति ने इस बारे में हिंदुओं की धार्मिक भावनाओं के प्रति संवेदनशीलता की कोई शिकायत नहीं की है और इस संबंध में उसने **के. आर. चिन्ना कृष्ण चेट्टियार** बनाम **श्री अंबल एंड कंपनी**[3] वाले मामले का अवलंब लिया ।

[1] ए. आई. आर. 1955 एस. सी. 558.
[2] (2010) 10 एस. सी. सी. 422.
[3] ए. आई. आर. 1970 एस. सी. 146.

8. विद्वान् काउंसेल ने **कॉर्न प्रोडक्ट्स रिफाइनिंग कंपनी** बनाम **शंर्गिला फूड प्रोडक्ट्स लिमिटेड**[1] वाले मामले का इस दलील के समर्थन में अवलंब लिया कि इससे पूर्व कि आवेदक अपने आवेदन की सफलता के लिए एक या अधिक वैसी ही सामान्य विशेषताएं रखने वाले चिह्नों, जो उसके चिह्न में भी हैं, की मौजूदगी से सहायता प्राप्त करने की ईप्सा कर सके, उसे यह साबित करना होता है कि उन चिह्नों ने बाजार में उपयोग के कारण ख्याति अर्जित कर ली है ।

9. विद्वान् काउंसेल ने अंततः यह दलील दी कि बोर्ड ने सहायक रजिस्ट्रार, व्यापार चिह्न के निर्णय को अपास्त करते हुए चिह्न की सुभिन्नता के बारे में प्रतिकूल रूप से यह अभिनिर्धारित करते हुए कि इस चिह्न से प्रवंचना कारित हो रही है और इसे ईमानदारी से प्रयुक्त नहीं किया गया है, विधि की दृष्टि से गलती की है ।

10. प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि आक्षेपित चिह्न एक धार्मिक ग्रंथ का नाम होने के कारण किसी व्यक्ति के एकाधिकार की विषयवस्तु नहीं बन सकता है । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी कि 'रामायण' चिह्न एक सुभिन्न चिह्न नहीं है और किसी सुभिन्न प्रकृति से रहित है । यह चिह्न एक व्यक्ति के माल और किसी अन्य व्यक्ति के माल में भेद करने में समर्थ नहीं है । यह भी दलील दी गई कि 'रामायण' चिह्न रजिस्ट्रीकरण योग्य नहीं है चूंकि रामायण एक प्रसिद्ध और सुविख्यात धार्मिक ग्रंथ है । यह भी दावा किया गया कि 20 से अधिक व्यापारी पटना में तथा बहुत सारे और इस व्यापार चिह्न का उपयोग कर रहे हैं और इस प्रकार यह एक लोक अधिकार बन गया है । विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने इसके समर्थन में **नेशनल बेल कंपनी** बनाम **मेटल गुड्स मेन्यूफेक्चरिंग कंपनी (प्रा.) लिमिटेड और एक अन्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का अवलंब लिया । उसने आगे यह दलील दी कि आक्षेपित चिह्न प्रत्यर्थी के 'बादशाह रामायण' चिह्न के तद्रूप है, जिसका रजिस्ट्रीकरण लंबित है और आक्षेपित रजिस्ट्रीकरण से अन्य व्यापारियों को परेशानी होगी तथा खरीददारी करने वाली जनता का भ्रमित और प्रवंचित होना लाजिमी है । विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने अंततः यह दावा किया कि बोर्ड ने सहायक रजिस्ट्रार, व्यापार चिह्न द्वारा तारीख 31 मार्च, 2004 को

---

[1] [1960] 1 एस. सी. आर. 968.

[2] (1970) 3 एस. सी. सी. 665.

पारित किए गए आदेश को अपास्त करके ठीक किया है ।

11. हमने सुसंगत दस्तावेजों का सावधानीपूर्वक विवेचन किया और अभिलेख पर सामग्री का परिशीलन किया ।

चर्चा

12. इस अपील में अपीलार्थी ने अगरबत्तियों और सुगंधित सामग्री आदि की बाबत 'रामायण' शब्द वाले व्यापार चिह्न का क्राउन युक्ति के साथ श्रेणी-3 में रजिस्ट्रीकरण करने के लिए तारीख 25 अगस्त, 1994 को एक आवेदन फाइल किया, जिसका सं. 638073-बी था । अपीलार्थी ने तारीख 1 जनवरी, 1987 से इसका उपयोक्ता होने का दावा किया । उसने इसके पश्चात् तारीख 1 जनवरी, 1981 से उपयोक्ता होने की बात में सुधार करने के लिए एक अनुरोध-पत्र फाइल किया, जिसे सहायक रजिस्ट्रार, व्यापार चिह्न द्वारा मंजूर किया गया । इस व्यापार चिह्न का श्रेणी-3 में रजिस्ट्रीकरण करने का विरोध करते हुए इस मामले में प्रत्यर्थी ने अधिनियम की धारा 9, 11(क), 11(ख), 11(ङ), 12(1) और 18(1) के अधीन विरोध सूचना फाइल की । उसने 'बादशाह रामायण' व्यापार चिह्न का उपयोग अपीलार्थी से पूर्व करने का दावा किया । प्रत्यर्थी ने यह विरोध फाइल किया कि आक्षेपित चिह्न एक धार्मिक ग्रंथ का नाम होने के कारण किसी व्यक्ति के एकाधिकार की विषयवस्तु नहीं बन सकता है । उसने यह भी कहा कि उसका इसी प्रकार के व्यापार चिह्न का तारीख 5 नवम्बर, 1985 से उपयोक्ता होने का दावा करते हुए रजिस्ट्रीकरण के लिए आवेदन लंबित है । यह तर्क देते हुए भी इस आवेदन का विरोध किया गया कि इसके साथ बहुत सारे लोगों की भावनाएं जुड़ी हुई हैं और इसलिए कोई व्यक्ति ऐसे किसी शब्द के उपयोग के एकमात्र अधिकार का दावा नहीं कर सकता है । प्रत्यर्थी द्वारा यह भी स्वीकार किया गया कि पटना में 20 से अधिक व्यापारी 'रामायण' व्यापार चिह्न का उपयोग कर रहे हैं । अंततः, यह दलील दी गई कि आक्षेपित चिह्न प्रत्यर्थी के 'बादशाह रामायण' व्यापार चिह्न के तद्रूप है, जिसका रजिस्ट्रीकरण लंबित है और आक्षेपित रजिस्ट्रीकरण से आम जनता में भ्रम उत्पन्न होगा । यद्यपि सहायक रजिस्ट्रार, व्यापार चिह्न ने प्रत्यर्थी द्वारा फाइल किया गया आवेदन खारिज कर दिया और बोर्ड ने उक्त आदेश को यह अभिनिर्धारित करते हुए अपास्त कर दिया कि 'रामायण' व्यापार चिह्न अपीलार्थी के माल का सुभिन्न चिह्न नहीं है क्योंकि यह चिह्न 20 से अधिक व्यापारियों द्वारा पटना में और देश के अलग-अलग भागों में इन्हीं उत्पादों के लिए उपयोग किया जा

रहा है और लोक अधिकार तथा व्यापार के लिए सामान्य बन गया है ।

13. उपरोक्त को दृष्टिगत करते हुए, अधिनियम की धारा 9 का उल्लेख करना सुसंगत है, जो कि निम्न प्रकार से है :–

"9. रजिस्ट्रीकरण की इनकारी के पूर्ण आधार – (1) व्यापार चिह्न –

(क) जो किसी सुभिन्न प्रकृति से रहित हैं, अर्थात् अन्य व्यक्तियों के मध्य किसी व्यक्ति के माल या सेवा को सुभिन्न करने की सक्षमता न रखता हो ;

(ख) जो कि चिह्नों की ऐसी अनन्यता या निर्देशन को गठित करता हो, जो कि व्यापार के पदनाम प्रकार, गुणवत्ता, आशयित प्रयोजन, उपयोगिता, भौगोलिक उद्गम या माल के उत्पादन का समय या सेवा की धारणा या माल या सेवा की अन्य प्रकृति से संबंधित हों ;

(ग) जो चिह्नों की ऐसी अनन्यता या निर्देशन से गठित होता हो, जो कि चालू भाषा में प्रथागत हो गए हैं तथा व्यापार के स्थापित अभ्यास में सद्भावनापूर्ण हों,

तो इसे रजिस्ट्रीकृत नहीं किया जाएगा :

परंतु व्यापार चिह्न के रजिस्ट्रीकरण से इनकार नहीं किया जाएगा, यदि रजिस्ट्रीकरण के आवेदन की तारीख के पूर्व प्रयोग के परिणामस्वरूप यह सुभिन्न प्रकृति अर्जित कर ले या यदि यह अति सुविज्ञ व्यापार चिह्न हो ।

2. एक चिह्न को व्यापार चिह्न के रूप में रजिस्ट्रीकृत नहीं किया जाएगा, यदि –

(क) यह इस प्रकृति का हो कि इससे जनता में छल या भ्रम की स्थिति उत्पन्न होती हो ;

(ख) इसमें कोई ऐसा विषय समाविष्ट हो जिससे भारत के नागरिकों के किसी वर्ग या किसी अन्य वर्ग की धार्मिक भावना के आहत होने की संभावना होती हो ;

(ग) इसमें अपमानकारी या क्षोभकारी विषय अंतर्विष्ट या समाविष्ट हो ;

(घ) इसका प्रयोग इम्ब्लेम एंड नेम्स (प्रिवेंशन आफ इम्प्रॉपर यूज़), 1950 (1950 का 12) के अधीन निषिद्ध हो ।

3. एक चिह्न व्यापार चिह्न के रूप में रजिस्ट्रीकृत नहीं किया जाएगा, यदि यह अनन्यतः निम्न से गठित होता हो –

(क) मालों की आकृति जोकि स्वयं मालों की प्रकृति से प्रकट होती हो ; या

(ख) मालों की आकृति जिसके संबंध में तकनीकी परिणाम का प्राप्त किया जाना आवश्यक हो ; या

(ग) आकृति जो कि माल को मौलिक महत्व प्रदान करती हो ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनार्थ मालों या सेवाओं की प्रकृति के संबंध में जिसमें व्यापार चिह्न प्रयुक्त किया गया है, या इस तरह से प्रयुक्त किया जाना आशयित है, यह रजिस्ट्रीकरण से इनकारी का आधार नहीं होगा ।"

इस धारा में यह अनुबंधित है कि ऐसे व्यापार चिह्न जो किसी सुभिन्न प्रकृति से रहित हैं या जो कि चिह्नों की अनन्यता को या निर्देशन को गठित करता हो, जो कि व्यापार के पदनाम प्रकार, गुणवत्ता, आशयित प्रयोजन, उपयोगिता, भौगोलिक उद्‌गम या माल के उत्पादन का समय या सेवा की धारणा या माल या सेवा की अन्य प्रकृति से संबंधित हों या जो ऐसे चिह्नों की अनन्यता या निर्देशन से गठित होता हो, जो कि चालू भाषा में प्रथागत हो तथा व्यापार के स्थापित अभ्यास में सद्‌भावनापूर्ण हो, तो इसे तब तक रजिस्ट्रीकृत नहीं किया जाएगा जब तक कि यह दर्शित न किया जाए कि चिह्न ने वास्तव में रजिस्ट्रीकरण के आवेदन की तारीख के पूर्व प्रयोग के परिणामस्वरूप सुभिन्न प्रकृति अर्जित कर ली है । इस धारा में यह भी उपबंधित है कि एक चिह्न को व्यापार चिह्न के रूप में रजिस्ट्रीकृत नहीं किया जाएगा, यदि (i) यह इस प्रकृति का हो कि इससे जनता को छल या भ्रम की स्थिति उत्पन्न होती हो, (ii) इसमें कोई ऐसा विषय समाविष्ट हो जिससे भारत के नागरिकों के किसी वर्ग या किसी अन्य वर्ग की धार्मिक भावना के आहत होने की संभावना होती हो, (iii) इसमें अपमानकारी या क्षोभकारी विषय समाविष्ट हो, (iv) इसका प्रयोग निषिद्ध हो । इस धारा में आगे यह भी उपबंधित है कि एक चिह्न व्यापार चिह्न के रूप में प्रयुक्त नहीं किया जाएगा यदि यह अनन्यतः निम्न से गठित होता हो – (क) मालों की

आकृति जोकि स्वयं मालों की प्रकृति से प्रकट होती हो, (ख) मालों की आकृति जिसके संबंध में तकनीकी परिणाम का प्राप्त किया जाना आवश्यक हो, या (ग) आकृति जो कि माल को मौलिक महत्व प्रदान करती हो ।

14. व्यापार चिह्न विधेयक, 1993 पर संसदीय स्थायी समिति द्वारा प्रस्तुत आठवीं रिपोर्ट के खंड 13.3 में हमने यह पाया कि समिति ने अपनी यह राय अभिव्यक्त की है कि देवताओं, देवियों, पूजा-स्थलों से संबंधित कोई प्रतीक सामान्य तौर पर व्यापार चिह्न के रूप में रजिस्ट्रीकृत नहीं किया जाना चाहिए । तथापि, समिति ने विद्यमान व्यापार चिह्नों को उनका रजिस्ट्रीकरण प्रतिषिद्ध करके विघ्न डालना नहीं चाहा, क्योंकि इसके परिणामस्वरूप बाजार में अव्यवस्था हो जाती । साथ-ही-साथ, समिति ने यह विश्वास जताया कि यदि कोई व्यक्ति यह शिकायत करता है कि किसी विशिष्ट व्यापार चिह्न से उसकी धार्मिक भावना आहत हो रही है तो सरकार उचित कार्यवाही करेगी । यह रिपोर्ट तारीख 21 अप्रैल, 1994 को प्रस्तुत की गई थी । जब रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी, तब अपीलार्थी का व्यापार चिह्न रजिस्ट्रीकृत नहीं हुआ था और इस अपील में प्रत्यर्थी द्वारा इसके रजिस्ट्रीकरण का विरोध करते हुए फाइल किया गया आवेदन सहायक रजिस्ट्रार, व्यापार चिह्न द्वारा तारीख 31 मार्च, 2004 को ही खारिज किया गया था ।

15. 'रामायण' शब्द महर्षि वाल्मीकि द्वारा लिखित एक ग्रंथ का शीर्षक है और हमारे देश में इसे हिन्दुओं का एक धार्मिक ग्रंथ माना जाता है । इस प्रकार, 'रामायण' ग्रंथ के नाम का अनन्य प्रयोग करते हुए इसे किसी वस्तु के लिए व्यापार चिह्न के रूप में रजिस्ट्रीकृत कराने के लिए अधिनियम के अधीन अनुज्ञेय नहीं हो सकता है । यदि 'रामायण' शब्द के साथ उपसर्ग या प्रत्यय के रूप में कोई अन्य शब्द जोड़ा जाता है और शब्दों का वर्ण या डिजाइन या लंबाई 'रामायण' शब्द जितनी है तब 'रामायण' शब्द का एक धार्मिक ग्रंथ के रूप में महत्व कम जो जाएगा और इस पर व्यापार चिह्न के रूप में रजिस्ट्रीकरण करने के लिए विचार किया जा सकता है । तथापि, वर्तमान मामले में हम यह पाते हैं कि अपीलार्थी ने 'रामायण' शब्द का व्यापार चिह्न के रूप में रजिस्ट्रीकरण करने के लिए आवेदन किया है । हम यह भी पाते हैं कि फोटोचित्रों में 'रामायण' शब्द के साथ सबसे ऊपर 'ओम' शब्द जोड़ने के पश्चात् 'ओम तथा रामायण' के मध्य में 'तीन उच्च श्रेणी की आमोद सुगंध' (थ्री टाप क्लास एरोमेटिक फ्रेगरेंस) वाक्य भी लिखा गया है । इस प्रकार, यह ऐसा मामला नहीं है कि अपीलार्थी 'ओम-रामायण' शब्द का व्यापार चिह्न के रूप में रजिस्ट्रीकरण करने की ईप्सा कर रहा है । इसके

अतिरिक्त, फोटोचित्रों में हम यह पाते हैं कि भगवान राम, सीता और लक्ष्मण के फोटोचित्रों को भी लेबल में दिखाया गया है जो इस बात का स्पष्ट संकेत है कि अपीलार्थी देवताओं और देवियों के नाम का लाभ उठा रहा है जो कि अन्यथा अनुज्ञात नहीं है ।

16. **नेशनल बेल कंपनी** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि किसी रजिस्ट्रीकृत स्वत्वधारी के माल से संबंधित व्यापार चिह्न की सुभिन्नता अनेक प्रकार से समाप्त हो सकती है, उदाहरण के लिए, ऐसे माल द्वारा जो ऐसे स्वत्वधारी के माल में भेद करने में समर्थ नहीं है या अत्यधिक दस्युता जिससे कि चिह्न लोक अधिकार बन गए हैं । धारा 32 के खंड (ग) में अंतर्निहित सिद्धांत यह है कि किसी व्यापार चिह्न में की संपत्ति तब तक विद्यमान रहती है जब तक कि यह जनता या जनता के एक वर्ग की दृष्टि में रजिस्ट्रीकृत स्वत्वधारी का सुभिन्न माल बना रहता है । यदि स्वत्वधारी चिह्न का प्रयोग अपने माल का अन्य के माल से भेद करने के लिए करने की स्थिति में नहीं है या इसका परित्याग कर दिया है या चिह्न बाजार में इतना सामान्य हो गया है कि इसका उसके माल से उसका संबंध होना समाप्त हो गया है, तब मुश्किल से इसे रजिस्टर पर प्रतिधारित रखने का कोई औचित्य होगा ।

17. अभिलेख पर यह भी आया है कि इसी प्रकार के उत्पादों के लिए पटना में 20 से अधिक और देश के भिन्न-भिन्न भागों में व्यापारियों द्वारा 'रामायण' शब्द का चिह्न के रूप में उपयोग किया जा रहा है, और इसलिए यह लोक अधिकार तथा व्यापार के लिए सामान्य बन गया है ।

निष्कर्ष

18. बहुत सारे पवित्र और धार्मिक ग्रंथ हैं जिनमें से कुछ क़ुरान, बाइबल, गुरु ग्रंथ साहिब, रामायण आदि हैं । इस प्रश्न का, कि क्या कोई व्यक्ति उसके द्वारा विपणित अपने माल या सेवाओं के लिए एक व्यापार चिह्न के रूप में किसी पवित्र या धार्मिक ग्रंथ के नाम का दावा कर सकता है, स्पष्ट उत्तर है 'नहीं' ।

19. इसके अतिरिक्त, अपीलार्थी यह सिद्ध नहीं कर सका है कि 'रामायण' शब्द ने, जिसके लिए उसने व्यापार चिह्न हेतु आवेदन किया है, बाजार में उपयोक्ता-ख्याति अर्जित कर ली है, क्योंकि हमने यह पाया है कि शहर में 20 से अधिक और देश के भिन्न-भिन्न भागों में भी व्यापारी इसी प्रकार के उत्पादों के लिए 'रामायण' शब्द का चिह्न के रूप में उपयोग कर रहे हैं ।

20. कथित रूप से सृजित की गई कलात्मक कृति का परिशीलन करने पर इसमें कोई संदेह नहीं है कि दोनों चिह्न डिजाइन, रंग, स्कीम में तद्रूप हैं और फोटोचित्रों का प्रत्युत्पादन ऐसी रीति में है कि सामान्य क्रेता युक्तियुक्त रूप से इस गलत निष्कर्ष पर पहुंचेगा कि एक ब्रांड के अंतर्गत आने वाली वस्तु दूसरे ब्रांड के अंतर्गत आने वाली वस्तु हो सकती है । दोनों ही पक्षकारों ने कतिपय माल के विनिर्माण में लगी विनिर्माण इकाइयां होने का दावा किया है ।

21. इसके अतिरिक्त, इस अपील में प्रत्यर्थी ने यह दावा किया है कि यद्यपि वह वर्ष 1980 से कारबार कर रहा है, उसने कलात्मक कृति का विकास और प्रकाशन वर्ष 1986 में किया था और इस चिह्न का एक व्यापार चिह्न के रूप में भी उपयोग कर रहा है तथा वर्ष 1986 से इसका उपयोग का दावा किया है, जबकि इस अपील में अपीलार्थी ने व्यापार चिह्न का उपयोग वर्ष 1987 से करने का दावा किया है । तथापि, अपीलार्थी ने संबंधित प्राधिकारी के पास एक आवेदन फाइल करके वर्ष 1981 से इसका उपयोग करने का दावा किया है । इसके अतिरिक्त, प्रत्यर्थी द्वारा फाइल किए गए विभिन्न मुख्य वादों में किए गए अभिवचनों में, अपीलार्थी ने स्वीकार किया है कि प्रत्यर्थी के कलात्मक चिह्न का उपयोग और प्रकाशन उसके द्वारा चिह्न का उपयोग करने के दावे की तारीख अर्थात् 1987 के पूर्व से किया जा रहा है । इन तथ्यों से, यह स्पष्ट है कि प्रत्यर्थी कलात्मक चिह्न का उपयोग समय के हिसाब से अपीलार्थी से पहले से कर रहा है ।

22. पूर्वगामी चर्चा को ध्यान में रखते हुए, हम बोर्ड द्वारा तारीख 10 जनवरी, 2005 को पारित किए गए आदेश में कोई अनियमितता नहीं पाते हैं और परिणामस्वरूप यह अपील असफल होती है तथा तद्नुसार खारिज की जाती है । तथापि, पक्षकार अपना-अपना खर्च स्वयं वहन करेंगे ।

अपील खारिज की गई ।

जस.

राम लखन सिंह (डा.)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य मार्फत **मुख्य सचिव**

17 नवम्बर, 2015

न्यायमूर्ति रंजन गोगोई और न्यायमूर्ति एन. वी. रमण

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 32 – याची-भारतीय वन सेवा के पदधारी पर प्रत्यर्थी-राज्य द्वारा भ्रष्टाचार का आरोप लगाया जाना – प्रक्रिया अनुसार सतर्कता जांच न किया जाना – विशेष न्यायाधीश तथा उच्च न्यायालय द्वारा मामले को मिथ्या पाया जाना और कार्यवाहियों को अकृत और शून्य घोषित किया जाना – याची द्वारा उसे पहुंची वित्तीय हानि, मानसिक कष्ट और समाज में हुई प्रतिष्ठा की हानि के लिए प्रतिकर देने के लिए राज्य को निदेश देने हेतु रिट याचिका – सामान्यतः, यह न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए किसी प्रकार के प्रतिकर का अवधारण या प्रदान करने से विरक्त रहता है, अपितु पक्षकारों को उन विवाद्यकों का न्यायनिर्णयन करने के लिए सक्षम न्यायालयों में समावेदन करने की सलाह देता है, किंतु इस मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों, याची के विरुद्ध लगाया गया भ्रष्टाचार का कोई आरोप साबित न होने, लगभग 10 वर्षों तक मुकदमेबाजी झेलने और उसे हुई वित्तीय हानि तथा उसकी आयु और उसके द्वारा उठाए गए कष्टों को देखते हुए उसे एकमुश्त दस लाख रुपए का प्रतिकर देने के लिए राज्य को निदेश दिया जाना उचित है ।

याची ने उत्तर प्रदेश सरकार और भारत सरकार में लगभग 35 वर्षों तक सेवा की । वह तारीख 23 सितम्बर, 2003 को राष्ट्रीय वन्य जीव बोर्ड का सदस्य बना । प्रत्यर्थी-उत्तर प्रदेश राज्य के तत्कालीन मुख्य मंत्री ने तारीख 15 अक्तूबर, 2003 को हुई राष्ट्रीय वन्य जीव बोर्ड की बैठक में अभिकथित रूप से याची से यह चाहा कि प्रतापगढ़ जिले के कुंडा स्थित बेंती पक्षी विहार को राष्ट्रीय वन्य जीव बोर्ड द्वारा अधिसूचना में से निकालने के लिए आवश्यक कार्यवाही की जाए । क्योंकि याची ने निदेशों का पालन नहीं किया, इसलिए उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्य मंत्री ने अपनी पार्टी के एक एमएलए द्वारा याची के विरुद्ध की गई एक

शिकायत के बहाने सतर्कता स्थापन के महानिदेशक को उसके विरुद्ध एक सतर्कता जांच आरंभ करने के निदेश जारी किए । तारीख 12 सितम्बर, 1997 के अर्ध-सरकारी पत्र द्वारा परिकल्पित प्रक्रिया के अनुसार इस प्रयोजन के लिए राज्य सतर्कता स्थापन को कोई मामला भेजने से पूर्व राज्य सतर्कता समिति का अनुमोदन लेना एक पूर्ववर्ती शर्त है, किंतु प्रत्यर्थी-राज्य ने विहित प्रक्रिया का अनुसरण किए बिना सतर्कता जांच आरंभ की और उसे पद से हटा दिया । याची द्वारा उच्च न्यायालय में रिट याचिका फाइल करके यह घोषणा करने के लिए समावेदन किया कि उसके विरुद्ध सतर्कता जांच विहित प्रक्रिया का स्पष्ट अतिक्रमण करके की गई है । उच्च न्यायालय ने तारीख 30 जनवरी, 2004 और 14 सितम्बर, 2007 के आदेशों द्वारा राज्य सतर्कता समिति को जांच कार्यवाहियां चलाने का निदेश दिया, किंतु प्रत्यर्थी ने उच्च न्यायालय के निदेशों का पालन नहीं किया । ऐसी स्थिति में, एक अधिवक्ता द्वारा उच्च न्यायालय में एक रिट याचिका फाइल की गई जिसमें याची को प्रत्यर्थी सं. 4 के रूप में नामित किया गया । याची के अनुसार, यह रिट याचिका (लोक हित मुकदमा) तात्पर्यित रूप से उस अधिवक्ता द्वारा, जो तत्कालीन महाधिवक्ता के कार्यालय में कार्य कर रहा था, यह मिथ्या प्रकथन करते हुए फाइल की गई थी कि सतर्कता समिति ने याची के विरुद्ध विभिन्न विवाद्यकों में पहले ही जांच पूरी कर ली है । वास्तव में, उक्त रिट याचिका को संस्थित करने की तारीख पर याची के विरुद्ध राज्य सतर्कता समिति को जांच निर्दिष्ट तक नहीं की गई थी । उक्त याचिका में उच्च न्यायालय ने तारीख 25 जून, 2004 को एक आदेश पारित किया । उच्च न्यायालय द्वारा पारित तारीख 25 जून, 2004 के आदेश का फायदा लेकर याची के विरुद्ध प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की गई और उसके मकान पर छापा डाला गया । याची का यह दावा है कि याची जैसे अखिल भारतीय सेवा के किसी सदस्य के मकान पर छापा डालने और उसे गिरफ्तार करने के लिए राज्य सतर्कता स्थापन को राज्य के मुख्य सचिव की पूर्व अनुज्ञा और अनुमोदन लेना आवश्यक है, जबकि याची के मामले में ऐसा कोई अनुमोदन अभिप्राप्त नहीं किया गया । तदुपरांत, प्रत्यर्थी ने तारीख 5 जुलाई, 2004 के एक पूर्व-दिनांकित पत्र द्वारा, याची के मकान पर तारीख 25 जून, 2004 को डाले गए छापे और याची को अंततः गिरफ्तार करने के तथ्य को छिपाते हुए, अनुमोदन अभिप्राप्त किया । तत्पश्चात्, याची के विरुद्ध उसी दिन दो और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की गईं और याची को उसके

पदीय कर्तव्यों से निलंबित कर दिया गया । इससे व्यथित होकर, याची ने उच्चतम न्यायालय में रिट याचिका फाइल करके समावेदन किया और न्यायालय ने याची को नए सिरे से उच्च न्यायालय में समावेदन करने के लिए अनुज्ञात किया । तद्नुसार, उच्च न्यायालय के समक्ष 2004 की रिट याचिका सं. 126 में कार्यवाहियां पुनः आरंभ हुईं और अंततः उच्च न्यायालय ने तारीख 30 अगस्त, 2011 को मामले का निपटारा किया । याची द्वारा यह कथन करते हुए कि उसे किसी युक्तिसंगत कारण के बिना अभियोजित किया गया और प्रत्यर्थी के केवल विद्वेषपूर्ण तथा सोचे-समझे आशय के कारण उसे प्रधान मुख्य वन संरक्षक के पद से विधिविरुद्ध निलंबन झेलना पड़ा, पूर्ण वेतन और सेवानिवृत्ति फायदों की हानि उठानी पड़ी और उसे अत्यधिक मानसिक पीड़ा के अतिरिक्त उसके और उसके परिवार के चरित्र की मानहानि हुई, इसलिए राज्य सरकार को उसे प्रतिकर देने का निदेश देने की प्रार्थना करते हुए उच्चतम न्यायालय में रिट याचिका फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा रिट याचिका का निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – तथ्यों के वर्णन से प्रत्यर्थी की ओर से की गई स्पष्ट प्रक्रियात्मक चूक उपदर्शित होती है जिससे रिट याची को मानसिक पीड़ा और वित्तीय हानि कारित हुई । यद्यपि इस न्यायालय के समक्ष ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिससे मुख्य मंत्री का अनुरोध न मानने पर याची के विरुद्ध कार्यवाहियां आरंभ करने में उनका अंतर्वलन, जैसा कि याची द्वारा अभिकथन किया गया है, उपदर्शित होता हो, तथापि, प्रत्यर्थी राज्य के अधिकारियों द्वारा सतर्कता कार्यवाहियां आरंभ करने और उच्च न्यायालय के समक्ष किए गए कथनों की वजह से याची की गिरफ्तारी हुई और इस कारण उसे भारी हानि उठानी पड़ी । अंततः, प्रत्यर्थी द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष किए गए कथन के अनुसार और विशेष न्यायाधीश, भ्रष्टाचार निरोध अधिनियम, लखनऊ के तारीख 15 फरवरी, 2012 के आदेश द्वारा अर्जीदार के विरुद्ध सभी कार्यवाहियों को अकृत और शून्य घोषित कर दिया गया था । किंतु इस संपूर्ण प्रक्रिया में याची को मानसिक पीड़ा झेलनी पड़ी और भारी वित्तीय हानि के अतिरिक्त समाज में प्रतिष्ठा की हानि हुई । यहां तक कि याची को सेवानिवृत्ति फायदे विलंब से संदत्त किए गए, जिसे राज्य की उपेक्षा और गैर-जिम्मेदार कृत्य के फलस्वरूप किया गया माना जा सकता है । (पैरा 9)

फाइल किए गए प्रति-शपथपत्र से विनिर्दिष्ट रूप से यह उपदर्शित

होता है कि याची के विरुद्ध प्रथम इत्तिला रिपोर्टें उसके पास उसकी आय के अननुपातिक आस्तियां होने, अवैध खनन और तेंदू पत्ता की नीलामी करने, जिससे सरकारी राजस्व को हानि हुई और क्रेताओं को असम्यक् अभिलाभ हुआ, से संबंधित अपराधों के लिए दर्ज कराई गई थीं । तथापि, सिवाय ऐसे प्रकथन के, याची के विरुद्ध किए गए अभिकथनों के समर्थन में कोई सामग्री इस न्यायालय को उपलब्ध नहीं कराई गई है । दूसरी ओर, 2004 की रिट याचिका सं. 126 में तारीख 30 अगस्त, 2011 को पारित उच्च न्यायालय के आदेश से स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित होता है कि राज्य की ओर से अपर महाधिवक्ता ने याची द्वारा किए गए इन प्रकथनों पर विवाद नहीं किया था कि उसके मामले को कभी सतर्कता समिति को भेजा ही नहीं गया था और परिणामतः उसके विरुद्ध कभी कोई सतर्कता जांच आरंभ नहीं हुई थी । उच्च न्यायालय के आदेश से यह भी प्रकट होता है कि अपर महाधिवक्ता ने यह घोषित करने के लिए कोई आक्षेप नहीं किया कि याची के विरुद्ध की गई सभी कार्यवाहियां और दर्ज की गई शिकायतें शून्य और विधि की दृष्टि से अस्तित्वहीन हो जाती हैं । इस प्रकार पूर्वगामी चर्चा को ध्यान में रखते हुए, यह स्पष्ट है कि राज्य द्वारा प्रति-शपथपत्र में जो प्रतिरक्षा ली गई है वह याची के विरुद्ध की गई अपनी अवैध कार्रवाई को, उनके द्वारा लिए गए आधार का समर्थन करने लिए कोई सामग्री प्रस्तुत किए बिना ही, न्यायोचित ठहराने के लिए है । यह प्रतीत होता है कि याची ने न्यायालय कार्यवाहियों से अपने उन्मोचन के पश्चात् तारीख 12 मई, 2011 को मुख्य मंत्री को प्रतिकर और नुकसानी के रूप में साढ़े चार करोड़ रुपए की रकम की ईप्सा करते हुए एक पत्र लिखा । सामान्यतः, यह न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए किसी प्रकार के प्रतिकर का अवधारण या प्रदान करने से विरक्त रहता है, अपितु पक्षकारों को उन विवाद्यकों का न्यायनिर्णयन करने के लिए सक्षम न्यायालयों में समावेदन करने की सलाह देता है । तथापि, इस मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए और याची की आयु तथा उसके द्वारा उठाए गए कष्ट पर विचार करते हुए, जिसने लगभग 11 दिन कारागार में बिताए और लगभग दस वर्षों तक विभिन्न न्यायालयों के समक्ष कानूनी लड़ाई लड़ी और विशिष्टतया याची के विरुद्ध भ्रष्टाचार के किसी साबित आरोप के अभाव में, यह न्यायालय यह उचित समझता है कि सभी बातों के आधार पर याची को प्रतिकर के रूप में एकमुश्त दस लाख रुपए अधिनिर्णीत किए जाएं । तद्नुसार, यह न्यायालय उत्तर प्रदेश राज्य को निदेश देता है कि वह याची को तीन माह

के भीतर प्रतिकर के रूप में दस लाख रुपए की एकमुश्त राशि का संदाय करे । (पैरा 13, 14 और 15)

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2014 की रिट याचिका (सिविल) सं. 933.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 32 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से याची-स्वयं

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री दिनेश द्विवेदी, ज्येष्ठ अधिवक्ता, गौरव भाटिया, अपर महाधिवक्ता और अभिषेक चौधरी

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एन. वी. रमण ने दिया ।

न्या. रमण – भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन यह याचिका भारतीय वन सेवा (1969 बैच, उत्तर प्रदेश) के एक पदधारी डा. राम लखन सिंह द्वारा फाइल की गई है, जिसने प्रत्यर्थी-राज्य और भारत सरकार में अपनी सेवानिवृत्ति तक विभिन्न पदों पर लगभग 35 वर्ष सेवा की है । याची की मुख्य दलील यह है कि प्रत्यर्थी प्राधिकारियों द्वारा उसे मिथ्या सतर्कता मामलों में आलिप्त करके और उच्च न्यायालय के निदेशों का अनादर करते हुए अवैध रूप से निरुद्ध किया गया । राज्य के विद्वेषपूर्ण, जानबूझकर और अवमानात्मक कार्यों और विधिक प्रक्रिया के स्पष्ट दुरुपयोग के कारण उसकी और उसके परिवार की समाज में मानहानि होने के अतिरिक्त उन्हें गहन मानसिक पीड़ा और भारी वित्तीय हानि उठानी पड़ी । इसलिए उसने इस न्यायालय से अनुरोध किया कि उसके परिवार के सदस्यों के मूल अधिकारों का अतिक्रमण होने पर अप्रसन्नता जाहिर की जाए और उसके वृत्तिक सेवाकाल, प्रतिष्ठा की हानि और मानसिक पीड़ा पहुंचाने के लिए प्रतिकर का संदाय करने हेतु राज्य को निदेश दिया जाए ।

2. याची, जिसने हमारे समक्ष अपने मामले में व्यक्तिगत रूप से बहस की, द्वारा प्रस्तुत किए गए सुसंगत तथ्य यह हैं कि उसने उत्तर प्रदेश सरकार और भारत सरकार में लगभग 35 वर्षों तक, अकलंकित अभिलेख के साथ, सेवा की है । वह तारीख 23 सितम्बर, 2003 को राष्ट्रीय वन्य जीव बोर्ड का सदस्य बना । प्रत्यर्थी-राज्य के तत्कालीन मुख्य मंत्री ने तारीख 15 अक्तूबर, 2003 को हुई राष्ट्रीय वन्य जीव बोर्ड की बैठक में याची से चाहा कि प्रतापगढ़ जिले के कुंडा स्थित बेंती पक्षी विहार को

राष्ट्रीय वन्य जीव बोर्ड द्वारा अधिसूचना में से निकालने के लिए आवश्यक कार्यवाही की जाए । क्योंकि याची ने निदेशों का पालन नहीं किया, इसलिए उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्य मंत्री ने अपनी पार्टी के एक एमएलए द्वारा याची के विरुद्ध की गई एक शिकायत के बहाने सतर्कता स्थापन के महानिदेशक को उसके विरुद्ध एक सतर्कता जांच आरंभ करने के निदेश जारी किए । तारीख 12 सितम्बर, 1997 के अर्ध-सरकारी पत्र सं. 2020/39(2)-12(5)-74 (प्रदर्श पी-11) द्वारा परिकल्पित प्रक्रिया के अनुसार इस प्रयोजन के लिए राज्य सतर्कता स्थापन को कोई मामला भेजने से पूर्व राज्य सतर्कता समिति का अनुमोदन लेना एक पूर्ववर्ती शर्त है, किंतु प्रत्यर्थी-राज्य ने विहित प्रक्रिया का अनुसरण किए बिना सतर्कता जांच आरंभ की और उसे पद से हटा दिया । याची ने 2004 की रिट याचिका सं. 126 द्वारा उच्च न्यायालय में यह घोषणा करने के लिए समावेदन किया कि उसके विरुद्ध सतर्कता जांच विहित प्रक्रिया का स्पष्ट अतिक्रमण करके की गई है । उच्च न्यायालय ने तारीख 30 जनवरी, 2004 और 14 सितम्बर, 2007 के आदेशों द्वारा राज्य सतर्कता समिति को जांच कार्यवाहियां चलाने का निदेश दिया, किंतु प्रत्यर्थी ने उच्च न्यायालय के निदेशों का पालन नहीं किया ।

3. ऐसी स्थिति में, एक अधिवक्ता द्वारा उच्च न्यायालय में 2004 की रिट याचिका सं. 2985 फाइल की गई जिसमें याची को प्रत्यर्थी सं. 4 के रूप में नामित किया गया । याची के अनुसार, यह रिट याचिका (लोक हित मुकदमा) तात्पर्यित रूप से उस अधिवक्ता द्वारा, जो तत्कालीन महाधिवक्ता के कार्यालय में कार्य कर रहा था, यह मिथ्या प्रकथन करते हुए फाइल की गई थी कि सतर्कता समिति ने याची के विरुद्ध विभिन्न विवाद्यकों में पहले ही जांच पूरी कर ली है । वास्तव में, उक्त रिट याचिका को संस्थित करने की तारीख पर याची के विरुद्ध राज्य सतर्कता समिति को जांच निर्दिष्ट तक नहीं की गई थी । उक्त याचिका में उच्च न्यायालय ने तारीख 25 जून, 2004 को एक आदेश पारित किया, जो अन्य बातों के साथ-साथ इस प्रकार है :-

> "इस मामले को तारीख 12 फरवरी, 2004 को सूचीबद्ध किया जाए । सतर्कता समिति कार्यवाही चलाए, किंतु कोई अंतिम आदेश पारित नहीं किया जाएगा ।
>
> आगे यह भी प्रकथन किया गया है कि सतर्कता समिति ने प्रत्यर्थी सं. 4 अर्थात् डा. राम लखन सिंह के विरुद्ध विभिन्न

विवाद्यकों में पहले ही जांच पूरी कर ली है और उसका मामला सरकारी निधियों का अपनी इच्छा अनुसार दुरुपयोग करने संबंधी गंभीर प्रकृति का है । कहीं भी खंड न्यायपीठ ने तारीख 30 जनवरी, 2004 के अपने आदेश द्वारा राज्य को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज करने से नहीं रोका है, यदि सतर्कता समिति प्रथमदृष्ट्या इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि प्रत्यर्थी सं. 4 द्वारा कोई संज्ञेय अपराध कारित किया गया है, तो राज्य, यह पाए जाने पर कि प्रत्यर्थी सं. 4 ने कोई संज्ञेय अपराध कारित किया है तो वह प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने के लिए स्वतंत्र है और यदि उसे सतर्कता समिति की रिपोर्ट से ऐसा पता चलता है तो न केवल राज्य अपितु कोई भी व्यक्ति किसी विशिष्ट व्यक्ति द्वारा कथित रूप से कारित किसी संज्ञेय अपराध की बाबत दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 154 के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कर सकता है । खंड न्यायपीठ ने राज्य को कभी भी प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज करने से नहीं रोका है चूंकि विभागीय कार्यवाही भलीभांति साथ-साथ जारी रखी जा सकती है ।

पूर्वोक्त मताभिव्यक्तियों के साथ, इस याचिका का अंतिम रूप से निपटारा किया जाता है ।"

4. उच्च न्यायालय द्वारा पारित तारीख 25 जून, 2004 के आदेश का फायदा लेकर याची के विरुद्ध प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की गई और उसके मकान पर छापा डाला गया । याची का यह दावा है कि याची जैसे अखिल भारतीय सेवा के किसी सदस्य के मकान पर छापा डालने और उसे गिरफ्तार करने के लिए राज्य सतर्कता स्थापन को राज्य के मुख्य सचिव की पूर्व अनुज्ञा और अनुमोदन लेना आवश्यक है, जबकि याची के मामले में ऐसा कोई अनुमोदन अभिप्राप्त नहीं किया गया । तदुपरांत, प्रत्यर्थी ने तारीख 5 जुलाई, 2004 के एक पूर्व-दिनांकित पत्र द्वारा, याची के मकान पर तारीख 25 जून, 2004 को डाले गए छापे और याची को अंततः गिरफ्तार करने के तथ्य को छिपाते हुए, अनुमोदन अभिप्राप्त किया । तत्पश्चात्, याची के विरुद्ध उसी दिन दो और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की गईं और याची को उसके पदीय कर्तव्यों से निलंबित कर दिया गया ।

5. इससे व्यथित होकर, याची ने 2004 की रिट याचिका फाइल करके इस न्यायालय में समावेदन किया और इस न्यायालय ने याची को नए सिरे से उच्च न्यायालय में समावेदन करने के लिए अनुज्ञात किया ।

तद्नुसार, उच्च न्यायालय के समक्ष 2004 की रिट याचिका सं. 126 में कार्यवाहियां पुनः आरंभ हुईं और अंततः उच्च न्यायालय ने तारीख 30 अगस्त, 2011 को मामले का, अन्य बातों के साथ-साथ, यह मत व्यक्त करते हुए निपटारा किया :–

> "डा. राम लखन सिंह की मौजूदगी में विद्वान् ज्येठ अधिवक्ता श्री प्रशांत चन्द्रा और राज्य की ओर से अपर महाधिवक्ता श्री जे. एन. माथुर को सुना ।
>
> याची की ओर से काउंसेल की यह प्रार्थना है कि न्यायालय के तारीख 30 जनवरी, 2004 के आदेश का अतिक्रमण करके की गई सभी कार्यवाहियां और पारित किए गए आदेश, यदि कोई हों, शून्य और अकृत घोषित किए जाएं और अभिखंडित किए जाएं और वास्तव में मामला कभी सतर्कता समिति को निर्दिष्ट ही नहीं किया गया था और परिणामतः याची के विरुद्ध कभी कोई सतर्कता जांच आरंभ ही नहीं हुई और इसलिए याची के विरुद्ध इस धारणा के साथ की गई सभी कार्यवाहियां/दर्ज की गई शिकायतें की सतर्कता जांच आरंभ की गई है, शून्य और अस्तित्वहीन हो जाती हैं ।
>
> श्री जे. एन. माथुर ने पूर्वोक्त स्थिति को विवादग्रस्त नहीं किया और यदि ऐसा कोई निदेश जारी किया जाता है तो उन्हें आपत्ति नहीं है ।
>
> हमने अभिलेख पर दस्तावेजों का परिशीलन किया **और हमारा यह निष्कर्ष है कि यह ऐसा मामला है जहां याची को उसके विरुद्ध सतर्कता समिति गठित किए जाने और सतर्कता जांच आरंभ किए जाने के असत्य कथन के कारण गहन पीड़ा से गुजरना पड़ा है ।**"

6. याची ने अंततः यह दलील दी कि उसे किसी युक्तिसंगत कारण के बिना अभियोजित किया गया और प्रत्यर्थी के केवल विद्वेषपूर्ण तथा सोचे-समझे आशय के कारण उसे प्रधान मुख्य वन संरक्षक के पद से विधिविरुद्ध निलंबन झेलना पड़ा, पूर्ण वेतन और सेवानिवृत्ति फायदों की हानि उठानी पड़ी जो दस वर्ष से अधिक अवधि तक रोक कर रखे गए । याची ने एनबीडब्ल्यूएल की सदस्यता, प्रतिष्ठा, अत्यधिक मानसिक पीड़ा और भारी वित्तीय हानि सहित वृत्तिक सेवाकाल की हानि कारित होने के अतिरिक्त अपने चरित्र की मानहानि के लिए प्रतिकर देने की प्रार्थना की है ।

7. राज्य ने एक प्रति-शपथपत्र फाइल करके राज्य के विरुद्ध लगाए गए अभिकथनों से इनकार किया और राज्य की ओर से उपसंजात होने

वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह दलील दी कि याची की गिरफ्तारी और निलंबन उचित प्रक्रिया के अनुसार किए गए थे । राज्य सतर्कता समिति का पूर्व अनुमोदन केवल उन मामलों में लागू होता है जहां प्रशासनिक विभाग मामलों के अन्वेषण की सिफारिश करता है और राज्य सतर्कता समिति का पूर्व अनुमोदन ऐसे मामलों में अपेक्षित नहीं है जैसा मामला याची का है जहां सीधे मुख्य मंत्री ने सतर्कता जांच के लिए आदेश दिए हैं । जांच में यह पाया गया कि याची के पास, एक लोक सेवक होने के नाते, अभिकथित रूप से उसकी आय से अधिक अननुपातिक आस्तियां हैं, इसलिए ऐसा अपराध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(1)(ङ) और 13(2) के अधीन दंडनीय है । यहां तक कि सतर्कता विभाग के दल के अधिकारियों, जिसमें महिला अधिकारी भी थीं, द्वारा तलाशी का कार्य मानव अधिकारों का सम्मान करते हुए नियमों और विनियमों के अनुरूप संचालित किया गया था । इस प्रकार, प्रत्यर्थी ने कोई अवैधता कारित नहीं की थी और माननीय उच्च न्यायालय के आदेशों की कोई अवज्ञा नहीं हुई थी या याची को गारंटीकृत जीवन के मूल अधिकार का स्पष्ट अतिक्रमण हुआ था ।

8. विद्वान् ज्येठ काउंसेल ने अंत में यह दलील दी कि याची को यहां तक कि सेवानिवृत्ति के सभी देय के 14.57 लाख रुपए और उपदान के संदाय में विलंब के लिए ब्याज के रूप में 3,00,886/- रुपए भी संदत्त कर दिए गए हैं । इसके अतिरिक्त, याची, जो तारीख 31 दिसम्बर, 2004 को सेवानिवृत्त हुआ था, को तारीख 28 अगस्त, 2015 को उसकी अंतिम पेंशन स्वीकृत होने तक तारीख 1 जनवरी, 2005 से अनंतिम पेंशन संदत की जाती रही है । तथापि, अर्जित छुट्टी के नकदीकरण के 4,03,106/- रुपए तारीख 21 फरवरी, 2014 को स्वीकृत हुए थे, किंतु छुट्टी के नकदीकरण का देरी से संदाय करने पर नियमों में ब्याज का कोई उपबंध नहीं है और इसलिए ब्याज का संदाय नहीं किया जा सका ।

9. दोनों पक्षकारों को सुनने के पश्चात् हमारा यह निष्कर्ष है कि तथ्यों के वर्णन से प्रत्यर्थी की ओर से की गई स्पष्ट प्रक्रियात्मक चूक उपदर्शित होती है जिससे रिट याची को मानसिक पीड़ा और वित्तीय हानि कारित हुई । यद्यपि हमारे समक्ष ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिससे मुख्य मंत्री का अनुरोध न मानने पर याची के विरुद्ध कार्यवाहियां आरंभ करने में उनका अंतर्वलन, जैसा कि याची द्वारा अभिकथन किया गया है, उपदर्शित होता हो, तथापि, प्रत्यर्थी राज्य के अधिकारियों द्वारा सतर्कता कार्यवाहियां

आरंभ करने और उच्च न्यायालय के समक्ष किए गए कथनों की वजह से याची की गिरफ्तारी हुई और इस कारण उसे भारी हानि उठानी पड़ी । अंततः, प्रत्यर्थी द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष किए गए कथन के अनुसार और विशेष न्यायाधीश, भ्रष्टाचार निरोध अधिनियम, लखनऊ के तारीख 15 फरवरी, 2012 के आदेश (प्रदर्श पी-31) द्वारा अर्जीदार के विरुद्ध सभी कार्यवाहियों को अकृत और शून्य घोषित कर दिया गया था । किंतु इस संपूर्ण प्रक्रिया में याची को मानसिक पीड़ा झेलनी पड़ी और भारी वित्तीय हानि के अतिरिक्त समाज में प्रतिष्ठा की हानि हुई । यहां तक कि याची को सेवानिवृत्ति फायदे विलंब से संदत्त किए गए, जिसे राज्य की उपेक्षा और गैर-जिम्मेदार कृत्य के फलस्वरूप किया गया माना जा सकता है ।

10. लोकतंत्र में लोक सेवक नैतिक आचरण का सरंक्षक होना चाहिए । उसे लोक पद के उच्चतर उत्तरदायित्व सौंपे जाते हैं और वे न्यायसंगत और मानवोचित समाज के लिए अपना सर्वोत्तम योगदान देते हैं । हमारा यह विचार है कि लोकतंत्र के प्रभावी रूप से कार्य करने के लिए कार्यपालिका की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है । लोक सेवकों और लोक पदधारियों से यह प्रत्याशा की जाती है कि वे वृत्तिक सक्षमता, दक्षता और प्रभावकारिता के उच्च मानकों का प्रदर्शन करते हुए तथा संविधान और विधि के शासन की मर्यादा को कायम रखते हुए सर्वथा लोक कल्याण की अग्रसरता को ध्यान में रखते हुए लोगों के भरोसे और विश्वास को बनाए रखें और उसे मजबूती प्रदान करें । लोक नियोजन एक लोक न्यास है और व्यक्तिगत लाभ के लिए लोक हैसियत के अनुचित उपयोग को एक गंभीर न्यास भंग के रूप में समझा जाता है । समय के साथ-साथ कार्यपालिका की भूमिका और शासन से नागरिकों की प्रत्याशा में भी बहुत अधिक बदलाव आया है ।

11. बेईमानी और भ्रष्टाचार किसी भी विकासशील देश के लिए सबसे बड़ी चुनौती हैं । यदि लोक सेवक भ्रष्टाचार में लिप्त होता है, तो ऐसे नागरिक जो सभी दृष्टिकोण से सतर्क रहते हैं, इस बात को गंभीरता से लेते हैं और इससे सरकार तथा इसके तंत्र के प्रति घृणा की भावना विकसित होती है, और कुल मिलाकर इससे संपूर्ण समाज और विशिष्टतया सामान्य व्यक्ति को एक बहुत ही खतरनाक संदेश जाता है । किसी सभ्य समाज में, सर्वोपरि ध्यान समाज का कल्याण है और भ्रष्टाचार उस प्रक्रिया में सबसे बड़ी बाधा है । यदि भ्रष्ट लोक सेवक को दंडित नहीं किया जाता है, तब ईमानदार लोक सेवकों पर इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा, जो

हतोत्साहित और निरुत्साहित होंगे । कुछ ईमानदार अधिकारी भ्रष्टाचार का विरोध करते हैं किंतु वे अकेले ऐसी व्यवस्था को नहीं बदल सकते जिसमें उनका बार-बार दंडस्वरूप स्थानांतरण करके उत्पीड़न किया जाता है, उनके परिवार के लोगों को धमकी दी जाती है और मिथ्या मामले गढ़े तथा थोप दिए जाते हैं ।

12. ऐसे परिदृश्य में, जब तक एक दोषी अधिकारी को अभियोजित करने और निर्दोष अधिकारी को तंग करने वाले, तुच्छ और असद्भावी अभियोजन से संरक्षा करने के बीच एक स्पष्ट संतुलन कायम नहीं किया जाता है, तब तक लोक सेवक के लिए स्वच्छंद और उचित रीति में अपने कर्तव्यों का निर्वहन करना बहुत कठिन होगा । लोक सेवक की दक्षता के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने पदीय कर्तव्यों को निडरता और किसी पक्षपात के बिना पूरा करने के लिए स्वतंत्र हो । ईमानदार अधिकारियों की संरक्षा करके और भ्रष्ट अधिकारियों को यह अहसास कराकर कि वे विधि से ऊपर नहीं हैं, इस विद्यमान खाई को भरने की तीव्र आवश्यकता है । एक ईमानदार लोक सेवक की संरक्षा न केवल उसके हित में अपितु समाज के बृहत्तर हित के लिए अपेक्षित है । इस न्यायालय ने एक बेहतर समाज की प्राप्ति के लिए प्रायः ईमानदार और सत्यनिष्ठ अधिकारियों को एक स्वतंत्र और निष्पक्ष रीति में अपने कर्तव्य को पूरा करने का आश्वासन दिया है ।

13. प्रस्तुत मामले में, राज्य की ओर से सुनवाई के समय फाइल किए गए प्रति-शपथपत्र से विनिर्दिष्ट रूप से यह उपदर्शित होता है कि याची के विरुद्ध प्रथम इत्तिला रिपोर्टें उसके पास उसकी आय के अननुपातिक आस्तियां होने, अवैध खनन और तेंदू पत्ता की नीलामी करने जिससे सरकारी राजस्व को हानि हुई और क्रेताओं को असम्यक् अभिलाभ हुआ, से संबंधित अपराधों के लिए दर्ज कराई गई थीं । तथापि, सिवाय ऐसे प्रकथन के याची के विरुद्ध किए गए अभिकथनों के समर्थन में कोई सामग्री इस न्यायालय को उपलब्ध नहीं कराई गई है । दूसरी ओर, 2004 की रिट याचिका सं. 126 में तारीख 30 अगस्त, 2011 को पारित उच्च न्यायालय के आदेश (प्रदर्श पी-30) से स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित होता है कि राज्य की ओर से अपर महाधिवक्ता ने याची द्वारा किए गए इन प्रकथनों पर विवाद नहीं किया कि उसके मामले को कभी सतर्कता समिति को भेजा ही नहीं गया था और परिणामतः उसके विरुद्ध कभी कोई सतर्कता जांच आरंभ नहीं हुई थी । उच्च न्यायालय के आदेश से यह भी

प्रकट होता है कि अपर महाधिवक्ता ने यह घोषित करने के लिए कोई आक्षेप नहीं किया कि याची के विरुद्ध की गई सभी कार्यवाहियां और दर्ज की गई शिकायतें शून्य और विधि की दृष्टि से अस्तित्वहीन हो जाती हैं । इस प्रकार पूर्वगामी चर्चा को ध्यान में रखते हुए, यह स्पष्ट है कि राज्य द्वारा प्रति-शपथपत्र में जो प्रतिरक्षा ली गई है वह याची के विरुद्ध की गई अपनी अवैध कार्रवाई को उनके द्वारा लिए गए आधार का समर्थन करने लिए कोई सामग्री प्रस्तुत किए बिना ही न्यायोचित ठहराने के लिए है ।

14. यह प्रतीत होता है कि याची ने न्यायालय कार्यवाहियों से अपने उन्मोचन के पश्चात् तारीख 12 मई, 2011 को मुख्य मंत्री को प्रतिकर और नुकसानी के रूप में साढ़े चार करोड़ रुपए की रकम की ईप्सा करते हुए एक पत्र लिखा । सामान्यतः, यह न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए किसी प्रकार के प्रतिकर का अवधारण या प्रदान करने से विरक्त रहता है, अपितु पक्षकारों को उन विवाद्यकों का न्यायनिर्णयन करने के लिए सक्षम न्यायालयों में समावेदन करने की सलाह देता है । तथापि, इस मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए और याची की आयु तथा उसके द्वारा उठाए गए कष्ट पर विचार करते हुए, जिसने लगभग 11 दिन कारागार में बिताए और लगभग दस वर्षों तक विभिन्न न्यायालयों के समक्ष कानूनी लड़ाई लड़ी और विशिष्टतया याची के विरुद्ध भ्रष्टाचार के किसी साबित आरोप के अभाव में, हम यह उचित समझते हैं कि सभी बातों के आधार पर याची को प्रतिकर के रूप में एकमुश्त दस लाख रुपए अधिनिर्णीत किए जाएं ।

15. तद्नुसार, हम उत्तर प्रदेश राज्य को निदेश देते हैं कि वह याची को तीन माह के भीतर प्रतिकर के रूप में दस लाख रुपए की एकमुश्त राशि का संदाय करे ।

16. तद्नुसार, इस रिट याचिका का निपटारा किया जाता है ।

रिट याचिका का निपटारा किया गया ।

जस.

महाराष्ट्र राज्य

बनाम

हेमंत कावडु चौरीवाल आदि

16 दिसम्बर, 2015

न्यायमूर्ति पिनाकी चन्द्र घोष और न्यायमूर्ति आर. के. अग्रवाल

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) – धारा 32 – मृत्युकालिक कथन – अभियुक्त-पति द्वारा अभिकथित रूप से अपनी पत्नी की हत्या किया जाना – पुलिस प्राधिकारियों द्वारा भेजे गए ज्ञापन द्वारा नायब तहसीलदार द्वारा मृतका का मृत्युकालिक कथन अभिलिखित किया जाना – दोषसिद्धि – उच्च न्यायालय द्वारा दोषमुक्त किया जाना – नायब तहसीलदार को ज्ञापन सौंपने वाले पुलिस पदधारी को न्यायालय में पेश न किए जाने, मृत्युकालिक कथन एक दिन पश्चात् पुलिस थाने में पहुंचने और विलंब के लिए कोई स्पष्टीकरण न दिए जाने से मृत्युकालिक कथन को विश्वसनीय नहीं माना जा सकता है और इसके आधार पर की गई अभियुक्तों की दोषसिद्धि को उच्च न्यायालय द्वारा ठीक ही अपास्त किया गया है ।

मृतका को दाह क्षतियों के उपचार के लिए सामान्य अस्पताल में भर्ती किया गया था । नायब तहसीलदार द्वारा तारीख 20 जून, 2004 को मृतका का मृत्युकालिक कथन अभिलिखित किया गया । उसके आधार पर पुलिस थाने में एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई । बाद में मृतका की दाह क्षतियों के परिणामस्वरूप मृत्यु हो गई । अन्वेषण के पश्चात् पांच अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया गया । विचारण न्यायालय ने अपने निर्णय और आदेश द्वारा अभियुक्त सं. 1 (मृतका के पति) को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 तथा 498क के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए तथा अभियुक्त सं. 4 (मृतका की सास) को धारा 498क के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया । शेष अभियुक्तों को विचारण न्यायालय द्वारा दोषमुक्त कर दिया गया । दोनों सिद्धदोष प्रत्यर्थियों द्वारा उच्च न्यायालय में अपील किए जाने पर उच्च न्यायालय द्वारा आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा दोनों अपीलों को इस आधार पर मंजूर किया गया कि अभियोजन पक्ष इन अभियुक्तों के दोष को युक्तियुक्त संदेह के परे सिद्ध करने में असफल रहा है और इसलिए

संदेह के फायदे के हकदार हैं । महाराष्ट्र राज्य ने उनकी दोषमुक्ति के आदेश को चुनौती देते हुए उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपीलें फाइल कीं । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलें खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह एक स्थिर विधि है कि मृत्युकालिक कथन दोषसिद्धि का एकमात्र आधार हो सकता है और इसकी किसी प्रकार की संपुष्टि की आवश्यकता नहीं होती है । किंतु यह बात भी समान रूप से सत्य है कि मृत्युकालिक कथन विधि के इस मूलभूत सिद्धांत के विरुद्ध है कि 'साक्ष्य प्रत्यक्ष ही होना चाहिए' । इस प्रकार, मृत्युकालिक कथन पर विचार और इसका मूल्यांकन परिवर्ती परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए और इसके महत्व का अवधारण साक्ष्य के विवेचन को शासित करने वाले सिद्धांतों के प्रति निर्देश करके किया जाना चाहिए । वर्तमान मामले में, मृत्युकालिक कथन नायब तहसीलदार द्वारा उसे पुलिस प्राधिकारियों द्वारा एक ज्ञापन के माध्यम से सूचित करने के पश्चात् अभिलिखित किया गया था । तथापि, अभिलेख पर यह बात आई है कि उस पुलिस पदधारी को, जिसने ज्ञापन परिदत्त किया था, कभी न्यायालय के समक्ष पेश नहीं किया गया और न ही उसकी परीक्षा कराई गई । नायब तहसीलदार ने न्यायालय के समक्ष यह अभिसाक्ष्य दिया कि डाक्टर से मृतका की मानसिक समर्थता के बारे में स्वास्थ्य संबंधी प्रमाणपत्र लिया गया था । तथापि, इस प्रमाणपत्र में कहीं यह उल्लेख नहीं है कि मृतका कथन करने के समय पर उपयुक्त और स्थिरचित्त हालत में थी । मृत्युकालिक कथन तारीख 20 जून, 2004 को अर्थात् घटना वाले दिन ही अभिलिखित किया गया था किंतु इसे अपराह्न में 5.45 बजे अभिलिखित किया गया था और यह बात निर्विवाद है कि घटना सवेरे 8.00 बजे घटी थी । नायब तहसीलदार ने विनिर्दिष्ट रूप से यह अभिसाक्ष्य दिया कि मृतका से रक्त-संबंध रखने वाले व्यक्तियों को उसने वार्ड से बाहर जाने का आदेश दिया था । मृत्युकालिक कथन पर नायब तहसीलदार (अभि. सा. 1), डाक्टर (अभि. सा. 5) द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे और मृतका के अंगूठे की छाप अपराह्न में लगभग 5.55 बजे ली गई थी । इसके पश्चात् मृत्युकालिक कथन के आधार पर तारीख 21 जून, 2004 को घाटनजी पुलिस थाने में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई थी, तथापि, इस बारे में कोई स्पष्टीकरण नहीं है कि उक्त महत्वपूर्ण साक्ष्य पूरे एक दिन किसकी अभिरक्षा में रखा गया था । अभियोजन पक्ष ने उक्त विलंब को स्पष्ट करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं दिया है । (पैरा 8)

द्वितीय विवाद्यक, जो सर्वोपरि ध्यान देने योग्य है, मृतका द्वारा अपने पिता को लिखे गए वे अभिकथित पत्र हैं जिनके बारे में यह दलील दी गई है कि वे स्वयं उसके हस्तलेख में थे । अभि. सा. 3 ने स्वयं यह अभिसाक्ष्य दिया कि उसने केवल कुछेक पत्र प्रस्तुत किए थे जिनसे उसके मामले को सहायता मिली । इसके अतिरिक्त, उसने स्वयं यह साक्ष्य दिया कि पत्र मृतका द्वारा अपने हस्तलेख में लिखे गए थे जिसकी उसे पहचान है । तथापि, अभियोजन पक्ष का कर्तव्य था कि वह ऐसे महत्वपूर्ण साक्ष्य की सत्यता को सिद्ध करे । अभियोजन पक्ष ने यह स्पष्टीकरण दिया कि वह किसी अन्य साधन द्वारा मृतका का हस्तलेख प्राप्त करने में समर्थ नहीं हो सका था । तथापि, यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि मामले में उक्त साक्ष्य का अन्वेषण करने के लिए क्या कदम उठाए गए थे । एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य जो अभिलेख पर है, यह है कि मृत्युकालिक कथन अभिलिखित करते समय नायब तहसीलदार ने यह अभिसाक्ष्य दिया कि मृतका अनपढ़ थी और मृत्युकालिक कथन उसे पढ़कर सुनाया गया था और उसे स्पष्ट किया गया था । ये दोनों तथ्य परस्पर-विरोधाभासी हैं और अभियोजन पक्षकथन के लिए अत्यंत अहितकर हैं जिनको अभियोजन पक्ष द्वारा स्पष्ट किया जाना चाहिए था । उपरोक्त दो महत्वपूर्ण तथ्यों के अतिरिक्त, अभि. सा. 3 (मृतका के पिता), अभि. सा. 4 (मृतका की माता) और अभि. सा. 5 (अन्वेषक अधिकारी) के परिसाक्ष्य विचार करने योग्य हैं । अभि. सा. 3 और अभि. सा. 4 दोनों ने यह अभिसाक्ष्य दिया कि मृतका अपने साथ की गई क्रूरता की घटनाओं, जैसे विवाह के 12 दिन के पश्चात् मारपीट करने, ठीक प्रकार से खाना न पकाने के लिए उसके द्वारा झेले जाने वाले ताने, खाने-पीने की वस्तुओं की कमी आदि के बारे में बताती रहती थी । तथापि, जब प्रतिपरीक्षा की गई, तब यह पाया गया कि इन साक्षियों ने इन तथ्यों का पुलिस को उल्लेख नहीं किया था और अभियोजन पक्ष का समर्थन करने के लिए केवल न्यायालय के समक्ष ये तात्विक सुधार किए गए थे । यह प्रतीत होता है कि अन्वेषक अधिकारी ने जानबूझकर या उपेक्षापूर्वक मामले का अन्वेषण करने में गलती की है । मामला दाह क्षतियों का था, इसलिए मकान में घटना का प्रभाव होना चाहिए था और घटनास्थल एक महत्वपूर्ण तथ्य था तथा आस-पास की सामग्री को अभिगृहीत करना भी महत्वपूर्ण था । तथापि, ऐसे कोई प्रयास नहीं किए गए । यहां तक कि मृतका के हस्तलेख का भी अन्वेषण नहीं किया गया । उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए, प्रतिरक्षा पक्ष ने न्यायालय के समक्ष यह अभिसाक्ष्य दिया कि मृतका ने अपने आप को स्नानघर में बंद कर लिया, अपने ऊपर मिट्टी

का तेल छिड़का और आग लगा ली । आगे यह कथन किया गया है कि अभियुक्तों ने दरवाजे को तोड़कर खोला और उसके पश्चात् मृतका को अस्पताल ले जाया गया । अन्वेषक अधिकारी आसानी से घटनास्थल का या यहां तक कि टूटे हुए दरवाजे या ताले का पता लगा सकता था । यहां यह अधिसंभाव्यता अभियुक्तों के पक्ष में जाती है कि मृतका द्वारा आत्महत्या किए जाने की संभाव्यता से पूरी तरह इनकार नहीं किया जा सकता है । इस न्यायालय की राय में, दो प्रमुख साक्ष्य अर्थात् मृत्युकालिक कथन और अभिकथित पत्रों की बात साबित नहीं होने से अभियोजन पक्षकथन का मूल आधार प्रभावित होता है । इसलिए हमारा यह मत है कि उच्च न्यायालय ने मामले के ढूलमूल अन्वेषण में की खामी का ठीक ही उल्लेख किया है । तथापि, अभियोजन पक्ष अपने आधार पर टिकने और अपने पक्षकथन को सिद्ध करने में असफल रहा है । (पैरा 9, 10, 11 और 12)

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2013 की दांडिक अपील सं. 1828-1829.

2007 की दांडिक अपील सं. 53 में बम्बई उच्च न्यायालय, नागपुर न्यायपीठ, नागपुर के तारीख 2 जुलाई, 2012 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री सिद्धार्थ भटनागर और निशांत रमाकांत राव कटनेशवरकर

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री अंशुमान अनीमेश (सुश्री) साक्षी, (सुश्री) आस्था दीप और शिवाजी एम. जाधव

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति पिनाकी चन्द्र घोष ने दिया ।

न्या. घोष – ये अपीलें, विशेष इजाजत द्वारा, 2007 की दांडिक अपील सं. 53 और 70 में बम्बई उच्च न्यायालय, नागपुर न्यायपीठ, नागपुर द्वारा तारीख 2 जुलाई, 2012 को पारित किए गए निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई हैं । 2007 की दांडिक अपील सं. 53 अभियुक्त सं. 1, जो कि मृतका का पति है, द्वारा फाइल की गई थी और 2007 की दांडिक अपील सं. 70 अभियुक्त सं. 4, जो कि मृतका की सास है, द्वारा फाइल की गई थी । ये दोनों अभियुक्त इस अपील में प्रत्यर्थी हैं । उपरोक्त दोनों अभियुक्तों के अतिरिक्त, तीन और अभियुक्त थे किंतु वे विचारण न्यायालय द्वारा दोषमुक्त कर दिए गए थे जबकि प्रत्यर्थियों को दोषसिद्ध किया गया

था । दोषसिद्ध प्रत्यर्थियों द्वारा की गई अपील में उच्च न्यायालय ने उनकी दोषसिद्धि और दंडादेश को अभिखंडित और अपास्त कर दिया और उन्हें सभी आरोपों से बरी कर दिया ।

2. अभियोजन पक्ष द्वारा यथा प्रकटित मामले के तथ्य यह हैं कि यावतमल सामान्य अस्पताल में नायब तहसीलदार द्वारा तारीख 20 जून, 2004 को अभिलिखित किया गया मृत्युकालिक कथन प्राप्त होने के पश्चात् घाटनजी पुलिस थाने में तारीख 21 जून, 2004 को एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई । तारीख 20 जून, 2004 को सुबह मृतका आशा हेमंत चौरीवाल को दाह क्षतियों के उपचार के लिए घाटनजी अस्पताल लाया गया था । उसे बाद में आगामी उपचार के लिए यावतमल अस्पताल स्थानांतरित किया गया । नायब तहसीलदार द्वारा उसका उसी दिन अपराह्न में लगभग 5.45 बजे मृत्युकालिक कथन अभिलिखित किया गया, जिसके आधार पर उपरोक्त प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई । मृतका की 88 प्रतिशत त्वचीय दाह क्षतियों के संक्रमण के परिणामस्वरूप रक्तविषयन के कारण तारीख 22 जून, 2004 को मृत्यु हो गई ।

3. अन्वेषण के पश्चात् पांच अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया गया । अभिलेख पर की सामग्री पर विचार करने और अभियुक्तों की ओर से काउंसेल को सुनने के पश्चात् उन्हें भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 34 के साथ पठित धारा 302, धारा 34 के साथ पठित धारा 304ख के साथ-साथ धारा 498क के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए भी आरोपित किया गया । आरोपों को उन्हें पढ़कर सुनाया गया और स्पष्ट किया गया । सभी अभियुक्तों ने दोषी न होने का अभिवाक् किया और विचारण का दावा किया ।

4. विचारण न्यायालय ने अपने निर्णय और आदेश द्वारा अभियुक्त सं. 1 और 4 को दोषसिद्ध किया । अभियुक्त सं. 1 को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 तथा 498क के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया गया । तथापि, अभियुक्त सं. 4 को केवल भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया । दोनों सिद्धदोष प्रत्यर्थियों द्वारा अपील किए जाने पर उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा दोनों अपीलों को इस आधार पर मंजूर किया कि अभियोजन पक्ष इन अभियुक्तों के दोष को युक्तियुक्त संदेह के परे सिद्ध करने में असफल रहा है और इसलिए संदेह के फायदे के हकदार हैं । उच्च न्यायालय ने उनकी दोषसिद्धि और दंडादेश

अभिखंडित और अपास्त कर दिए और उन्हें सभी आरोपों से बरी कर दिया । महाराष्ट्र राज्य उनकी दोषमुक्ति के आदेश को चुनौती देते हुए हमारे समक्ष अपील में आया है ।

5. विचारण न्यायालय द्वारा यथा स्वीकृत अभियोजन पक्षकथन दो महत्वपूर्ण साक्ष्यों पर आधारित था – प्रथम, मृतका द्वारा नायब तहसीलदार को किया गया मृत्युकालिक कथन जिसके आधार पर अभियुक्त पति को मृतका की हत्या करने के लिए दोषसिद्ध किया गया, द्वितीय, विचारण न्यायालय ने मृतका द्वारा अभिकथित रूप से अपने पिता को लिखे गए उन पत्रों का अवलंब लिया, जिनसे मृतका द्वारा अपने ससुराल वालों पर अभ्यारोपित उसे साथ की मानसिक और शारीरिक क्रूरता प्रकट होती है और जिसके आधार पर विचारण न्यायालय ने अभियुक्त पति और अभियुक्त सास को क्रूरता के अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया ।

6. अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने विचारण न्यायालय के निर्णय के आधार पर विभिन्न दलीलें दीं । यह दलील दी गई कि मृत्युकालिक कथन और अभि. सा. 1 (नायब तहसीलदार) तथा अभि. सा. 5 (परिचर्या करने वाले डाक्टर) के साक्ष्य के साथ-साथ डाक्टर के प्रमाणपत्र से यह निष्कर्ष निकलता है कि मृत्युकालिक कथन सत्य और विश्वसनीय था और सही रूप से अभिलिखित किया गया था । यह दलील दी गई कि उक्त मृत्युकालिक कथन अभि. सा. 1 और अभि. सा. 5 के परिसाक्ष्यों के अनुरूप था । जहां तक अभिकथित पत्र का संबंध है, याची की ओर से काउंसेल ने जोरदार रूप से यह दलील दी कि अभि. सा. 3 (मृतका के पिता) और अभि. सा. 4 (मृतका की माता) के साक्ष्य से मृतका के साथ की गई क्रूरता की घटना की संपुष्टि होती है । इसके अतिरिक्त, अभि. सा. 3 के साक्ष्य से यह साबित होता है कि मृतका द्वारा अभिकथित पत्र स्वयं अपने हस्तलेख में लिखे गए थे ।

7. प्रत्यर्थियों/अभियुक्तों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने अपीलार्थी द्वारा दिए गए तर्कों का विरोध करते हुए विभिन्न दलीलें दीं । यह दलील दी गई कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज करने में लगभग एक पूरे दिन का विलंब हुआ था । विद्वान् काउंसेल ने विभिन्न चूक उजागर की और यह दलील दी अभियोजन पक्ष कुछ तथ्यों को सारभूत रूप से स्पष्ट करने में असफल रहा है । उदाहरण के लिए, इस बात का कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज करने में विलंब क्यों हुआ था, ऐसे विलंब को स्पष्ट करने के बारे में तात्विक साक्षियों की

परीक्षा नहीं कराई गई और घटनास्थल से तात्विक बरामदगी नहीं की गई । एक अन्य तथ्य जो अभियोजन पक्ष द्वारा स्पष्ट नहीं किया गया, यह था कि जब पुलिस अधिकारियों को तारीख 20 जून, 2004 को यावतमल अस्पताल में एक व्यक्ति की मृत्यु हो जाने के बारे में पता चला तब कोई कार्यवाही या अन्वेषण क्यों आरंभ नहीं किया गया । प्रत्यर्थियों की ओर से काउंसेल ने यह भी दलील दी कि अभियोजन पक्ष द्वारा अभिकथित पत्र स्वयं मृतका के हस्तलेख में होने की बात को साबित नहीं किया गया है ।

8. हमारी सुविचारित राय में, इस न्यायालय के समक्ष दो मुख्य दलीलें दी गई हैं और अब हम हमारे समक्ष दी गई दलीलों को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक दलील की परीक्षा करेंगे । यह एक स्थिर विधि है कि मृत्युकालिक कथन दोषसिद्धि का एकमात्र आधार हो सकता है और इसकी किसी प्रकार की संपुष्टि की आवश्यकता नहीं होती है । किंतु यह बात भी समान रूप से सत्य है कि मृत्युकालिक कथन विधि के इस मूलभूत सिद्धांत के विरुद्ध है कि 'साक्ष्य प्रत्यक्ष ही होना चाहिए' । इस प्रकार, मृत्युकालिक कथन पर विचार और इसका मूल्यांकन परिवर्ती परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए और इसके महत्व का अवधारण साक्ष्य के विवेचन को शासित करने वाले सिद्धांतों के प्रति निर्देश करके किया जाना चाहिए । वर्तमान मामले में, मृत्युकालिक कथन नायब तहसीलदार द्वारा उसे पुलिस प्राधिकारियों द्वारा एक ज्ञापन के माध्यम से सूचित करने के पश्चात् अभिलिखित किया गया था । तथापि, अभिलेख पर यह बात आई है कि उस पुलिस पदधारी को, जिसने ज्ञापन परिदत्त किया था, कभी न्यायालय के समक्ष पेश नहीं किया गया और न ही उसकी परीक्षा कराई गई । नायब तहसीलदार ने न्यायालय के समक्ष यह अभिसाक्ष्य दिया कि डाक्टर से मृतका की मानसिक समर्थता के बारे में स्वास्थ्य संबंधी प्रमाणपत्र लिया गया था । तथापि, इस प्रमाणपत्र में कहीं यह उल्लेख नहीं है कि मृतका कथन करने के समय पर उपयुक्त और स्थिरचित्त हालत में थी । मृत्युकालिक कथन तारीख 20 जून, 2004 को अर्थात् घटना वाले दिन ही अभिलिखित किया गया था किंतु इसे अपराह्न में 5.45 बजे अभिलिखित किया गया था और यह बात निर्विवाद है कि घटना सवेरे 8.00 बजे घटी थी । नायब तहसीलदार ने विनिर्दिष्ट रूप से यह अभिसाक्ष्य दिया कि मृतका से रक्त-संबंध रखने वाले व्यक्तियों को उसने वार्ड से बाहर जाने का आदेश दिया था । मृत्युकालिक कथन पर नायब तहसीलदार (अभि. सा. 1), डाक्टर (अभि. सा. 5) द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे और मृतका के अंगूठे की

छाप अपराह्न में लगभग 5.55 बजे ली गई थी । इसके पश्चात् मृत्युकालिक कथन के आधार पर तारीख 21 जून, 2004 को घाटनजी पुलिस थाने में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई थी, तथापि, इस बारे में कोई स्पष्टीकरण नहीं है कि उक्त महत्वपूर्ण साक्ष्य पूरे एक दिन किसकी अभिरक्षा में रखा गया था । अभियोजन पक्ष ने उक्त विलंब को स्पष्ट करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं दिया है ।

9. द्वितीय विवाद्यक, जो सर्वोपरि ध्यान देने योग्य है, मृतका द्वारा अपने पिता को लिखे गए वे अभिकथित पत्र हैं जिनके बारे में यह दलील दी गई है कि वे स्वयं उसके हस्तलेख में थे । अभि. सा. 3 ने स्वयं यह अभिसाक्ष्य दिया कि उसने केवल कुछेक पत्र प्रस्तुत किए थे जिनसे उसके मामले को सहायता मिली । इसके अतिरिक्त, उसने स्वयं यह साक्ष्य दिया कि पत्र मृतका द्वारा अपने हस्तलेख में लिखे गए थे जिसकी उसे पहचान है । तथापि, अभियोजन पक्ष का कर्तव्य था कि वह ऐसे महत्वपूर्ण साक्ष्य की सत्यता को सिद्ध करे । अभियोजन पक्ष ने यह स्पष्टीकरण दिया कि वह किसी अन्य साधन द्वारा मृतका का हस्तलेख प्राप्त करने में समर्थ नहीं हो सका था । तथापि, यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि मामले में उक्त साक्ष्य का अन्वेषण करने के लिए क्या कदम उठाए गए थे । एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य जो अभिलेख पर है, यह है कि मृत्युकालिक कथन अभिलिखित करते समय नायब तहसीलदार ने यह अभिसाक्ष्य दिया कि मृतका अनपढ़ थी और मृत्युकालिक कथन उसे पढ़कर सुनाया गया था और उसे स्पष्ट किया गया था । ये दोनों तथ्य परस्पर-विरोधाभासी हैं और अभियोजन पक्षकथन के लिए अत्यंत अहितकर हैं जिनको अभियोजन पक्ष द्वारा स्पष्ट किया जाना चाहिए था ।

10. उपरोक्त दो महत्वपूर्ण तथ्यों के अतिरिक्त, अभि. सा. 3 (मृतका के पिता), अभि. सा. 4 (मृतका की माता) और अभि. सा. 5 (अन्वेषक अधिकारी) के परिसाक्ष्य विचार करने योग्य हैं । अभि. सा. 3 और अभि. सा. 4 दोनों ने यह अभिसाक्ष्य दिया कि मृतका अपने साथ की गई क्रूरता की घटनाओं, जैसे विवाह के 12 दिन के पश्चात् मारपीट करने, ठीक प्रकार से खाना न पकाने के लिए मृतका द्वारा झेले जाने वाले ताने, खाने-पीने की वस्तुओं की कमी आदि के बारे में बताती रहती थी । तथापि, जब प्रतिपरीक्षा की गई, तब यह पाया गया कि इन साक्षियों ने इन तथ्यों का पुलिस को उल्लेख नहीं किया था और अभियोजन पक्ष का समर्थन करने के लिए केवल न्यायालय के समक्ष ये तात्विक सुधार किए गए थे ।

11. यह प्रतीत होता है कि अन्वेषक अधिकारी ने जानबूझकर या उपेक्षापूर्वक मामले का अन्वेषण करने में गलती की है । मामला दाह क्षतियों का था, इसलिए मकान में घटना का प्रभाव होना चाहिए था और घटना-स्थल एक महत्वपूर्ण तथ्य था तथा आस-पास की सामग्री को अभिगृहीत करना भी महत्वपूर्ण था । तथापि, ऐसे कोई प्रयास नहीं किए गए । यहां तक कि मृतका के हस्तलेख का भी अन्वेषण नहीं किया गया । उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए, प्रतिरक्षा पक्ष ने न्यायालय के समक्ष यह अभिसाक्ष्य दिया कि मृतका ने अपने आप को स्नानघर में बंद कर लिया, अपने ऊपर मिट्टी का तेल छिड़का और आग लगा ली । आगे यह कथन किया गया है कि अभियुक्तों ने दरवाजे को तोड़कर खोला और उसके पश्चात् मृतका को अस्पताल ले जाया गया । अन्वेषक अधिकारी आसानी से घटनास्थल का या यहां तक कि टूटे हुए दरवाजे या ताले का पता लगा सकता था । यहां यह अधिसंभाव्यता अभियुक्तों के पक्ष में जाती है कि मृतका द्वारा आत्महत्या किए जाने की संभाव्यता से पूरी तरह इनकार नहीं किया जा सकता है ।

12. हमारी राय में, दो प्रमुख साक्ष्य अर्थात् मृत्युकालिक कथन और अभिकथित पत्रों की बात साबित नहीं होने से अभियोजन पक्षकथन का मूल आधार प्रभावित होता है । इसलिए हमारा यह मत है कि उच्च न्यायालय ने मामले के ढूलमूल अन्वेषण में की खामी का ठीक ही उल्लेख किया है । तथापि, अभियोजन पक्ष अपने आधार पर टिकने और अपने पक्षकथन को सिद्ध करने में असफल रहा है ।

13. इस प्रकार, उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, हम उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए निर्णय में हस्तक्षेप करने का कोई बाध्यकारी और सारभूत कारण नहीं पाते हैं । तद्नुसार ये अपीलें खारिज की जाती हैं ।

अपीलें खारिज की गईं ।

जस.

प्रेम नाथ बाली

बनाम

रजिस्ट्रार, दिल्ली उच्च न्यायालय और एक अन्य

16 दिसम्बर, 2015

न्यायमूर्ति जे. चेलामेश्वर और न्यायमूर्ति अभय मनोहर सप्रे

सेवा विधि [सपठित केन्द्रीय सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियम, 1965 का नियम 14] – विभागीय कार्यवाहियां – अपीलार्थी-अपचारी कर्मचारी को 9 वर्ष से अधिक अवधि तक निलंबनाधीन रखा जाना – अनिवार्य सेवानिवृत्ति का दंड – निलंबन की अवधि को अपवर्जित करके पेंशन नियत किया जाना – निलंबन की अवधि असम्यक् रूप से लंबी होने, प्रत्यर्थियों की ओर से विभागीय जांच पूर्ण करने में हुए असम्यक् विलंब को स्पष्ट करने के लिए कोई औचित्यपूर्ण कारण न दिए जाने तथा मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की समग्रता को ध्यान में रखते हुए प्रत्यर्थियों को अपीलार्थी की पेंशन नियत करने में उक्त निलंबन की अवधि को गणना में लेने का आदेश दिया जाना न्यायोचित होगा ।

अपीलार्थी पटियाला हाउस न्यायालय, नई दिल्ली के दांडिक प्रभाग में उच्च श्रेणी लिपिक के रूप में प्रतिलिपि अभिकरण के भारसाधक के तौर पर तैनात था । अपीलार्थी ने पटियाला हाउस न्यायालय में उच्च श्रेणी लिपिक और प्रतिलिपि अभिकरण (दांडिक) के भारसाधक के रूप में कार्य करते हुए तारीख 23 जनवरी, 1990 को एक खिड़की लिपिक के विरुद्ध पटियाला हाउस के न्यायालयों के प्रतिलिपि अभिकरण के भारसाधक अधिकारी को एक लिखित शिकायत दी और अपीलार्थी ने उसके स्थानांतरण के लिए अनुरोध किया । उसी दिन उक्त खिड़की लिपिक ने भी वरिष्ठ अधिकारी के समक्ष यह कथन किया कि तारीख 22 जनवरी, 1990 को अपराह्न में 1.00 बजे आवेदन रजिस्टर बंद होने के पश्चात् उसे यह पता चला कि कुछ आवेदनों की, जिनकी उस दिन रजिस्टर में प्रविष्टि तक नहीं की गई थी, बाद में सीडी2/डाक रजिस्टर में प्रविष्टि की गई और उसी तारीख को उन आवेदनों की प्रमाणित प्रतियां तैयार की गईं । उस पर उसी तारीख को अपराह्न में 2.30 बजे ये प्रतियां परिदत्त करने के लिए भी दबाव डाला गया । जब उसने प्रति परिदत्त करने से मना किया तो अपीलार्थी ने उसके साथ कार्यालय में झगड़ा किया और ऐसे अवांछित

शब्दों का प्रयोग किया जो अनावश्यक थे । भारसाधक अधिकारी ने उपर्युक्त कथन जिला न्यायाधीश को प्रेषित कर दिया । उक्त शिकायत के आधार पर एक प्रारंभिक जांच की गई । उसके पश्चात् अपीलार्थी के विरुद्ध एक विभागीय जांच भी की गई । अपीलार्थी को तारीख 6 फरवरी, 1990 को निलंबित कर दिया गया । अनुशासनिक कार्यवाहियां, जो तारीख 18 जुलाई, 1990 को आरंभ हुईं, नौ वर्ष से अधिक समय तक जारी रहीं । अनुशासनिक कार्यवाहियों के लंबित रहने के दौरान अपीलार्थी ने निलंबन आदेश को वापस लेने की ईप्सा की किंतु अपीलार्थी द्वारा किए गए इस अभ्यावेदन पर विचार नहीं किया गया । उसके बाद, तत्कालीन जिला और सेशन न्यायाधीश ने तारीख 1 मार्च, 1999 के आदेश द्वारा निलंबन आदेश वापस ले लिया । इस विवाद्यक का विनिश्चय नहीं किया गया कि क्या निलंबन की कालावधि की गणना ड्यूटी की अवधि के रूप में की जानी है या नहीं और यह निदेश दिया गया कि इस पर अनुशासनिक कार्यवाहियों की समाप्ति के पश्चात् विचार किया जाएगा । जिला और सेशन न्यायाधीश ने अपीलार्थी पर अनिवार्य सेवानिवृत्ति की मुख्य शास्ति अधिरोपित की और यह भी आदेश किया गया कि अपीलार्थी निलंबन की कालावधि के दौरान पहले ही संदत्त किए गए भत्तों से अधिक किसी रकम का हकदार नहीं होगा । अपीलार्थी ने उक्त आदेश को चुनौती देते हुए दिल्ली उच्च न्यायालय के प्रशासनिक न्यायाधीश के समक्ष अपील फाइल की । प्रशासनिक न्यायाधीश ने अपील खारिज कर दी । अपीलार्थी ने उक्त आदेश के विरुद्ध दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका फाइल की । उच्च न्यायालय ने तारीख 21 अगस्त, 2008 के आक्षेपित निर्णय द्वारा याचिका खारिज कर दी । अपीलार्थी ने उक्त आदेश से व्यथित होकर विशेष इजाजत लेकर उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील भागतः मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस मामले में कोई भी यह विवाद नहीं कर सकता है कि निलंबन अवधि असम्यक् रूप से लंबी थी । यह न्यायालय यह भी पाता है कि विभागीय कार्यवाहियों को पूर्ण करने में हुआ विलंब पूरी तरह से अपीलार्थी द्वारा किया गया विलंब नहीं माना सकता है अपितु इसे समान रूप से प्रत्यर्थियों की ओर से भी किया गया विलंब माना जा सकता है । ऐसे अयुक्तियुक्त विलंब के कारण अपीलार्थी को स्वाभाविक रूप से काफी परेशानी हुई क्योंकि उसे और उसके परिवार को 9 वर्ष की लंबी अवधि तक केवल निलंबन भत्ते पर गुजारा करना पड़ा । इस न्यायालय को यह मत व्यक्त करना होगा कि विभागीय कार्यवाही में, जिसमें केवल एक आरोप अंतर्वलित था और वह भी जटिलता

रहित, विभागीय जांच पूर्ण होने में 9 वर्ष से अधिक का समय कैसे लग गया । विभागीय जांच पूर्ण करने में हुए असम्यक् विलंब को स्पष्ट करने के लिए प्रत्यर्थियों की ओर से अपीलार्थी के आचरण को उत्तरदायी ठहराने के सिवाय कोई औचित्य नहीं दिया गया है जो, न्यायालय के विचार से, पूरी तरह से न्यायानुमत नहीं है । इस न्यायालय ने बार-बार इस बात पर बल दिया है कि नियोजक का यह कर्तव्य है कि वह यह सुनिश्चित करे कि अपचारी कर्मचारी के विरुद्ध आरंभ की गई विभागीय जांच प्राथमिकता के आधार पर संभवतः शीघ्रतम समय के भीतर पूर्ण हो जाए । ऐसे मामलों में जहां अपचारी को ऐसी जांच के लंबित रहने के दौरान निलंबनाधीन रखा जाता है, तब नियोजक के लिए और भी आवश्यक हो जाता है कि यह सुनिश्चित करे कि अपचारी कर्मचारी को होने वाली किसी प्रकार की असुविधा, हानि और उसके अधिकारों पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभाव से बचने के लिए जांच संभवतः शीघ्रतम समय में समाप्त हो जाए । इन बातों को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय की यह सुविचारित राय है कि प्रत्येक नियोजक (चाहे राज्य हो या प्राइवेट) को अपचारी कर्मचारी के विरुद्ध एक बार आरंभ की गई विभागीय जांच कार्यवाहियों की, ऐसी कार्यवाहियों को प्राथमिकता देते हुए, युक्तियुक्त समय के भीतर समाप्ति के लिए शुद्ध अंतःकरण से प्रयास करना चाहिए और यथा संभव ये कार्यवाहियां बाह्य सीमा के रूप में छह माह के भीतर समाप्त हो जानी चाहिएं । जहां कार्यवाहियों में उद्भूत होने वाले कतिपय अपरिहार्य कारणों से नियोजक के लिए इस समय-सीमा के भीतर कार्यवाहियों को समाप्त करना संभव नहीं है, तब कारण और जांच की प्रकृति पर निर्भर करते हुए कार्यवाहियां युक्तियुक्त रूप से विस्तारित अवधि के भीतर, किंतु एक वर्ष से अनधिक नहीं, समाप्त करने का प्रयास करना चाहिए । (पैरा 29, 30, 31 और 33)

प्रस्तुत मामले के तथ्यों पर विचार करने पर यह न्यायालय यह पाता है कि प्रत्यर्थियों ने अपीलार्थी की पेंशन निलंबन की अवधि (9 वर्ष और 26 दिन) अपवर्जित करने के पश्चात् नियत की है । दूसरे शब्दों में, प्रत्यर्थियों ने अपीलार्थी की पेंशन का अवधारण करने के लिए उसकी अर्हक सेवा की गणना करते समय 6 फरवरी, 1990 से 1 मार्च, 1999 तक की निलंबन की अवधि को गणना में नहीं लिया है । तथ्यों और परिस्थितियों, जिन पर ऊपर विचार किया गया है, की समग्रता को ध्यान में रखते हुए इस न्यायालय का यह मत है कि प्रत्यर्थियों को अपीलार्थी की पेंशन का अवधारण करने के लिए निलंबन की अवधि को हिसाब में लेना चाहिए था और न्यायालय तद्नुसार ऐसा करता है । पूर्वगामी चर्चा को दृष्टिगत करते हुए, यह अपील सफल

होती है और अपीलार्थी की पेंशन नियत करने के संबंध में ऊपर उपदर्शित सीमा तक केवल भागतः मंजूर की जाती है । तद्नुसार, प्रत्यर्थियों को निदेशित किया जाता है कि अपीलार्थी की पेंशन को निलंबन की अवधि (6 फरवरी, 1990 से 1 मार्च, 1999 तक) को हिसाब में लेकर पुनः अवधारित किया जाए और फिर अपीलार्थी को उस तारीख से अंतर के बकाया का संदाय किया जाए जब से वह पेंशन के दावे के लिए पात्र हुआ और इसके पश्चात् अपीलार्थी को भविष्य में पुनः अवधारित पेंशन का नियमानुसार नियमित रूप से संदाय किया जाए । (पैरा 34, 35 और 36)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2010 की सिविल अपील सं. 958.

2001 की रिट याचिका (सिविल) सं. 2046 में नई दिल्ली स्थित दिल्ली उच्च न्यायालय के तारीख 12 अगस्त, 2008 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से	सर्वश्री श्रीगेश, वी. एस. लक्ष्मी और बलराज दिवान
प्रत्यर्थियों की ओर से	सर्वश्री वसीम ए. क़ादरी, (सुश्री) रेखा पांडेय, जैद अली, टी क़ादरी, डी. एस. मेहरा और (श्रीमती) अनिल कटियार

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति अभय मनोहर सप्रे ने दिया ।

न्या. सप्रे – यह अपील 2001 की रिट याचिका (सिविल) सं. 2046 में नई दिल्ली स्थित दिल्ली उच्च न्यायालय के तारीख 21 अगस्त, 2008 के उस अंतिम निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने इस अपील में अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई याचिका खारिज कर दी ।

2. इस अपील में अंतर्वलित विवाद्यक, जो कि संक्षिप्त है, का विवेचन करने के लिए यह आवश्यक है कि सुसंगत तथ्यों को संक्षेप में नीचे वर्णित किया जाए ।

3. अपीलार्थी ने तारीख 1 जनवरी, 1965 को जिला और सेशन न्यायालय, दिल्ली के कार्यालय में अवर श्रेणी लिपिक के रूप में कार्यभार ग्रहण किया । उसे तारीख 6 जुलाई, 1976 से पुष्ट किया गया । उसके पश्चात् तारीख 26 जुलाई, 1986 को उसे उच्च श्रेणी लिपिक के रूप में

प्रोन्नत किया गया । उसे मई 1989 में पटियाला हाउस न्यायालय, नई दिल्ली के दांडिक प्रभाग में उच्च श्रेणी लिपिक के रूप में प्रतिलिपि अभिकरण के भारसाधक के तौर पर तैनात किया गया ।

4. अपीलार्थी ने पटियाला हाउस न्यायालय में उच्च श्रेणी लिपिक और प्रतिलिपि अभिकरण (दांडिक) के भारसाधक के रूप में कार्य करते हुए तारीख 23 जनवरी, 1990 को एक खिड़की लिपिक, श्रीमती बृज बाला के विरुद्ध पटियाला हाउस के न्यायालयों के प्रतिलिपि अभिकरण के भारसाधक अधिकारी को एक लिखित शिकायत दी जिसमें यह उल्लेख किया गया कि वह अपने कर्तव्य का प्रभावी तरीके से निर्वहन नहीं कर रही है और वह प्रतिलिपि अभिकरण के काउंटर को प्रायः विहित समय से पहले ही बंद कर देती है और मध्याह्न-भोजन के पश्चात् भी वह अपने काम पर विहित समय के पश्चात् आती है । इसलिए मुकदमेबाज अपीलार्थी को शिकायत करते रहते हैं और उसे यह कार्य करने के लिए अन्य पदधारी को तैनात करना पड़ा । अपीलार्थी ने उसके स्थानांतरण के लिए अनुरोध किया ।

5. उसी दिन श्रीमती बृज बाला ने भी वरिष्ठ अधिकारी के समक्ष यह कथन किया कि तारीख 22 जनवरी, 1990 को अपराह्न में 1.00 बजे आवेदन रजिस्टर बंद होने के पश्चात् उसे यह पता चला कि कुछ आवेदनों की, जिनकी उस दिन रजिस्टर में प्रविष्टि तक नहीं की गई थी, बाद में सीडी2/डाक रजिस्टर में प्रविष्टि की गई और उसी तारीख को उन आवेदनों की प्रमाणित प्रतियां तैयार की गईं । उस पर उसी तारीख को अपराह्न में 2.30 बजे ये प्रतियां परिदत्त करने के लिए भी दबाव डाला गया । जब उसने प्रति परिदत्त करने से मना किया तो अपीलार्थी ने उसके साथ कार्यालय में झगड़ा किया और ऐसे अवांछित शब्दों का प्रयोग किया जो अनावश्यक थे ।

6. भारसाधक अधिकारी ने श्रीमती बृज बाला का उपर्युक्त कथन जिला न्यायाधीश को प्रेषित कर दिया । उक्त शिकायत के आधार पर एक प्रारंभिक जांच की गई । उसके पश्चात् अपीलार्थी के विरुद्ध एक विभागीय जांच भी की गई । अपीलार्थी को तारीख 6 फरवरी, 1990 को निलंबित कर दिया गया ।

7. जिला और सेशन न्यायाधीश, दिल्ली के कार्यालय द्वारा अपीलार्थी पर तारीख 18 जुलाई, 1990 को यह एक ज्ञापन, जिसमें आरोप की मदों का विवरण और अन्य सुसंगत दस्तावेज सम्मिलित थे, तामील किया गया कि प्राधिकारी ने केन्द्रीय सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील)

नियम, 1965 (संक्षेप में "केन्द्रीय सिविल सेवा नियम") के नियम 14 के अधीन उसके विरुद्ध जांच करने की प्रस्थापना की है ।

8. अनुशासनिक कार्यवाहियां, जो तारीख 18 जुलाई, 1990 को आरंभ हुईं, नौ वर्ष से अधिक समय तक जारी रहीं । अनुशासनिक कार्यवाहियों के लंबित रहने के दौरान अपीलार्थी ने निलंबन आदेश को वापस लेने की ईप्सा की किंतु अपीलार्थी द्वारा किए गए इस अभ्यावेदन पर विचार नहीं किया गया । उसके बाद, तत्कालीन जिला और सेशन न्यायाधीश ने तारीख 1 मार्च, 1999 के आदेश द्वारा केन्द्रीय सिविल सेवा नियमों के नियम 10 के उप-नियम 5 के खंड (ग) के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए तुरंत प्रभाव से निलंबन आदेश वापस ले लिया । इस विवाद्यक का विनिश्चय नहीं किया गया कि क्या निलंबन की कालावधि की गणना ड्यूटी की अवधि के रूप में की जानी है या नहीं और यह निदेश दिया गया कि इस पर अनुशासनिक कार्यवाहियों की समाप्ति के पश्चात् विचार किया जाएगा ।

9. जिला और सेशन न्यायाधीश ने अपीलार्थी पर अनिवार्य सेवानिवृत्ति की मुख्य शास्ति अधिरोपित करते हुए तारीख 27 अक्तूबर, 1999 और 28 अक्तूबर, 1999 के दो आदेश पारित किए । यह भी आदेश किया गया कि अपीलार्थी निलंबन की कालावधि के दौरान पहले ही संदत्त किए गए भत्तों से अधिक किसी रकम का हकदार नहीं होगा ।

10. अपीलार्थी ने उक्त आदेश को चुनौती देते हुए दिल्ली उच्च न्यायालय के प्रशासनिक न्यायाधीश के समक्ष अपील फाइल की । प्रशासनिक न्यायाधीश ने तारीख 21 अगस्त, 2000 के आदेश द्वारा अपील खारिज कर दी ।

11. अपीलार्थी ने उक्त आदेश के विरुद्ध दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष 2001 की रिट याचिका सं. 2046 फाइल की । उच्च न्यायालय ने तारीख 21 अगस्त, 2008 के आक्षेपित निर्णय द्वारा याचिका खारिज कर दी ।

12. अपीलार्थी ने उक्त आदेश से व्यथित होकर विशेष इजाजत लेकर इस न्यायालय के समक्ष यह अपील फाइल की ।

13. अपीलार्थी व्यक्तिगत रूप से उपसंजात हुआ । प्रत्यर्थियों की ओर से ज्येष्ठ काउंसेल श्री वसीम क़ादरी उपसंजात हुए । चूंकि अपीलार्थी के पास कोई विधिक सहायता नहीं थी, इसलिए वह व्यक्तिगत रूप से उपसंजात हुआ । हमने विद्वान् काउंसेल श्री श्रीगेश, जो न्यायालय में मौजूद थे, से अपील का विनिश्चय करने में हमारी सहायता करने के लिए

अपीलार्थी की ओर से उपंसजात होने का अनुरोध किया ।

14. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री श्रीगेश और प्रत्यर्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री वसीम क़ादरी को सुना ।

15. हम विद्वान् काउंसेल श्री श्रीगेश की सराहना अभिलिखित करते हैं, जिसने हमारे अनुरोध पर अपीलार्थी की ओर से मामले में कुशलतापूर्वक निष्पक्षता के साथ बहस की और सुनवाई की प्रत्येक तारीख पर अपनी मूल्यवान सहायता प्रदान की ।

16. श्री श्रीगेश की दलीलें तीन प्रकार की थीं । प्रथमतः, उसने यह दलील दी कि अपीलार्थी के विरुद्ध अनिवार्य सेवानिवृत्ति का दंड अधिरोपित करने के लिए किसी प्रकार का कोई मामला नहीं बनता है । उसने विभागीय जांच कार्यवाहियों में भी त्रुटि ढूंढने का प्रयत्न किया और यह दलील दी कि जिस रीति में कार्यवाहियां चलाई गईं, उससे यह उपदर्शित होता है कि अपीलार्थी को आरोपों का सामना करने के लिए उचित अवसर नहीं मिला और इसलिए विभागीय कार्यवाहियां नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के अतिक्रमण में संचालित करने के कारण विधि की दृष्टि से दूषित हैं ।

17. द्वितीयतः, विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि किसी भी स्थिति में अपीलार्थी पर अधिरोपित अनिवार्य सेवानिवृत्ति का दंड आरोप की गंभीरता के अनुरूप नहीं है और आरोपों की प्रकृति के पूर्णतः अननुपातिक होने के कारण इस न्यायालय को दंड की मात्रा में हस्तक्षेप करना चाहिए और इसे आरोपों की गंभीरता के अनुरूप करने के लिए कम करना चाहिए ।

18. तृतीयतः, विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि प्रत्यर्थियों की ओर से कि न्यायसंगत कारण के बिना अपीलार्थी को 9 वर्ष और 26 दिन (6 फरवरी, 1990 से 1 मार्च, 1999 तक) की लंबी अवधि तक निलंबनाधीन रखा गया और फिर भी प्रत्यर्थियों ने अपीलार्थी की पेंशन की गणना करते समय इस अवधि को अपवर्जित कर दिया, जो विद्वान् काउंसेल के अनुसार, न्यायोचित नहीं था और इसलिए प्रत्यर्थियों को अपीलार्थी की पेंशन और अन्य सेवानिवृत्ति फायदों का अवधारण करने के लिए निलंबन की अवधि को गणना में लेने के लिए निदेश जारी किया जाए ।

19. प्रत्यर्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल ने उत्तर में आक्षेपित आदेश का समर्थन किया । जहां तक अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल की अंतिम दलील का संबंध है, उसने यह उत्तर दिया कि चूंकि विभागीय कार्यवाहियों में विलंब अपीलार्थी द्वारा समय-समय पर बार-बार

स्थगन लेने के कारण हुआ था और इसलिए वह अपनी पेंशन नियत करने के लिए निलंबन की अवधि का फायदा लेने का दावा नहीं कर सकता है जो, विद्वान् काउंसेल के अनुसार, निलंबन अवधि को अपवर्जित करके ठीक ही नियत की गई है ।

20. पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों को सुनने और मामले के अभिलेख का परिशीलन करने पर हम अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल की केवल तृतीय दलील में बल पाते हैं, जबकि जहां तक पहली दो दलीलों का संबंध है, हम इनमें कोई सार नहीं पाते हैं ।

21. हमने विभागीय कार्यवाहियों के अभिलेख का परिशीलन किया और यह पाया कि जांच अधिकारी ने विभागीय कार्यवाहियां करते समय नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत का पूर्णतः पालन किया है । यह विवादग्रस्त नहीं है कि अपीलार्थी को विस्तृत आरोप पत्र इसमें निर्दिष्ट दस्तावेजों के साथ तामील किया गया था । इसके पश्चात् पक्षकारों को साक्ष्य प्रस्तुत करने का पूरा अवसर दिया गया था और उन्होंनें अपने-अपने समर्थन में साक्षियों की परीक्षा करके तथा उनमें से प्रत्येक की प्रतिपरीक्षा करके इसका उपभोग किया गया था । हमारी राय में, किन्हीं विभागीय कार्यवाहियों में इससे अधिक और क्या किया जाना चाहिए ? रिट न्यायालय ने इस विवाद्यक की विस्तार से विवेचना की और ठीक ही यह निष्कर्ष अभिलिखित किया कि जांच अधिकारी ने विभागीय कार्यवाहियों में नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत का पालन किया है और कार्यवाहियों में ऐसी कोई त्रुटि नहीं पाई जिससे कि न्यायालय रिट अधिकारिता का प्रयोग करते हुए इसमें हस्तक्षेप करने का हकदार हो ।

22. हम इस विवाद्यक पर भिन्न मत व्यक्त करने का कोई उपयुक्त आधार नहीं पाते हैं और इस दलील को कोई गुणता न होने के कारण नामंजूर करते हैं ।

23. इसके बाद हम अगले इस प्रश्न पर आते हैं कि क्या अपीलार्थी पर अधिरोपित अनिवार्य सेवानिवृत्ति का दंड न्यायोचित था या नहीं । अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल की यह दलील है कि अनिवार्य सेवानिवृत्ति का दंड न्यायोचित नहीं था । तथापि, हमारे मत में यह दंड ठीक ही अधिरोपित किया गया था ।

24. यह विधि का स्थिर सिद्धांत है कि जब एक बार किसी अपचारी कर्मचारी के विरुद्ध लगाए गए आरोप साबित हो जाते हैं तब यह विनिश्चय नियुक्ति प्राधिकारी को करना होता है कि अपचारी कर्मचारी पर नियमों के

अनुसार क्या दंड अधिरोपित किया जाए । नियुक्ति प्राधिकारी आरोपों की प्रकृति और गंभीरता, जांच अधिकारी के निष्कर्ष, अपचारी कर्मचारी के संपूर्ण सेवा अभिलेख तथा अपचारी कर्मचारी से संबंधित सभी सुसंगत बातों को ध्यान में रखते हुए अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करता है और फिर नियमों में उपबंधित अनुसार दंड अधिरोपित करता है ।

25. जब एक बार नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा दंड (चाहे छोटा दंड या मुख्य दंड) अधिरोपित करने के लिए ऐसे विवेकाधिकार का प्रयोग किया जाता है, तब न्यायालय दंड की मात्रा में हस्तक्षेप करने से बचते हैं और विरले और समुचित मामले में ही दंड प्रतिस्थापित करते हैं ।

26. ऐसी शक्ति का प्रयोग तब किया जाता है जब न्यायालय यह पाता है कि अपचारी कर्मचारी यह साबित करने में समर्थ रहा है कि उस पर अधिरोपित दंड पूर्णतः अयुक्तियुक्त, मनमाना और साबित किए गए आरोपों की गंभीरता के इतना अननुपातिक है कि इससे न्यायालय की अंतश्चेतना को धक्का लगा है या जब यह नियमों के उल्लंघन में होना पाया जाए । ऐसे मामलों में न्यायालय नियुक्ति प्राधिकारी को अपचारी कर्मचारी पर मूल रूप से अधिरोपित दंड के स्थान पर नियमानुसार कोई अन्य दंड अधिरोपित करने के लिए मामला नियुक्ति प्राधिकारी को प्रतिप्रेषित कर सकता है या नियुक्ति प्राधिकारी को प्रतिप्रेषित करने के बजाय स्वयं दंड प्रतिस्थापित कर सकता है ।

27. तथापि, अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल मामले के तथ्यों की बाबत हमें यह दर्शित नहीं कर सके कि अपीलार्थी के पक्षकथन से पूर्वोल्लिखित आधारों में से किसी आधार का समाधान होता है जिससे कि यह न्यायालय दंड की मात्रा में हस्तक्षेप करने के लिए हकदार हो और इसलिए हमारे सुविचारित मत में नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा अपीलार्थी पर अधिरोपित अनिवार्य सेवानिवृत्ति का दंड साबित आरोपों की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए न्यायसंगत और उचित प्रतीत होता है और इसमें किसी प्रकार के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है ।

28. इसके पश्चात् अब हम अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल की अंतिम दलील पर आते हैं जो, हमारी सुविचारित राय में, गंभीरता से विचार करने योग्य है ।

29. इस मामले में कोई भी यह विवाद नहीं कर सकता है कि निलंबन अवधि असम्यक् रूप से लंबी थी । हम यह भी पाते हैं कि

विभागीय कार्यवाहियों को पूर्ण करने में हुआ विलंब पूरी तरह से अपीलार्थी द्वारा किया गया विलंब नहीं माना जा सकता है अपितु इसे समान रूप से प्रत्यर्थियों की ओर से भी किया गया विलंब माना जा सकता है । ऐसे अयुक्तियुक्त विलंब के कारण अपीलार्थी को स्वाभाविक रूप से काफी परेशानी हुई क्योंकि उसे और उसके परिवार को 9 वर्ष की लंबी अवधि तक केवल निलंबन भत्ते पर गुजारा करना पड़ा ।

30. हमें यह मत व्यक्त करना होगा कि विभागीय कार्यवाही में, जिसमें केवल एक आरोप अंतर्वलित था और वह भी जटिलता रहित, विभागीय जांच पूर्ण होने में 9 वर्ष से अधिक का समय कैसे लग गया । विभागीय जांच पूर्ण करने में हुए असम्यक् विलंब को स्पष्ट करने के लिए प्रत्यर्थियों की ओर से अपीलार्थी के आचरण को उत्तरदायी ठहराने के सिवाय कोई औचित्य नहीं दिया गया है जो, हमारे विचार से, पूरी तरह से न्यायानुमत नहीं है ।

31. इस न्यायालय ने बार-बार इस बात पर बल दिया है कि नियोजक का यह कर्तव्य है कि वह यह सुनिश्चित करे कि अपचारी कर्मचारी के विरुद्ध आरंभ की गई विभागीय जांच प्राथमिकता के आधार पर संभवतः शीघ्रतम समय के भीतर पूर्ण हो जाए । ऐसे मामलों में जहां अपचारी को ऐसी जांच के लंबित रहने के दौरान निलंबनाधीन रखा जाता है, तब नियोजक के लिए और भी आवश्यक हो जाता है कि यह सुनिश्चित करे कि अपचारी कर्मचारी को होने वाली किसी प्रकार की असुविधा, हानि और उसके अधिकारों पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभाव से बचने के लिए जांच संभवतः शीघ्रतम समय में समाप्त हो जाए ।

32. अनुभव के आधार पर हमने प्रायः यह देखा है कि जांच पूर्ण होने के पश्चात् इसमें अंतर्वलित विवाद्यक का अंत नहीं होता क्योंकि यदि जांच कार्यवाहियों के निष्कर्ष अपचारी कर्मचारी के विरुद्ध गए हैं, तो वह अपनी शिकायत पर विचार करने के लिए सदैव विवाद्यक को न्यायालय में ले जाता है और इसमें पुनः इसके अंतिम निष्कर्ष पर पहुंचने में समय लग जाता है ।

33. इन बातों को ध्यान में रखते हुए, हमारी यह सुविचारित राय है कि प्रत्येक नियोजक (चाहे राज्य हो या प्राइवेट) को अपचारी कर्मचारी के विरुद्ध एक बार आरंभ की गई विभागीय जांच कार्यवाहियों की, ऐसी कार्यवाहियों को प्राथमिकता देते हुए, युक्तियुक्त समय के भीतर समाप्ति के लिए शुद्ध अंतःकरण से प्रयास करना चाहिए और यथा संभव ये कार्यवाहियां बाह्य सीमा के रूप में छह माह के भीतर समाप्त हो जानी चाहिए । जहां कार्यवाहियों में उद्भूत होने वाले कतिपय अपरिहार्य कारणों

से नियोजक के लिए इस समय-सीमा के भीतर कार्यवाहियों को समाप्त करना संभव नहीं है, तब कारण और जांच की प्रकृति पर निर्भर करते हुए कार्यवाहियां युक्तियुक्त रूप से विस्तारित अवधि के भीतर, किंतु एक वर्ष से अनधिक नहीं, समाप्त करने का प्रयास करना चाहिए ।

34. प्रस्तुत मामले के तथ्यों पर विचार करने पर हम यह पाते हैं कि प्रत्यर्थियों ने अपीलार्थी की पेंशन निलंबन की अवधि (9 वर्ष और 26 दिन) अपवर्जित करने के पश्चात् नियत की है । दूसरे शब्दों में, प्रत्यर्थियों ने अपीलार्थी की पेंशन का अवधारण करने के लिए उसकी अर्हक सेवा की गणना करते समय 6 फरवरी, 1990 से 1 मार्च, 1999 तक की निलंबन की अवधि को गणना में नहीं लिया है ।

35. तथ्यों और परिस्थितियों, जिन पर ऊपर विचार किया गया है, की समग्रता को ध्यान में रखते हुए हमारा यह मत है कि प्रत्यर्थियों को अपीलार्थी की पेंशन का अवधारण करने के लिए निलंबन की अवधि को हिसाब में लेना चाहिए था और हम तद्नुसार ऐसा आदेश करते हैं ।

36. पूर्वगामी चर्चा को दृष्टिगत करते हुए, यह अपील सफल होती है और अपीलार्थी की पेंशन नियत करने के संबंध में ऊपर उपदर्शित सीमा तक केवल भागतः मंजूर की जाती है । तद्नुसार, प्रत्यर्थियों को निदेशित किया जाता है कि अपीलार्थी की पेंशन को निलंबन की अवधि (6 फरवरी, 1990 से 1 मार्च, 1999 तक) को हिसाब में लेकर पुनः अवधारित किया जाए और फिर अपीलार्थी को उस तारीख से अंतर के बकाया का संदाय किया जाए जब से वह पेंशन के दावे के लिए पात्र हुआ और इसके पश्चात् अपीलार्थी को भविष्य में पुनः अवधारित पेंशन का नियमानुसार नियमित रूप से संदाय किया जाए । यह कार्य इस आदेश की प्राप्ति की तारीख से तीन माह के भीतर किया जाए । खर्चे के लिए कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील भागतः मंजूर की गई ।

जस.

गतांक से आगे........

संसद् के अधिनियम

अध्याय 6

प्रकीर्ण

25. **अननुपालन के लिए शास्ति** – जो कोई इस अधिनियम के उपबंधों का उल्लंघन करेगा, वह दोषसिद्धि पर जुर्माने का, जो एक हजार रुपए तक का हो सकेगा, दायी होगा ।

26. **प्रत्यायोजित करने की शक्ति** – (1) केन्द्रीय सरकार अधिसूचना द्वारा, निदेश दे सकेगी कि उसके द्वारा प्रयोक्तव्य शक्तियां (नियम बनाने की शक्ति को छोड़कर) ऐसी परिस्थितियों में तथा ऐसी शर्तों और परिसीमाओं के अधीन रहते हुए, राज्य सरकार या केन्द्रीय सरकार अथवा राज्य सरकार के अधीनस्थ ऐसे अधिकारी द्वारा भी, जिसे वह ऐसी अधिसूचना में विनिर्दिष्ट करे, प्रयोक्तव्य होंगी ।

(2) राज्य सरकार, अधिसूचना द्वारा, निदेश दे सकेगी कि उसके द्वारा प्रयोक्तव्य शक्तियां (नियम और स्कीम बनाने की शक्ति को छोड़कर) ऐसी परिस्थितियों में तथा ऐसी शर्तों और परिसीमाओं के अधीन रहते हुए, राज्य सरकार द्वारा या उसके अधीनस्थ ऐसे अधिकारी द्वारा भी जिसे वह ऐसी अधिसूचना में विनिर्दिष्ट करे, प्रयोक्तव्य होंगी ।

27. **केन्द्रीय सरकार की निदेश देने की शक्ति** – (1) केन्द्रीय सरकार, इस अधिनियम के उपबंधों के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए राज्य सरकार को ऐसे निदेश दे सकेगी जो वह आवश्यक समझे ।

(2) उपधारा (1) के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, केन्द्रीय सरकार किसी स्कीम के संबंध में, इस अधिनियम के अधीन अनुदत्त निधियों को जारी करने या अनुचित उपयोग के संबंध में किसी शिकायत की प्राप्ति पर, यदि प्रथमदृष्ट्या यह समाधान हो जाता है कि कोई मामला बनता है तो उसके द्वारा पदाभिहित किसी अभिकरण द्वारा की गई शिकायत का अन्वेषण करा सकेगी, और यदि आवश्यक हो तो स्कीम की निधियों के निर्मोचन को रोकने का आदेश कर सकेगी और उचित कालावधि के भीतर

इसके उचित कार्यान्वयन के लिए समुचित उपचारी उपाय कर सकेगी ।

28. **अधिनियम का अध्यारोही प्रभाव होना** – इस अधिनियम या उसके अधीन बनाई गई स्कीमों के उपबंध, तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि या ऐसी विधि के फलस्वरूप प्रभाव रखने वाली किसी लिखत में अन्तर्विष्ट उससे असंगत किसी बात के होते हुए भी प्रभावी होंगे :

परन्तु जहां कोई ऐसी राज्य अधिनियमिति विद्यमान है या इस अधिनियम के उपबंधों से संगत ग्रामीण गृहस्थी में अर्धकुशल शारीरिक कार्य के लिए नियोजन गारंटी का उपबंध करने के लिए अधिनियमित की जाती है, जिसके अधीन गृहस्थी की हकदारी उससे कम नहीं है और नियोजन की शर्तें उससे न्यूनतर नहीं हैं, जिनकी इस अधिनियम के अधीन गारंटी दी गई है, वहां राज्य सरकार को अपनी निजी अधिनियमिति को कार्यान्वित करने का विकल्प होगा :

परन्तु यह और कि ऐसे मामलों में वित्तीय सहायता, संबद्ध राज्य सरकार को ऐसी रीति से संदत्त की जाएगी, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा अवधारित की जाएगी, जो उससे अधिक न होगी, जिसे वह राज्य इस अधिनियम के अधीन प्राप्त करने का तब हकदार होता जब इस अधिनियम के अधीन बनाई गई कोई स्कीम कार्यान्वित की जानी होती ।

29. **अनुसूचियों को संशोधित करने की शक्ति –** (1) यदि केन्द्रीय सरकार का यह समाधान हो जाता है कि ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है तो वह, अधिसूचना द्वारा, अनुसूची 1 या अनुसूची 2 का संशोधन कर सकेगी और तदुपरि, यथास्थिति, अनुसूची 1 या अनुसूची 2 तदनुसार संशोधित की गई समझी जाएगी ।

(2) उपधारा (1) के अधीन बनाई गई प्रत्येक अधिसूचना की प्रति उसके बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखी जाएगी ।

30. **सद्भावपूर्वक की गई कार्रवाई के लिए संरक्षण** – जिला कार्यक्रम समन्वयक, कार्यक्रम अधिकारी या किसी अन्य व्यक्ति के विरुद्ध, जो भारतीय दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) की धारा 21 के

अर्थान्तर्गत लोक सेवक है या समझा जाता है, किसी ऐसी बात के लिए जो इस अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए नियमों या स्कीमों के अधीन सद्भावपूर्वक की गई है या की जाने के लिए आशयित है, कोई वाद, अभियोजन या अन्य विधिक कार्यवाही नहीं होगी ।

31. **केन्द्रीय सरकार की नियम बनाने की शक्ति** – (1) केन्द्रीय सरकार, अधिसूचना द्वारा और पूर्व प्रकाशन की शर्त के अधीन रहते हुए, इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए नियम बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियम निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध कर सकेंगे, अर्थात् :–

(क) धारा 10 की उपधारा (3) के खंड (ङ) के अधीन राज्य सरकारों के प्रतिनिधियों की संख्या ;

(ख) धारा 10 की उपधारा (4) के अधीन वे निबंधन और शर्तें जिनके अधीन रहते हुए केन्द्रीय परिषद् का अध्यक्ष और कोई सदस्य नियुक्त किया जा सकेगा और केन्द्रीय परिषद् के अधिवेशनों (जिसके अंतर्गत ऐसे अधिवेशनों में गणपूर्ति भी है) का समय, स्थान और उनकी प्रक्रिया ;

(ग) वह रीति जिसमें तथा वे शर्तें और परिसीमाएं जिनके अधीन रहते हुए धारा 20 की उपधारा (3) के अधीन राष्ट्रीय निधि का उपयोग किया जाएगा ;

(घ) धारा 22 की उपधारा (1) के अधीन कतिपय मदों की लागत को पूरा करने के लिए वित्त पोषण पैटर्न से संबंधित नियम ;

(ङ) कोई अन्य विषय, जिसे विहित किया जाना है या जो विहित किया जाए या जिसकी बाबत, केन्द्रीय सरकार द्वारा, नियमों द्वारा, उपबंध किया जाना है ।

32. **राज्य सरकार की नियम बनाने की शक्ति** – (1) राज्य सरकार, इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए, अधिसूचना द्वारा और पूर्व प्रकाशन की शर्त के अधीन रहते हुए और इस अधिनियम तथा

केन्द्रीय सरकार द्वारा बनाए गए नियमों से संगत नियम बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियम निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध कर सकेंगे, अर्थात् :–

(क) वे निबंधन और शर्तें जिन पर धारा 7 की उपधारा (2) के अधीन बेकारी भत्ते के लिए पात्रता अवधारित की जा सकेगी ;

(ख) धारा 7 की उपधारा (6) के अधीन बेकारी भत्ते के संदाय के लिए प्रक्रिया ;

(ग) धारा 12 की उपधारा (2) के अधीन वे निबंधन और शर्तें जिनके अधीन रहते हुए राज्य परिषद् का अध्यक्ष और कोई सदस्य नियुक्त किया जा सकेगा और राज्य परिषद् के अधिवेशनों (जिसके अंतर्गत ऐसे अधिवेशनों में गणपूर्ति भी है) का समय, स्थान और उनकी प्रक्रिया ;

(घ) ब्लाक स्तर और जिला स्तर पर शिकायत प्रतितोष तंत्र और धारा 19 के अधीन ऐसे मामले में अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया ;

(ङ) वह रीति जिसमें तथा वे शर्तें और परिसीमाएं जिनके अधीन रहते हुए धारा 21 की उपधारा (2) के अधीन राष्ट्रीय निधि का उपयोग किया जाएगा ;

(च) वह प्राधिकारी जो धारा 21 की उपधारा (3) के अधीन राज्य निधि को प्रशासित कर सकेगा और वह रीति जिसमें वह राज्य निधि को धारित करेगा ;

(छ) धारा 23 की उपधारा (2) के अधीन श्रमिकों के नियोजन के बही खाते और व्यय रखे जाने की रीति ;

(ज) धारा 23 की उपधारा (3) के अधीन स्कीमों के उचित निष्पादन के लिए अपेक्षित प्रबंध ;

(झ) वह प्ररूप और रीति जिसमें स्कीम के लेखाओं को धारा 24 की उपधारा (2) के अधीन रखा जाएगा ;

(ञ) कोई अन्य विषय जिसे विहित किया जाना है या जो विहित किया जाए या जिसकी बाबत राज्य सरकार द्वारा, नियमों द्वारा उपबंध किया जाना है ।

33. **नियमों और स्कीमों का रखा जाना** – (1) इस अधिनियम के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह कुल तीस दिन की अवधि के लिए सत्र में हो, जो एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी, रखा जाएगा और यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं या दोनों सदन इस बात से सहमत हो जाएं कि वह नियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो ऐसा नियम, यथास्थिति, तत्पश्चात् केवल ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा या उसका कोई प्रभाव नहीं होगा, तथापि, उस नियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से पहले उसके अधीन की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

(2) इस अधिनियम के अधीन राज्य सरकार द्वारा बनाया गया प्रत्येक नियम या बनाई गई प्रत्येक स्कीम, उसके बनाए जाने के पश्चात् यथाशक्य शीघ्र, राज्य विधान-मंडल के, जहां दो सदन हैं, प्रत्येक सदन के समक्ष और जहां राज्य विधान-मंडल का एक ही सदन है, वहां उस सदन के समक्ष रखा जाएगा/रखी जाएगी ।

34. **कठिनाइयों को दूर करने की शक्ति** – (1) यदि इस अधिनियम के उपबंधों को प्रभावी करने में कोई कठिनाई उत्पन्न होती है तो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में प्रकाशित आदेश द्वारा ऐसे उपबंध, जो इस अधिनियम के उपबंधों से असंगत न हों, बना सकेगी जो कठिनाई को दूर करने के लिए आवश्यक और समीचीन प्रतीत होते हों :

परन्तु इस धारा के अधीन कोई आदेश इस अधिनियम के प्रारंभ से तीन वर्ष की समाप्ति के पश्चात् नहीं किया जाएगा ।

(2) इस धारा के अधीन किया गया प्रत्येक आदेश, किए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जाएगा ।

अनुसूची 1

[धारा 4 (3) देखिए]

ग्रामीण रोजगार गारंटी स्कीम की न्यूनतम विशेषताएं

[1][1क. सभी राज्यों द्वारा धारा 4 के अधीन अधिसूचित स्कीम को "राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी स्कीम" कहा जा सकेगा जो सुसंगत राज्य के नाम द्वारा अनुसरित होगी । राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम से संबंधित सभी दस्तावेजों में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी स्कीम (रा. ग्रा. रो. गा. स्की.) का उल्लेख अवश्य होना चाहिए ।]

1. स्कीम का केंद्र बिन्दु निम्नलिखित संकर्मों पर उनकी पूर्विकता के क्रम में होगा :–

(i) जल संरक्षण और जल शस्य संचय ;

(ii) सूखारोधी (जिसके अंतर्गत वनरोपण और वृक्षारोपण है) ;

(iii) सिंचाई नहरें जिनके अंतर्गत सूक्ष्म और लघु सिंचाई संकर्म भी हैं ;

[2][(iv) अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की गृहस्थियों या गरीबी रेखा से नीचे या भूमि सुधार के हिताधिकारियों या भारत सरकार की इंदिरा आवास योजना के अधीन हिताधिकारियों या कृषि ऋण अधित्यजन और ऋण राहत स्कीम, 2008 में यथापरिभाषित लघु कृषक या सीमांत कृषकों की स्वामित्वाधीन भूमि के लिए सिंचाई सुविधा का उपबंध ।]

[3][परंतु यह कि निम्नलिखित शर्त पूरी करता हो, अर्थात् :–

(क) व्यष्टिक भूमि स्वामी कार्य कार्ड धारक हो और परियोजना में भी कार्य कर रहा हो ;

---

[1] अधिसूचना सं. का. आ. 323(अ), तारीख 6 मार्च, 2007 द्वारा अंतः स्थापित (आदेश का पैरा 2) ।

[2] अधिसूचना सं. का. आ. 1824(अ), तारीख 24 जुलाई, 2009 द्वारा (22 जुलाई, 2009 से) उपपैरा (iv) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[3] अधिसूचना सं. का. आ. 1489(अ), तारीख 18 जून, 2008 द्वारा जोड़ा गया ।

(ख) ऐसी प्रत्येक परियोजना के लिए श्रमिक सामग्री का अनुपात 60 : 40 में ग्राम पंचायत स्तर पर रखा जाएगा ;

(ग) परियोजना ग्राम सभा और ग्राम पंचायत द्वारा अनुमोदित होगी तथा परियोजनाओं के वार्षिक शेल्फ का भाग होगी ;

(घ) कार्य के निष्पादन में कोई ठेकेदार या मशीनरी प्रयुक्त नहीं होगी ; और

(ङ) कोई मशीनरी क्रय नहीं की जाएगी ।]

(v) पारंपरिक जल निकायों का नवीकरण जिसके अंतर्गत तालाबों का शुद्धिकरण भी है ;

(vi) भूमि विकास ;

(vii) बाढ़ नियंत्रण संरक्षण संकर्म, जिनके अंतर्गत जलरुद्ध क्षेत्रों में जल निकास भी है ;

(viii) सभी मौसमों में पहुंच का उपबंध करने के लिए ग्रामीण संयोजकता ; और

(ix) कोई अन्य कार्य, जिसे राज्य सरकार के परामर्श से केंद्रीय सरकार द्वारा अधिसूचित किया जाए ।

2. टिकाऊ आस्तियों का सृजन और ग्रामीण निर्धन व्यक्तियों के आजीविका संसाधनों के लिए आधार को सुदृढ़ करना स्कीम का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य होगा ।

[1][3. स्कीम के अधीन किए गए कार्य ग्रामीण क्षेत्र में होंगे और निम्नलिखित शर्तों के अधीन रहते हुए होंगे, अर्थात् :–

(क) प्रत्येक कार्य के लिए एक विशेष पहचान सं. दी जाएगी ;

(ख) सभी कार्य ऐसे कर्मकारों द्वारा निष्पादित किए जाएंगे जिनके पास जॉबकार्ड है और जिन्होंने कार्य की मांग की है ;

---

[1] अधिसूचना सं. का. आ. 3000(अ), तारीख 31 दिसम्बर, 2008 द्वारा पैरा 3 के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

(ग) 18 वर्ष से कम की आयु के किसी व्यक्ति को राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम परियोजनाओं के अधीन कार्य करने की अनुज्ञा नहीं दी जाएगी ;

(घ) प्रत्येक मस्टर रोल में एक विशेष पहचान संख्या होगी और कार्यक्रम अधिकारी द्वारा सत्यापित की जाएगी तथा मस्टर रोल का प्ररूप वह होगा जो भारत सरकार द्वारा विनिर्दिष्ट किया जाए ;

(ङ) कार्यक्रम अधिकारी द्वारा सम्यक् रूप से हस्ताक्षरित और समुचित रूप से संख्यांकित मस्टर रोल कार्य स्थल पर रखी जाएगी और ऐसी मस्टर रोल जो कार्यक्रम अधिकारी द्वारा हस्ताक्षरित नहीं है और समुचित रूप से संख्यांकित नहीं है, उसे अप्राधिकृत समझा जाएगा और कार्य स्थल पर नहीं रखी जाएगी ;

(च) कर्मकार अपनी उपस्थिति और कार्य स्थल पर मस्टर रोल में उपार्जित मजदूरी की रकम को प्रति हस्ताक्षरित करेंगे ;

(छ) समय-समय पर भारत सरकार द्वारा यथा विहित मस्टर रोलों के विस्तृत अभिलेख रजिस्टरों में रखे जाएंगे ;

(ज) जब कार्य प्रगति पर है, कर्मकार उस कार्य में लगे हैं सप्ताह में कम से कम एक बार उनके कार्य स्थल के सभी बिलों और वाउचरों का सत्यापन और प्रमाणन करने के लिए साप्ताहिक चक्रानुक्रम के आधार पर उनमें से कम से कम पांच कर्मकारों का चयन किया जाएगा ;

(झ) अनुमोदन या कार्य आदेश की एक प्रति कार्य स्थल पर सार्वजनिक निरीक्षण के लिए उपलब्ध कराई जाएगी ;

(ञ) कार्य का मापमान कार्य स्थल के भारसाधक अर्हित तकनीकी कार्मिक द्वारा रखी गई मापमान पुस्तकों में अभिलिखित किया जाएगा ;

(ट) प्रत्येक कार्य और प्रत्येक कर्मकार के मापमान अभिलेख सार्वजनिक निरीक्षण के लिए उपलब्ध कराए जाएंगे ;

(ठ) प्रत्येक कार्य स्थल पर एक नागरिक सूचना बोर्ड रखा जाना चाहिए और भारत सरकार द्वारा विहित रीति में नियमित रूप से

अद्यतन किया जाना चाहिए ;

(ड) कोई व्यक्ति सभी कार्य घंटों के दौरान कार्य स्थल पर मांग किए जाने पर मस्टर रोलों के प्रति पहुंच रखने के लिए योग्य होगा ; और

(ढ) भारत सरकार के अनुदेशों के अनुसार स्थापित की गई सतर्कता और मानीटरी समिति सभी कार्यों और उस पर उसकी मूल्यांकन रिपोर्ट की जांच करेगी जो भारत सरकार द्वारा विहित प्ररूप में कार्य रजिस्टर में अभिलिखित की जाएगी और सामाजिक संपरीक्षा के दौरान ग्राम सभा को प्रस्तुत की जाएगी ।]

4. राज्य परिषद् विभिन्न क्षेत्रों के लिए उनकी टिकाऊ आस्तियां सृजित करने की योग्यता के आधार पर अधिमानी संकर्मों की एक सूची तैयार करेगी ।

5. स्कीम उन समुचित व्यवस्थाओं के अधीन रहते हुए होगी जो स्कीम के अधीन सृजित सार्वजनिक आस्तियों के समुचित रखरखाव के लिए राज्य सरकार द्वारा बनाए गए नियमों के अधीन उसके द्वारा अधिकथित की जाए ।

6. किसी भी परिस्थिति के अधीन श्रमिकों को मजदूरी दर से कम का संदाय नहीं किया जाएगा ।

7. जब मजदूरी का कार्य की मात्रा से सीधा संबंध हो तब मजदूरी, राज्य परिषद् के परामर्श से प्रतिवर्ष, विभिन्न प्रकार के कार्यों के लिए राज्य सरकार द्वारा नियत दर अनुसूची के अनुसार संदत्त की जाएगी ।

[1][8. (1) विभिन्न अकुशल श्रमिकों के लिए मजदूरी की दरों की अनुसूची इस प्रकार नियत की जाएगी कि नौ घंटे के लिए काम करने वाला कोई वयस्क व्यक्ति सामान्यतया मजदूरी दर के बराबर मजदूरी उपार्जित कर सके ।

---

[1] अधिसूचना सं. का. आ. 88(अ), तारीख 14 जनवरी, 2008 द्वारा पैरा 3 के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

(2) किसी वयस्क कर्मकार के कार्यदिवस, जिसके अन्तर्गत विश्राम के अंतराल भी हैं, यदि कोई हों, इस प्रकार व्यवस्थित किए जाएंगे कि वह किसी दिवस को बारह घंटे से अधिक न हो ।]

[1][8क. किसी समूह में कार्य करने वाले किन्हीं पुरुष और स्त्री कर्मकारों द्वारा किए गए औसत कार्य आधारित दरों की सूची नियत करने के लिए आधार होगा ताकि दरों की अनुसूची में लिंग आधारित कोई विभेद न हो ।]

9. कार्यक्रम के अंतर्गत आरंभ की गई परियोजनाओं की सामग्री संघटक की लागत, जिसके अंतर्गत कुशल और अर्धकुशल कर्मकारों की मजदूरी भी है, कुल परियोजना लागत के चालीस प्रतिशत से अधिक नहीं होगी ।

10. कार्यक्रम अधिकारी और ग्राम पंचायत किसी ऐसे व्यक्ति को, जो स्कीम के अधीन नियोजन के लिए आवेदन करता है, यह निदेश देने के लिए स्वतंत्र होगा कि वह ऐसी स्कीम के अधीन अनुज्ञेय किसी प्रकार का कार्य करे ।

11. स्कीम में उसके अधीन परियोजनाओं के कार्यान्वयन के लिए किसी ठेकेदार को लगाने की अनुज्ञा नहीं दी जाएगी ।

12. यथाव्यवहार्य, स्कीम के अधीन वित्त पोषित कार्य शारीरिक श्रम का उपयोग करके पूरा किया जाएगा, मशीन का नहीं ।

[2][13. प्रत्येक स्कीम में, कार्यान्वयन के प्रत्येक स्तर पर पारदर्शिता और जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए निम्नलिखित रीति में पर्याप्त उपबंध होंगे :–

(क) पूर्व सक्रिय प्रकटन –

(i) प्रत्येक कार्य स्थल पर पूर्व सक्रिय प्रकटन नागरिकता सूचना बोर्ड के माध्यम से, उपस्थिति के संबंध में मस्टर रोल जानकारी का, पढ़े जाना प्राधिकृत व्यक्ति द्वारा कार्यदिवस के अंत में कर्मकारों की

---

[1] अधिसूचना सं. का. आ. 88 (अ), तारीख 14 जनवरी, 2008 द्वारा अंतःस्थापित ।

[2] अधिसूचना सं. का. आ. 3000(अ), तारीख 31 दिसम्बर, 2008 द्वारा पैरा 13 के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

उपस्थिति में किया गया कार्य और संदत्त मजदूरी के माध्यम से किया जाएगा मापन पुस्तक में मापमान कर्मकारों के समक्ष कार्य के मापमान के दौरान पढ़ा जाएगा ;

(ii) ग्राम पंचायत और ब्लाक कार्यक्रम कार्यालय पर पूर्व सक्रिय प्रकटन बोर्डों पर जानकारी के संप्रदर्शन के माध्यम से किया जाएगा और इसके अंतर्गत नियोजन के उपबंधों से संबंधित जानकारी, प्राप्त निधियां और व्यय अनुमोदित परियोजनाओं के शेल्फ होंगे ; और

(iii) राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम के संबंध में कोई जानकारी जनता को राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना के लिए वेबसाइट के माध्यम से जो भारत सरकार द्वारा विहित की जाए तथा नि:शुल्क डाउनलोड की जाए, उपलब्ध कराई जाएगी ;

(ख) सामाजिक संपरीक्षा –

(i) सामाजिक संपरीक्षा प्रत्येक छह मास में कम से कम एक बार की जाएगी ;

(ii) सामाजिक संपरीक्षा की घोषणा जिला कार्यक्रम समन्वयक या कार्यक्रम अधिकारी द्वारा कम से कम तीस दिन अग्रिम में की जाएगी ;

(iii) ग्राम सभा द्वारा उन कर्मकारों के लिए जिन्होंने उन्हीं ग्राम पंचायतों में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम के अधीन वर्तमान में और पहले कार्य किया है ग्राम सभा संपरीक्षा के लिए स्वयं में से एक सामाजिक संपरीक्षा समिति का चयन करेगी और सामाजिक संपरीक्षा समिति के कम से कम एक तिहाई सदस्य महिला होंगी ;

(iv) कार्यक्रम अधिकारी यह सुनिश्चित करेगा कि ग्राम पंचायत की अधिकारिता के लिए कार्यान्वयन अभिकरणों के कार्यों की संपूर्ण फाइलों सहित सभी सुसंगत दस्तावेज और उनकी प्रतियां ग्राम पंचायत पर निरीक्षण के लिए उपलब्ध कराई जाएंगी ;

(v) ग्राम पंचायत सामाजिक सुरक्षा समिति को कम से कम पंद्रह-बीस दिन पूर्व अग्रिम में सभी आवश्यक जानकारी और दस्तावेज

प्रस्तुत करेगी ;

(vi) सामाजिक सुरक्षा समिति सभी दस्तावेजों और जानकारी का सत्यापन करेगी और कोई व्यक्ति सामाजिक सुरक्षा समिति को कोई सुसंगत जानकारी प्रस्तुत कर सकेगा ;

(vii) कार्यक्रम अधिकारी लिखित में सभी लोक प्रतिनिधियों तथा संबद्ध कर्मचारिवृंद जो राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार अधिनियम का कार्यान्वयन कर रहे हैं, को समय पूर्व अधिसूचित करेगा जिससे कि यह सुनिश्चित किया जा सके कि उन्हें प्रक्रिया के बारे में जानकारी दे दी गई है और सामाजिक संपरीक्षा के समय उपस्थित रहें ;

(viii) सामाजिक सुरक्षा समिति ग्राम सभा में सार्वजनिक रूप से उसके निष्कर्षों को पढ़कर सुनाएगी और व्यक्तियों को ग्राम पंचायत और संबद्ध पदाधिकारियों से जानकारी जानने और प्राप्त करने का अवसर दिया जाएगा और अभिलेखों का सत्यापन करेगी ;

(ix) पूर्व सामाजिक संपरीक्षा से संबंधित की गई कार्यवाही रिपोर्ट, प्रत्येक सामाजिक संपरीक्षा के प्रारम्भ में पढ़ी जाएगी ;

(x) सचिव द्वारा कार्यवृत्त अभिलिखित किया जाएगा और सभी भाग लेने वाले व्यक्तियों द्वारा सामाजिक संपरीक्षा के पूर्व और उसके पूरा होने के पश्चात् हस्ताक्षरित किया जाएगा तथा कोई असहमति या आक्षेप को बताया जाएगा तो उसे कार्यवृत्त में अभिलिखित किया जाएगा ;

(xi) सामाजिक संपरीक्षा जनता की भागीदारी के लिए खुली होगी और ग्राम सभा से भिन्न कोई व्यक्ति सामाजिक संपरीक्षा की कार्यवाहियों में हस्तक्षेप किए बिना प्रेक्षक के रूप में सामाजिक संपरीक्षा में उपस्थित होने के लिए अनुज्ञात किया जाएगा ;

(xii) की गई कार्यवाही रिपोर्ट, सामाजिक संपरीक्षा किए जाने के एक मास के भीतर फाइल की जाएगी ;

(xiii) अधिनियम के उल्लंघन से संबंधित कोई निष्कर्ष शिकायत के रूप में समझा जाएगा और निष्कर्ष में किसी विवाद के लिए जांच संचालित की जाएगी ;

(xiv) किसी निधि विचलन से संबद्ध व्यक्ति के विरुद्ध कार्रवाई की जाएगी और निधियों की वसूली में तेजी लाई जाएगी ;

(xv) राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी स्कीम के लेखाओं का प्रमाणन करते समय सरकारी संपरीक्षक लेखाओं का सत्यापन करने से पूर्व सामाजिक संपरीक्षा के माध्यम से उठाई गई वित्तीय अनियमितताओं या दुर्विनियोग के संबंध में किसी शिकायत का संज्ञान लिया जाएगा ; और

14. किसी स्कीम के अधीन किए जा रहे संकर्म का, कार्य की उचित क्वालिटी सुनिश्चित करने के लिए और साथ यह सुनिश्चित करने के लिए कि कार्य के पूरा किए जाने के लिए संदत्त मजदूरी, किए गए कार्य क्वालिटी और मात्रा के अनुरूप है, नियमित निरीक्षण और पर्यवेक्षण करने के लिए उपबंध किए जाएंगे ।

15. स्कीम को कार्यान्वित करने वाले जिला कार्यक्रम समन्वयक, कार्यक्रम अधिकारी और ग्राम पंचायत, अपनी अधिकारिता के भीतर स्कीम के कार्यान्वयन से संबंधित तथ्यों और आकड़ों तथा उपलब्धियों सहित वार्षिक रूप से एक रिपोर्ट तैयार करेंगे और उसकी एक प्रति, जनता को मांग पर और ऐसी फीस के संदाय पर जो स्कीम में विनिर्दिष्ट की जाएं, उपलब्ध कराई जाएगी ।

[1][16. स्कीम से संबंधित सभी खातों और अभिलेखों को सार्वजनिक संवीक्षा के लिए निःशुल्क उपलब्ध कराया जाएगा । यदि कोई व्यक्ति इसकी प्रति या इससे संबद्ध सार प्राप्त करना चाहता है तो उसकी मांग किए जाने पर आवेदन प्राप्ति की तारीख से तीन कार्य दिवसों के भीतर और स्कीम में विनिर्दिष्ट शुल्क का भुगतान किए जाने के पश्चात् ऐसी प्रतियां या सार उपलब्ध कराए जा सकते हैं ।]

17. प्रत्येक स्कीम या किसी स्कीम के अधीन परियोजना के मस्टर रोल की एक प्रति, ग्राम पंचायत और कार्यक्रम अधिकारी के कार्यालय में, हितबद्ध व्यक्ति द्वारा, ऐसी फीस का संदाय करने के पश्चात्, जो स्कीम में विनिर्दिष्ट की जाए, निरीक्षण के लिए उपलब्ध कराई जाएगी ।

---

[1] अधिसूचना सं. का. आ. 3000(अ), तारीख 31 दिसम्बर, 2008 द्वारा पैरा 16 के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

अनुसूची 2

[धारा 5 देखिए]

किसी स्कीम के अधीन गारंटीकृत ग्रामीण रोजगार के लिए शर्तें और श्रमिकों की न्यूनतम हकदारियां

1. प्रत्येक गृहस्थी के वयस्क सदस्य, जो –

(i) किसी ग्रामीण क्षेत्र में निवास करते हैं, और

(ii) अकुशल शारीरिक कार्य करने के इच्छुक हैं,

उस ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत (जिसे इस अनुसूची में इसके पश्चात् ग्राम पंचायत कहा गया है) को, जिसकी अधिकारिता में वे निवास करते हैं, अपने नाम, आयु और गृहस्थी के पते, कार्य कार्ड जारी करने के लिए अपनी गृहस्थी के रजिस्ट्रीकरण के लिए आवेदन कर सकते हैं ।

[1][2. (1) ग्राम पंचायत का यह कर्तव्य होगा कि वह ऐसी जांच करने के पश्चात् जो वह ठीक समझे, गृहस्थी को रजिस्टर करे और गृहस्थी के रजिस्ट्रीकृत वयस्क सदस्यों के निम्नलिखित आवश्यक ब्यौरों वाला एक कार्य कार्ड जारी करें, अर्थात् :–

(i) कार्य कार्ड संख्या ;

(ii) गृहस्थी के सदस्य-वार कार्य की मांग और आबंटन ;

(iii) किए गए कार्य का वर्णन ;

(iv) कार्य करने की तारीखें और दिन ;

(v) उस मस्टर रोल का संख्यांक, जिसके द्वारा मजदूरी संदत्त की गई ;

(vi) संदत्त मजदूरी की रकम ;

(vii) बेकारी भत्ता, यदि कोई संदत्त किया गया हो ;

---

[1] अधिसूचना सं. का. आ. 802(अ), तारीख 2 अप्रैल, 2008 द्वारा पैरा 2 के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

(viii) डाक महसूल लेखा/बैंक खाता संख्या ;

(ix) बीमा पॉलिसी संख्या ; और

(x) मतदाता फोटो पहचान पत्र-मतदाता पहचान पत्र, यदि कोई हो संख्या ।

(2) कार्य कार्ड पर सभी प्रविष्टियां प्राधिकृत अधिकारी के हस्ताक्षर से सम्यक् रूप से अधिप्रमाणित होंगी ;

(3) उपपैरा (1) के अधीन जारी कार्य कार्ड पर गृहस्थी के केवल उन्हीं रजिस्ट्रीकृत वयस्क सदस्यों के फोटो होंगे, जिनको कार्य कार्ड जारी किया गया है ।

(4) गृहस्थी के ऐसे रजिस्ट्रीकृत वयस्क सदस्यों, जिनका वह कार्य कार्ड हो, से भिन्न किसी व्यक्ति का फोटो, नाम या ब्यौरे कार्य कार्ड पर चिपकाए या अभिलिखित नहीं किए जाएंगे ।

(5) सभी कार्य कार्ड उन कार्य कार्डधारकों की अभिरक्षा में रहेंगे, जिनके वे हैं ।]

3. पैरा 2 के अधीन रजिस्ट्रीकरण ऐसी अवधि के लिए जो स्कीम में अधिकथित की जाए किन्तु किसी भी मामले में पांच वर्ष से कम नहीं होगी, किया जाएगा, और इसे समय-समय पर नवीकृत किया जा सकेगा ।

4. रजिस्ट्रीकृत गृहस्थी का ऐसा प्रत्येक वयस्क सदस्य, जिसका नाम कार्य कार्ड में है, स्कीम के अधीन अकुशल शारीरिक कार्य के लिए आवेदन करने का हकदार होगा ।

5. किसी गृहस्थी के सभी रजिस्ट्रीकृत व्यक्ति, इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन बनाई गई स्कीम के अनुसार, उतने दिनों के लिए, जितने दिनों के लिए प्रत्येक आवेदक अनुरोध करे, किसी वित्तीय वर्ष में प्रति गृहस्थी अधिकतम एक सौ दिनों के अधीन रहते हुए, नियोजन के हकदार होंगे ।

6. कार्यक्रम अधिकारी यह सुनिश्चित करेगा कि पैरा 5 में निर्दिष्ट प्रत्येक आवेदक को, स्कीम के उपबंधों के अनुसार, आवेदन की प्राप्ति से पन्द्रह दिन के भीतर या उस तारीख से, जिससे वह अग्रिम आवेदन की

दशा में कार्य चाहता है, इनमें से जो भी पश्चात्वर्ती हो, अकुशल शारीरिक कार्य दिया जाएगा :

परंतु यह कि महिलाओं को इस तरह पूर्विकता दी जाएगी कि कम से कम एक-तिहाई फायदा प्राप्त करने वालों में ऐसी महिलाएं होंगी, जो इस अधिनियम के अधीन कार्य के लिए रजिस्ट्रीकृत हैं और जिन्होंने अनुरोध किया है ।

7. कार्य के लिए आवेदन कम से कम चौदह दिनों के निरंतर कार्य के लिए होना चाहिए ।

8. गृहस्थी की संपूर्ण हकदारी के अधीन रहते हुए नियोजन के उन दिनों की संख्या जिनके लिए कोई व्यक्ति आवेदन कर सकेगा, या उसको वस्तुतः दिए गए नियोजन के दिनों की संख्या पर कोई सीमा नहीं होगी ।

9. कार्य के लिए आवेदन, लिखित रूप में ग्राम पंचायत या कार्यक्रम अधिकारी को, जैसा स्कीम में विनिर्दिष्ट किया जाए, प्रस्तुत किए जाएंगे ।

10. यथास्थिति, ग्राम पंचायत और कार्यक्रम अधिकारी वैध आवेदन स्वीकार करने और आवेदक को तारीख सहित रसीद जारी करने के लिए आबद्ध होंगे । समूह आवेदन भी प्रस्तुत किए जा सकेंगे ।

11. ऐसे आवेदकों को, जिन्हें कार्य दिया जाता है, कार्य कार्ड में दिए गए उनके पते पर उनको पत्र भेजकर और जिला, मध्यवर्ती या ग्राम स्तर पर पंचायतों में सार्वजनिक सूचना प्रदर्शित कर इस प्रकार लिखित रूप में सूचित किया जाएगा ।

12. जहां तक संभव हो, आवेदक को उस ग्राम से जहां वह आवेदन करते समय निवास करता है, पांच किलोमीटर की त्रिज्या के भीतर नियोजन प्रदान किया जाएगा ।

[1][13. स्कीम के अधीन कोई नया कार्य आरंभ किया जा सकता है, यदि कम से कम दस श्रमिक कार्य के लिए उपलब्ध हो जाते हैं ।]

14. यदि नियोजन ऐसी त्रिज्या के बाहर प्रदान किया जाता है तो यह

---

[1] अधिसूचना सं. का. आ. 324(अ), तारीख 6 मार्च, 2007 द्वारा पैरा 13 के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

ब्लॉक के भीतर ही प्रदान किया जाना चाहिए और श्रमिकों को अतिरिक्त परिवहन और जीवनयापन खर्चों को पूरा करने के लिए अतिरिक्त मजदूरी के रूप में, मजदूरी दर के दस प्रतिशत का संदाय किया जाएगा ।

15. नियोजन की अवधि साधारणतः लगातार कम से कम चौदह दिन की और एक सप्ताह में छह दिन से अनधिक की होगी ।

16. उन सभी मामलों में जहां बेकारी भत्ता संदत्त किया जाता है या संदत्त किया जाना शोध्य है वहां कार्यक्रम अधिकारी, लिखित रूप में जिला कार्यक्रम समन्वयक को वे कारण सूचित करेगा कि उसके लिए आवेदकों को नियोजन प्रदान करना या नियोजन प्रदान कराना क्यों संभव नहीं था ।

17. जिला कार्यक्रम समन्वयक, राज्य परिषद् को अपनी वार्षिक रिपोर्ट में यह स्पष्टीकरण देगा कि उन मामलों में जहां बेकारी भत्ते का संदाय अंतर्वलित है, नियोजन क्यों नहीं प्रदान किया जा सका था ।

18. स्कीम में अग्रिम आवेदन के लिए, अर्थात् ऐसे आवेदनों के लिए जो उस तारीख से जिससे नियोजन चाहा गया है, पहले प्रस्तुत किए जा सकेंगे, उपबंध किया जाएगा ।

19. स्कीम में एक ही व्यक्ति द्वारा अनेक आवेदन प्रस्तुत करने के बारे में उपबंध किया जाएगा परन्तु यह तब जबकि तत्संबंधी अवधि, जिनके लिए नियोजन चाहा गया है, अतिव्याप्त नहीं होती ।

20. ग्राम पंचायत ऐसे रजिस्टर, वाउचर और अन्य दस्तावेज ऐसे प्ररूप में और ऐसी रीति से, जो राज्य सरकार द्वारा विहित की जाएं, तैयार करेगी और रखेगी या तैयार करवाएगी और रखवाएगी, जिसमें ग्राम पंचायत में रजिस्ट्रीकृत कार्य कार्डों और जारी की गई पासबुकों की विशिष्टियां और गृहस्थी के मुखिया तथा वयस्क सदस्यों के नाम, आयु और पते अंतर्विष्ट होंगे ।

21. ग्राम पंचायत, उसके पास रजिस्ट्रीकृत गृहस्थियों और उनके वयस्क सदस्यों के नाम और पते की सूचियां, ऐसी सूची तथा ऐसी अन्य जानकारियां संबद्ध कार्यक्रम अधिकारी को, ऐसी अवधि पर ऐसे प्ररूप में, जो स्कीम में विनिर्दिष्ट किया जाए, भेजेगी ।

22. उन व्यक्तियों की सूची, जिन्हें कार्य दिया जाता है, ग्राम पंचायत

के सूचना पटल पर और कार्यक्रम अधिकारी के कार्यालय में तथा ऐसे अन्य स्थानों पर जिन्हें कार्यक्रम अधिकारी आवश्यक समझे, प्रदर्शित की जाएगी और सूची राज्य सरकार या किसी हितबद्ध व्यक्ति द्वारा निरीक्षण के लिए खुली रहेगी ।

23. यदि ग्राम पंचायत का किसी समय समाधान हो जाता है कि किसी व्यक्ति ने मिथ्या जानकारी प्रस्तुत करके उसके पास रजिस्टर कराया है तो वह कार्यक्रम अधिकारी को रजिस्टर से उसका नाम काटने का निदेश दे सकेगी और आवेदक को कार्य कार्ड लौटाने का निदेश दे सकेगी :

परन्तु इस पैरा के अधीन ऐसी कार्यवाही तब तक निदेशित नहीं की जाएगी, जब तक कि आवेदक को दो स्वतंत्र व्यक्तियों की उपस्थिति में सुने जाने का अवसर नहीं दे दिया गया हो ।

24. यदि स्कीम के अधीन नियोजित किसी व्यक्ति को, उसके नियोजन के कारण और उसके क्रम में किसी दुर्घटना से कोई शारीरिक क्षति कारित होती है तो वह निःशुल्क ऐसे चिकित्सीय उपचार का, जो स्कीम के अधीन अनुज्ञेय है, हकदार होगा ।

25. जहां क्षतिग्रस्त कर्मकार का अस्पताल में भर्ती होना आवश्यक हो, वहां राज्य सरकार उसके अस्पताल में भर्ती होने के लिए, जिसके अंतर्गत आवास, उपचार, ओषधियां भी हैं, तथा दैनिक भत्ते के संदाय के लिए, जो संदत्त किए जाने के लिए अपेक्षित उस मजदूरी दर के आधे से कम नहीं होगा, जो क्षतिग्रस्त व्यक्ति के कार्य में लगे होने पर होती, व्यवस्था करेगी ।

26. यदि स्कीम के अधीन नियोजित किसी व्यक्ति की, नियोजन से उद्‌भूत दुर्घटना या उसके क्रम में मृत्यु हो जाती है या वह स्थायी रूप से निःशक्त हो जाता है तो कार्यान्वयन अभिकरण द्वारा उसे पच्चीस हजार रुपए की दर पर या ऐसी रकम का जो केन्द्रीय सरकार द्वारा अधिसूचित की जाए, अनुग्रहपूर्वक संदाय किया जाएगा और यह रकम, यथास्थिति, मृत या निःशक्त व्यक्ति के विधिक वारिसों को संदत्त की जाएगी ।

27. कार्यस्थल पर स्वच्छ पेयजल, बालकों के लिए तथा विश्राम की अवधि के लिए शेड, लघु क्षति में आपात उपचार के लिए पर्याप्त सामग्री सहित प्राथमिक सहायता पेटी तथा किए जा रहे कार्य से संबद्ध अन्य स्वास्थ्य परिसंकट के लिए सुविधाएं प्रदान की जाएंगी ।

28. यदि किसी कार्यस्थल पर कार्यरत महिलाओं के साथ छह वर्ष से कम आयु के बालकों की संख्या पांच या उससे अधिक है तो ऐसी महिलाओं में से किसी एक महिला को ऐसे बालकों की देखभाल करने के लिए तैनात करने की व्यवस्था की जाएगी ।

29. पैरा 28 के अधीन नियुक्त व्यक्ति को मजदूरी दर पर संदाय किया जाएगा ।

30. यदि स्कीम के अधीन विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर मजदूरी का संदाय नहीं किया जाता है तो श्रमिक, मजदूरी संदाय अधिनियम, 1936 (1936 का 4) के उपबंधों के अनुसार प्रतिकर का संदाय प्राप्त करने के हकदार होंगे ।

[1][31. मजदूरी का भुगतान, केन्द्र सरकार के निर्देशों के अनुसार कर्मियों के बैंकों या डाकघरों में खोले गए एकल या संयुक्त बचत खातों के माध्यम से किया जाएगा ।

32. हटा दिया जाए ।]

33. यदि किसी ऐसे व्यक्ति के, जो स्कीम के अधीन नियोजित है, साथ में आने वाले बालक को दुर्घटनावश कोई शारीरिक क्षति कारित होती है तो ऐसा व्यक्ति बालक के लिए निःशुल्क ऐसा चिकित्सीय उपचार, जो स्कीम में विनिर्दिष्ट किया जाए और उसकी मृत्यु या निःशक्तता की दशा में, अनुग्रहपूर्वक संदाय, जो राज्य सरकार द्वारा अवधारित किया जाए, प्राप्त करने का हकदार होगा ।

34. स्कीम के अधीन प्रत्येक नियोजन की दशा में, मात्र लिंग के आधार पर कोई विभेद नहीं होगा और समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976 (1976 का 25) के उपबंधों का पालन किया जाएगा ।

[2][35.(1) राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम, 2005 की अनुसूची 2 के पैरा 1, 3, 9 और 14 में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, बाढ़, चक्रवात, सुनामी और भूकंप की प्रकृति की राष्ट्रीय विपत्तियों के

---

[1] अधिसूचना सं. का. आ. 513(अ), तारीख 19 फरवरी, 2009 द्वारा पैरा 31 और 32 के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] अधिसूचना सं. का. आ. 2188(अ), तारीख 11 सितम्बर, 2008 द्वारा जोड़ा गया ।

परिणामस्वरूप ग्रामीण आबादी के व्यापक विस्थापन की दशा में इस प्रकार प्रभावित क्षेत्रों के ग्रामीण गृहस्थियों के वयस्क सदस्य –

(i) रजिस्ट्रीकरण के लिए अनुरोध कर सकेंगे और अस्थायी पुनर्स्थापन क्षेत्र की ग्राम पंचायत या कार्यक्रम अधिकारी द्वारा जारी कार्य कार्ड प्राप्त कर सकेंगे ;

(ii) अस्थायी पुनर्स्थापन क्षेत्र के कार्यक्रम अधिकारी या ग्राम पंचायत के समक्ष कार्य के लिए लिखित या मौखिक आवेदन कर सकेंगे ; और

(iii) हानि या विनाश की दशा में कार्य कार्ड के पुनःरजिस्ट्रीकरण और पुनःजारी किए जाने के लिए आवेदन कर सकेंगे ।

(2) सामान्य स्थिति के प्रत्यावर्तन की दशा में, इस प्रकार जारी कार्य कार्ड निवास के मूल स्थान पर पुनःपृष्ठांकित किया जाएगा और सुधार होने पर मूल कार्य कार्ड के साथ जोड़ दिया जाएगा ।

(3) इस प्रकार उपलब्ध कराए गए नियोजन के दिनों की संख्या की गणना, प्रति गृहस्थी 100 दिनों की गारंटीकृत नियोजन की संगणना करते समय की जाएगी ।]

[1][36. अधिनियम या उसमें अनुसूची के अधीन प्राप्त शिकायतों या स्वप्रेरणा और अन्यथा उपबंधित से लिए गए संज्ञान पर निम्नलिखित रीति में कार्यवाही की जाएगी, अर्थात् :–

(क) कार्यक्रम अधिकारी प्रत्येक शिकायत को उसके द्वारा रखे गए शिकायत रजिस्टर में दर्ज करेगा और शिकायत की अभिस्वीकृति सम्यक् रूप से संख्यांकित और तारीख सहित जारी करेगा ;

(ख) स्थल पर सत्यापन के माध्यम से जांच, निरीक्षण और निपटारा सात कार्यदिवसों के भीतर पूरा किया जाएगा ;

(ग) किसी ग्राम पंचायत द्वारा, जो उस कार्यक्रम अधिकारी की अधिकारिता के भीतर आती है, शिकायतों का इसके अन्तर्गत

---

[1] अधिसूचना सं. का. आ. 2999(अ), तारीख 31 दिसम्बर, 2008 द्वारा जोड़ा गया ।

अधिनियम के कार्यान्वयन से संबंधित शिकायतें भी हैं, उनका अधिनियम की धारा 23 की उपधारा (6) के अधीन यथा विहित सात दिन के भीतर कार्यक्रम अधिकारी द्वारा निपटारा किया जाएगा और यदि उस दशा में जब शिकायत किसी अन्य प्राधिकारी द्वारा हल किए जाने के विषय से संबंधित है, तो कार्यक्रम अधिकारी प्रारंभिक जांच करेगा और विषय को ऐसे प्राधिकारी को शिकायतकर्ता को सूचित करते हुए सात दिन के भीतर निर्दिष्ट करेगा ;

(घ) कार्यक्रम अधिकारी द्वारा सात दिन के भीतर शिकायत का निपटारा करने में व्यतिक्रम होने पर अधिनियम के उपबंधों का उल्लंघन माना जाएगा और अधिनियम की धारा 25 के अधीन दंडनीय होगा तथा ऐसी चूक के विरुद्ध शिकायतें जिला कार्यक्रम समन्वयक के पास फाइल की जाएगी ;

(ङ) वित्तीय अनियमितताओं के संबंध में प्रथमदृष्ट्या साक्ष्य होने की दशा में, जिला कार्यक्रम समन्वयक यह सुनिश्चित करेगा कि प्रथम सूचना रिपोर्ट फाइल की गई है ;

(च) राज्य सरकार या जिला कार्यक्रम समन्वयक या कार्यक्रम अधिकारी या राज्य सरकार द्वारा प्राधिकृत कोई अन्य प्राधिकारी स्वप्रेरणा से या प्रतिनिर्देश से किसी शिकायत की जांच कर सकेगा और दोषी साबित होने पर, दोषी पर अधिनियम की धारा 25 के अधीन शास्ति अधिरोपित करेगा ;

(छ) यदि संबद्ध प्राधिकारी यह पाता है कि हकदारी का उल्लंघन है, तो वह व्यथित पक्षकार को सूचना देगा और पन्द्रह दिन के भीतर ऐसी शिकायत के समाधान करने के लिए उत्तरदायी होगा ;

(ज) की गई कार्यवाही के संबंध में शिकायतकर्ता को सूचित किया जाएगा और एक पखवाड़े में एक बार विहित फार्मेट में दो स्थानीय समाचार पत्रों में प्रकाशित कराएगा ;

(झ) कार्यक्रम अधिकारी और जिला कार्यक्रम समन्वयक द्वारा प्राप्त शिकायतों पर की गई कार्यवाही क्रमशः मध्यवर्ती पंचायत और जिला पंचायत की बैठकों के समक्ष रखी जाएंगी ;

(ञ) ग्राम पंचायत के आदेशों के विरुद्ध कोई अपील कार्यक्रम अधिकारी को की जाएंगी और वे जो कार्यक्रम अधिकारी के आदेशों के विरुद्ध हैं, जिला कार्यक्रम समन्वयक को की जाएंगी तथा जो जिला कार्यक्रम समन्वयक के विरुद्ध हैं, वे राज्य आयुक्त (राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी स्कीम) को की जाएंगी ;

(ट) खंड (ञ) के अधीन कोई अपील आदेश पारित किए जाने की तारीख से पैंतालीस दिन के भीतर की जाएंगी ; और

(ठ) उसकी प्राप्ति की तारीख से एक मास के भीतर किसी अपील का निपटारा किया जाएगा ।]